.....नी को
जिसने कहा, 'ओ लच्छिमी बाबू !'

प्रेम अपवित्र नदी

लक्ष्मीनारायण लाल

चांदनी चौक

1

जै गंगा !

पालकी.....सोलह कहारों वाली, हरिद्वार, हरि की पैड़ी पर उतारी गई। पंडों में खलबली मच गई। झुंड बना–बनाकर बातें करने लगे :

दिल्ली का सेठ आया है.....

.....चांदनी चौक का.....नीलकटरा वाले कपूर सेठ का राजकुमार.....उनकी दुल्हन आई है सोलह कहार की पालकी में.....

.....वही दान–पूजा।

.....हरी पंडा का पूत साला महावीर आज मालामाल हो जाएगा।

फागुन के दिन। पालकी का दरवाजा गंगा की ओर खुला था। फर्श पर कालीन बिछा दी गई–पालकी के दरवाजे से लेकर हरि की पैड़ी की आखिरी सीढ़ी तक। मालिक फूलों के हार सम्भालने लगी। नाउन ने दुल्हन के आंचल से पति सूरज कपूर के दुपट्टे से गांठ लगा दी। दूल्हा–दुल्हन गांठ जोड़े गंगा में स्नान करने के लिए बढ़े। नौकरानियों ने पानी के उतने हिस्से में पर्दा कर लिया जहां दोनों स्नान कर रहे थे। महावीर पंडा आखिरी सीढ़ी पर खड़ा, मंत्र पढ़ता हुआ उन दोनों पर पुष्प–अक्षत डालने लगा। स्नान के बाद पति–पत्नी वस्त्र बदलने लगे और महावीर पंडा दान–वेदी पर बैठकर पूजा की तैयारी में लग गया। हरि की पैड़ी का हर हर गंगे का शोर गंगा की तेज धार की कलकल में मिलकर अजब वातावरण बना रहा था।

दुल्हन के उन्हीं वस्त्रों में सोलह श्रृंगार किए हुए ब्रजरानी पति से गांठ बांधे हुए दान–वेदी की ओर बढ़ी। दान–वेदी के चारों ओर वे सारे साजो–सामान करीने से सजा दिए गए थे, जिनकी तैयारी में पिछले कई महीने लगे थे। रेशम के कपड़े, बर्तन, मिठाई और फल के टोकरे और दिल्ली के नीलकटरे के उससूरज परिवार में वर्षों से चले आते हुए कर्मकांड की वे सारी चीज़ें वहां करीने से लगा दी गई थीं। स्त्रियां सोहाग के मंगल गीत गाने लगीं। महावीर मंत्र पढ़ने लगा।

दुल्हन का शुभनाम ?

ब्रजरानी !

लंबे घूंघट के नीचे ब्रजरानी का मुखमंडल जैसे दमक रहा था। मेहंदी रचित उसकी हथेलियां और उंगलियों से जैसे हरसिंगार के पुष्प बरस रहे हैं। पांवों में से महावर और आभूषणों के बीच से जैसे चंदन बिखर रहा है।

दुल्हन–दान का विधिवत कर्मकांड शुरू हुआ।

पहले योग वाशिष्ट के मंत्र।

दूसरे गरुड़ पुराण के मंत्र।

फिर कुल देवी–देवता का पूजन।

फागुन माह का सूर्य पहर–भर चढ़ आया था। पुरवाई तेज बहने लगी थी। ब्रजरानी ने आंचल से मुंह का पसीना पोंछना चाहा, अचानक मुखमंडल का एक कोना महावीर की आंखों में चमक गया। उसके मंत्र सहसा झनझनाकर टूट गए।

आधा कर्मकांड पूरा हो गया। पति सूरज कपूर ने महावीर पंडे के पैरों की पूजा की और अपनी दुल्हन ब्रजरानी के हाथों को पकड़कर महावीर के हाथों में दिया।

दान–मंत्र दुहराते हुए सूरज कपूर ने कहा, ''मैं अपनी धर्मपत्नी ब्रजरानी को अपनी कुल–परंपरा के अनुसार महाराज को दान करता हूं।''

महावीर ने मंत्र पढ़ते हुए कहा, ''मैं अपने धर्मशास्त्र के अनुसार यह महादान सहर्ष स्वीकार करता हूं।''

फूल बरसने लगे। शंख बजने लगे। मालिन ने दोनों के हाथों में जयमाल दिए। दोनों ने वेदी के आरपार खड़े होकर एक–दूसरे को जयमाल दिए। दोनों ने वेदी के आरपार खड़े होकर एक–दूसरे को जयमाल पहनाए। मालिन और नाउन ने दुल्हन के घूंघट उठाए, और वह सारा गंगा–तट जैसे रोशनी से जगमगा उठा। महावीर की आंखें ब्रजरानी के रूप–सौन्दर्य पर टिक गईं।

वह अवाक्, मंत्रमुग्ध रह गया।

शेष कर्मकांड छोड़कर महावीर जैसे वहां से भागने लगा।

सूरज ने कहा, ''महाराज, कहां जा रहे हैं ?''

''मेरी तबियत ठीक नहीं है।'' युवक पंडे ने कहा।

''अब हमारा दान तो वापस कीजिए।''

''ले जाओ, मुझे छोड़ दो....मैं यहां अब एक क्षण भी नहीं रुक सकता,'' यह कहते हुए महावीर की आंखें तप्त हो आई थीं।

''यह लीजिए दान का मूल्य !''

पति सूरज कपूर ने पांच अशरफी, एक हजार चांदी के रुपये और पांच सोने के गहनों से भरा थाल महावीर के हाथों में देना चाहा। महावीर के हाथ जैसे निर्जीव हो गए थे। वह न जाने कहां खो गया था। सूरज पक्ष के लोगों ने कहा, ''महाराज दान वापस पाने का मूल्य बताइए ना।''

''कोई मूल्य नहीं।''

''क्यों ?''

''यह दान मैं किसी मूल्य पर वापस नहीं दूंगा।''

पहले लोग इसे मज़ाक समझ बैठे। सोचा, नौजवान पंडा है। अपने दिवंगत पिता हरि पंडा की नकल कर रहा है। हरि पंडा भी इसी तरह रूठकर दान का मूल्य बढ़ा लेते थे। पर बाद में लोगों ने देखा, महावीर बिल्कुल चुप, गंभीर हो गया है। गंगा–तट पर पंडों की भीड़ बढ़ने लगी। वातावरण गंभीर होने लगा। हरि की पैड़ी की जमीन गरम होने लगी। एक जगह पर देर तक पांव रखना असह्य होने लगा। सूरज कपूर ने दान का मूल्य बढ़ाया.....और बढ़ाया.....और.....। थान अशरफी और चांदी के रुपयों से लबालब भर गया। चारों ओर कानाफूसी होने लगी। पंडों की जमात बातें करने लगी। तभी सहसा महावीर की आवाज कौंधी, ''मैं किसी भी कीमत पर इस दान को वापस नहीं करूंगा।''

सारे हरिद्वार में खलबली मच गई। सारा गंगा–तट, हरि की पैड़ी का सहज जीवन जैसे टूटकर थम गया। पंडा–समाज चिंता में डूब गया। लाठी लेकर कुछ पंडों ने महावीर को घेर लिया। ''हमारे पंडा–समाज को तू दूषित, अपमानित और कलंकित नहीं कर सकता। युगों से चलती हुई दान की इस पवित्र परंपरा को तू इस तरह बरबाद नहीं कर सकता।.....''

सुबह से दोपहर। गंगा–तट पर खड़ा रहना मुश्किल हो रहा है। ब्रजरानी जैसे उस दान–वेदी पर काठ मार दी गई है। सूरज कपूर पागलों की तरह सब के मुंह देख रहा है। महावीर अपनी जगह पर अविचल खड़ा है।

तीसरे पहर, उसके मुंह से निकला, ''मैं इस दान का कोई मूल्य नहीं ले सकता, यह चाहें तो बिना मूल्य के इस अमूल्य दान को वापस ले सकते हैं।''

''मगर यह अधर्म है।'' पंडा–समाज ने कहा।

''मैं धर्म–अधर्म नहीं जानता.....।'' महावीर ने कहा।

अकेला महावीर एक ओर और वहां का सारा समाज दूसरी ओर, और बीच में चुप मौन बैठी हुई वह दुल्हन ब्रजरानी।

दिन डूबने को आ गया। गंगा में तब से न जाने कितना जल बह गया। हिमालय की ओर से उत्तरी हवा बहने लगी। ब्रजरानी ने पति से कहा, ''अगर धर्म तोड़ने का साहस है, तो मुझे निर्भय होकर वापस ले चलो। मैंने दिल्ली से चलते हुए क्या कहा था ? यह दान झूठ है। अंधविश्वास है। इस अधर्म के खिलाफ हर इन्सान को उठ पड़ना चाहिए।''

''ब्रजरानी..... !''

एकाएक सूरज कपूर जैसे चीख पड़ा हो। उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी, वह अपनी ब्रजरानी से आंख मिलाए। उसके मन और दिमाग में जो आग जल उठी है, उसी आग की रोशनी में उसे याद आ रहा है–ब्रजरानी किस तरह खिलाफ थी इस दान के। वह कोठी से बाहर निकलते–निकलते बोली थी–सोचो तो भला, हम लोग कहां जा रहे हैं। यह भी कोई परंपरा है ! क्या.....कुल–परंपरा ? यह क्या है ?.....छिः छिः रही होगी कभी, यह भी कोई बात है ! तुम मेरे स्वामी, पति,.....धर्म से एक बार जब तुम्हें मैं दान दे दी गई हू। तो यह दूसरा दान कैसा ? क्यों ? कुल–परंपरा क्या बदली नहीं जा सकती ? हे, कैसे पुरुष हो तुम ?

''चुप क्यों हो, पकड़ो मेरा हाथ और ले चलो मुझे यहां से।''

''मालिक क्या कहेंगे ?''

''कौन मालिक ? मेरे मालिक केवल तुम हो। और तुम अपने मालिक स्वयं हो। नहीं हो क्या ?''

''रुको, पंडे से एक बार.....।''

यह कहकर सूरज कपूर महावीर पंडे के कदमों पर जा गिरा। रो–रोकर उससे दया की भीख मांगने लगा। ब्रजरानी के बदले वह जो कुछ मांगे, देने के लिए तैयार है। पर पंडा अविचल स्थिर है।

ब्रजरानी सामने आकर पति का हाथ पकड़कर बोली, ''इस अधर्मी से दया की भीख मांगते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ! उठो, अगर तुम पुरुष हो तो तोड़ दो इस प्रपंच को। यह दान नहीं डाका है !''

''पर मैं यह कुल–धर्म कैसे तोड़ सकता हूं ?''

''फिर तो बात खत्म हुई !''

यह कहकर ब्रजरानी मूर्तिवत् खड़ी रह गई। उसके पीछे सूरज कपूर और महावीर पंडे में न जाने क्या–क्या बातें होती रहीं। हरिद्वार के पंडे महावीर के खिलाफ न जाने क्या–क्या कहते रहे।

ब्रजरानी ने एक बार फिर कहा, ''क्या औरतों की तरह रोते हो। मरद होकर अपने संग ले चलो, वरना मुझे इसी तरह छोड़ दो।''

सूरज कपूर ने थर–थर कांपते हुए कहा, ''मैं धर्म कैसे तोड़ सकता हूं ?''

''फिर जाओ।'' यह कहती हुई ब्रजरानी ने अपना घूंघट उलट दिया। जैसे दिशाओं में रूप का प्रकाश फैल गया। लोग वह मुखश्री एकटक निहारते रह गए। गंगा की संध्या आरती होने लगी। गंगा–जल में असंख्य दीप बहने लगे।

ब्रजरानी को संग लिए हुए महावीर गंगा–तट पर चलने लगा। पंडों ने उस दुश्चरित्र पर आक्रमण करके ब्रजरानी को छीन लेना चाहा। ब्रजरानी ने कहा, ''यह धर्म तुम्हीं लोगों ने बनाया है।''

''अधर्मी के लिए धर्म नहीं है।'' उस भीड़ ने आवेश में कहा।

ब्रजरानीने संयत स्वर में कहा, ''अधर्मी का धर्म धर्म से भी अधिक शक्तिशाली होता है।''

रात घिरने लगी। पंडा–समाज ने महावीर को हरिद्वार से निष्कासित कर दिया। उसके घर में आग लगा दी।

सोलह कहारों की वह सूनी पालकी दिल्ली के पथ पर चल पड़ी। दो घोड़ों की बग्घी पर सूरज कपूर अकेला बैठा हुआ घर की ओर चला।

पांचवें दिन बहुत दूर से दिल्ली दिखाई पड़ी। चांदनी चौक के लोग इधर भागे आ रहे हैं। सब के चेहरे पर आतंक छाया है।

''क्या बात है ?''

एक राहगीर ने बताया, ''लार्ड हार्डिग पर किसीने बम मारा है, सारा चांदनी चौक अंग्रेजों ने 'सील' कर दिया है।''

''क्या ?''

''चांदनी चौक के लोग घर छोड़कर भाग गए हैं।''

जमुना–पुल से एक मील दूर पर ही सब रुक गए। चांदनी चौक के लाले, माथुर लोगों के कई परिवार उधर गांवों में आ छिपे हैं। तब पूरी कैफियत मालूम हुई। दिल्ली दरबार के महोत्सव में, जब वाइसराय लार्ड हार्डिग स्टेशन से चलकर हाथी पर शाही जलूस में निकल रहे थे, तब चांदनी चौक में धूलिया वाले कटरे के सामने उनपर बम फेंका गया जिससे वह बाल–बाल बच गए। मगर वाइसराय के पीछे जो छत्रधारी दरबान बैठा था, वह मारा गया। लार्ड हार्डिग को भी चोट आई। इसका बदला अंग्रेजों ने बड़ी निर्ममता, दमन और बरबादी के साथ लिया। लोग अपनी जानें लिए हुए शहर से भाग गए हैं। शहर में सिर्फ वही लोग हैं जो अंग्रेजों के वफादार हैं।

सूरज कपूर के सामने तस्वीर साफ होने लगी। नीलकटरे में उसकी कोठी 'कपूर हवेली' सुरक्षित होगी। उसका खानदान, जो 'कपूरवाले' के नाम से जाना जाता है, उसपर कोई आंच न आई होगी। ब्रजरानी की वह दुर्घटना, वह सारा पश्चाताप उसके दिल और दिमाग से भाप की तरह उड़ने लगा। उसके भीतर उकसे पिता लाला प्रकाशचन्द कपूर की वे तमाम बातें कौंधने लगी, जो कपूर हवेली में बोली गई थीं :

'''कपूरवाले' अपने बाप–दादों की कमाई को अपना धन नहीं मानते। वे स्वयं पुरुषार्थ से कोई नई कमाई करते हैं, तभी वे 'कपूरवाले' कहलो हैं। 'कपूर–बेटे' धर्म की संतान हैं। वे अधर्म से डरते हैं और उन्हें यह विश्वास है कि ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है।.....हर मनुष्य अपनी निजी किस्मत लेकर पैदा हुआ है.....इन्सान धर्म का दास है.....धर्म किसीका दास नहीं.....कपूर–बेटे कभी उदास नहीं होते.....कभी बीती बातों पर पश्चात्ताप नहीं करते..... ।''

दिवंग पिता लाला प्रकाशचन्द कपूर की छवि इस तरह मन में उदित हुई जैसे वह सामने साक्षात् खड़े हों–वही भरा–पूरा शरीर, भरी हुई मूंछे, सिर पर कामदार पगड़ी, बदन में नीमाजामा, टांगों में टखनों से ऊंचा तंग मोहरी का पाजामा, पांवों में ऊंची एड़ी का जूता और कमर में जामे के ऊपर बेशकीमती पटका।....

पैदल सूरज कपूर जमुना–पुल के करीब आ गया। दो अंग्रेज सिपाही पिस्तौन ताने उसकी ओर दौड़े..... ।

''हैंड्स अप। हू आर यू ?''

हिन्दुस्तानी अफसर ने अनुवाद किया, ''हाथ ऊपर। कौन हो तुम ?''

सूरज कपूर ने कहा, ''कपूरवाले....कपूर हवेली.....रायबहादुर लाला प्रकाशचन्द कपूर का पुत्र.....सूरज कपूर।''

हिन्दुस्तानी अफसर हरे रंग के रजिस्टर के पन्ने उलटने लगा। उस पेज को दोनों अंग्रेज सिपाहियों ने देखा और मुस्कराकर सूरज को 'परिमट कार्ड' दिया।

दिल्ली शहर में प्रवेश पाने के उस कार्ड को हाथ में लिए हुए सूरज जमुना–पुल पर चलने लगा। पुल पर दोनों ओर जगह–जगह भरी बंदूक ताने अंग्रेज सिपाही खड़े थे। दोपहर होने को थी। पुल से दूर जमुना की धार को देखते हुए

सूरज को बरबस ब्रजरानी की याद आई। मगर दूसरे ही क्षण पिता प्रकाशचन्द कपूर की महिमा उसे बचाने आ गई। एक ओर बीता हुआ क्षण दूसरी ओर जैसे कभी न बीतनेवाला इतिहास :

.....यही जमुना की धारा। सन् सत्तावन की गदर में जमुना के इस पार कंपनी की फिरंगी फौज, उधर दिल्ली में शहंशाह बहादुरशाह, बेगम जीनत महल, उधर हैं कंपनी फौज के कमांडर जनरल आर्चडेल विलसन, जनरल निकलसन, उधर हैं शहजादा अबूवक्, गौस मुहम्मद, हीरालाल, मंगल चौबे और अवध से भागकर आए हुए विद्रोही, बलवाई।.....

वह इतिहास सूरज ने अपने पिता के मुंह से सुना है.....वह घटना जैसे अब भी उसी जमुना की धार में सजीव खड़ी है।.....कपनी की फौज को रसद कहां से मिले ? उधर कानपुर, अलीगढ़, मेरठ में विद्रोह की आग अब तक नहीं बुझ सकी है। दिल्ली से कोई व्यक्ति यदि उन फिरंगियों की सहायता करे तो वह अपनी ही मौत मरे।.....

ऐसी संकट की घड़ी में मेरे महान पिता ने उन फिरंगियों की मदद की है। एक–एक मन वजन की पावरोटी जमुना के पानी में डलवा दी जाती। उसमें बंधी हुई मजबूत रस्सी के सिरे को हाथ में लिए हुए तैराक मछुआरे उस पर अंग्रेज सिपाही को पकड़ा आते.....और बड़े मजे से पावरोटियां उस पर पहुंच जाती.....सूरज लाल किले की तरफ से चांदनी चौक में बढ़ने लगता है और आंख उठा–उठाकर देखता है–दस दिनों के भीतर जैसे इस ओर का नक्शा ही बदल गया है। लोथियन रोड के इलाके के तमाम मकान, चांदनी चौक के दरीबें तक के और उधर जामा मस्जिद तक के अनेक मकान और दुकानें तोप से गिराकर तबाह कर दिए गए हैं। इधर–उधर कोई तिमंजिला मकान नहीं दिखाई दे रहा है। ताकि लाल किले से चौक के किसी मकान पर गोले फेंकने के रासते में कोई रुकावट न हो। फतहपुरी मस्जिद में अंग्रेजी फौज अब तक जमी है। जामा मस्जिद में अंग्रेज सिपाहियों के घोड़े बंधे हैं। खौफ और आतंक का यह आलम कि गोरे सिपाही की कौन कहे, काले सिपाही की लाल पगड़ी से लोग कांप उठते हैं।

उधर सिर्फ कपूर हवेली की शान में कोई बट्टा नहीं लगा है। सूरज नीलकटरे के मोड़ पर खड़ा अपनी हवेली देखने लगा, उसकी हेके हिम्मत न हुई घर जाने की। उसे लगा, ब्रजरानी उस कपूर हवेली के छज्जों पर दौड़ती हुई हंस रही है। उसकी वे रतनारी आंखें, वह गंभीर मुख उससे कह रहा है–हे कैसे मर्द हो तुम..... ? ऐसी स्त्री को छोड़ आए उस डाकू के हाथ.....धर्म के डर से ! कायर ! कैसा धर्म !.....हे जी, अपन धर्म तो पुरुष स्वयं बनाता है.....रचता है अपने पराक्रम से, विश्वास से ! हां, चलो धर्म नहीं तोड़ सके, फिर तो उसी जीवन को ही टूटना होगा ना.....। पर चाहे जो हो, तुम तब भी न टूटना। तुम मुझे नहीं रख सके तो क्या हुआ.....।

फिर वही हंसी। वही आंखे, वही दमकता हुआ यौवन ! वही सिंदूर भरा सीमंत.....वही रूपश्री सारे वायुमंडल में बिखरने लगी। सूरज कपूर जैसे कुछ अब भी पकड़ लेना चाहता है, तभी उसके पांव सड़क पर बिखरे सिलबट्टों–चारपाइयों से टकराए।

सूरज इधर–उधर देखने लगा। एकाएक उसकी नजर सड़क, गलियों और कूचों में फेंकी हुई चारपाइयों, सिलबट्टों और घर–गृहस्थी की बिखरी हुई तमाम चीजों पर पड़ी।

वह एक क्षण शून्य में देखने लगा।

तभी जैसे दिवंगत पिता की हंसी सुनाई पड़ी। और वही बात, 'कपूरवाले' अपने बाप–दादों की कमाई से नहीं, अपने निजी पुरुषार्थ से जाने जाते हैं.....कमाई दूसरे की नहीं, अपनी.....।

सूरज सिर्फ चारपाइयें और सिलबट्टों को इकट्ठा करवाने लगा, अपनी हवेली के पीछे लछमन अखाड़े की बगीची में।

चारपाइयों का जैसे पहाड़ हो गया–पूरे डेढ़ एकड़ के अहाते में चारों ओर। सिलबट्टों के अंबार को देखकर लगता जैसे कोई पत्थर का किला टूटकर ढह गया हो। मालिन, नाउन और दोनों नौकरानियां चंपो, गंगो ने कपूर हवली में आकर छोटी बहू ब्रजरानी के बारे में बताया। बड़ी बहू–पिहानीवाली, छाती पीटने लगी और चिल्लाती हुई अपने पति हीराचन्द कपूर के पास पहुंची, ''सुनते हो जी, छोटी बहू का क्या हुआ ?'' बड़े भाई हीराचन्द ही घर–परिवार के मालिक थे। उन्हें धर के बड़े नौकर रामहल्ला के मुंह से ब्रजरानी बहू की घटना की खबर सबसे पहले ही मिल चुकी थी।

मालिक हीराचन्द अपनी पत्नी की बात सुनकर चुप रह गए। पर बड़ी बहू इस तरह चुप रहने वाली नहीं थी। उसने छाती पीट–पीठकर कहना शुरू किया, ''जितना भी धन मांगे, पंडे से छोटी बहू को वापस लो।''

''पंडा किसी भी कीमत पर बहू को वापस देने को तैयार नहीं।''

''पुलिस और सरकार की मदद से बहू को छीन लो।''

''यह धर्म के खिलाफ होगा।''

''जब पंडा अधर्मी निकला, फिर उसने धर्म–पालन की कैसी बात।''

''कपूरवाले का कुल–धर्म टूटेगा तो हम पर विपत्ति टूटेगी।''

''हमरा कुल–धर्म नहीं टूटा ? घर की बहू को उस पापी दुश्चरित्र पंडे के हाथ में दे आए।''

''पर कपूरवाले अपने धर्म से विचलित नहीं होते।''

''वह हमारी बहू थी.....इस घर की।'' बड़ी बहू रोती हुई बोली।

''वह हमारा धर्म था.....इस घर का कुल–धर्म।'' मालिक पति ने संयत स्वर में कहा।

''बहू धर्म नहीं है ?'' बड़ी बहू की हिचकियां बंध गई।

''धर्म सबसे ऊंचा है। और जितनी बहुएं चाहोगी, आ जाएंगी।''

यह कहकर मालिक पति हीराचंद वहां से चले गए। बड़ी बहू वहीं बैठकर छोटी बहू के लिए विलाप करने गलीं। चंपा, गंगा उन्हें सम्भालने लगीं।

बड़ा नौकर रामहल्ला, ब्रजरानी के सात वर्ष के बच्चे–विष्णुपद को अंक में छिपाए तीसरी मंजिल की बारादरी में जा बैठा है। बड़ी बहू का दस साल का बच्चा–कुंवर, सामने छत पर पतंग उड़ारहा है। विष्णुपद रामहल्ला से शिशुवत् पूछता है, ''बाबा, मेरी मां कहां है ?''

''मां,.....मामा के यहां गई हैं बेटे।''

''मुझे क्यों नहीं ले गई ?''

''मामा के यहां मां जब शादी के बाद पहली बार जाती है न, तो उसे अकेले जाना पड़ता है..... ।''

''मां कब आएगी बाबा ?''

''जल्दी।.....चलो पतंग उड़ाओ कुंवर भइया के साथ.....आओ..... ।''

रामहल्ला ने एक नई पतंग देकर उसे वहीं छत पर फंसा दिया और बड़ी बहू का रुदन सुनकर नीचे भागा।

''रामहल्ला रे, जा तू मेरी छोटी बहू को ला।''

''ज़रूर लाऊंगा बहू। धीरज धरो..... ।''

''मेरी देवी.....चांद जैसी बहू। मेरे इस घर को क्या हो गया ?''

रामहल्ला अवध के एक गांव का था। पचास साल की उम्र। बड़े मालिक रायबहादुर लाल प्रकाशचंद कपूर के जमाने का नौकर–अजब भक्ति–स्वर में बोला :

''जानकी मां को भी तो छल से रावण ने हरण किया था। और रावण की लंका जली थी। ऐसा हर काल समय में होता ही रहता है बहू.....यही तो है धरम–अधरम का जुद्ध। धीरज रखो, मैं जाऊंगा बहू मां के पास.....हां,..... ।''

बड़ी बहू को जैसे जी जुड़ा गया।

वह भागी हुई कुलदेवी के कमरे में गई और 'राने भोर साहब' 'राने भोर साहब' की प्रतिमा पर सिंदूर लगाकर उनके नाम जपने लगी।

पांचवें दिन सुबह चांदनी चौक की हर सड़क, गली, नुक्कड़ पर नगाडे बजा–बजाकर नकीबों ने ऐलान करना शुरू किया :

खल्क–एक–खुदा
मुल्क–ए–बादशाह
हुक्म–ए–सिपाही
अंग्रेज बहादुर.....लोग अपने–अपने घर वापस
आएं.....माफी अंगरेज सरकार।

भागे हुए लोग अपने–अपने घर वापस लौटने लगे। महाजनों की गद्दियों पर कर्जदारों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। धड़ाधड़ दस्तावेज–प्रोनोट लिखे जाने लगे। कपूर हवेली की बड़ी गद्दी पर तिल–भर जगह नहीं, कर्जदार हाथ जोड़े खड़े हैं। मुनीम लोग सबसे पट्टा लिखवा रहे हैं और मालिक साहब हीराचंद जी सब को समझा रहे हैं–''भइया, अंगरेजी राज हे, तभी पटृटा लिखवा लेना ज़रूरी है। वरना इसकी क्या जरूरत।''

कर्जदार रो–रोकर कहते हैं, ''सारा घर लूट लिया है सिपाहियों ने। हमने तो बम नहीं फेंका था लाट–गवर्नर पर.....हम तो प्रता हैं सरकार की.....फिर हमें क्यों बरबाद किया ?''

मालिक बाबू समझाते, ''सब भाग्य की बात है भइया, वह समय ही ऐसा था कि उस माहौल में मासूम और वहशी, क्रांतिकारी और वफादार में फर्क करना नामुमकिन था।''

चांदनी चौकभर में सभी के मुंह से एक ही आवाज :

''अंगरेज बहादुर का हुकुम हो गया'', ''अंगरेज बहादुर का हुकुम हो गया।'' सेठों–लालों की गद्दियां खुलने लगीं। बनियों, हलवाइयों, दुकानदारों की दुकानें आबाद होने लगीं। फेरीवालों के खोमचे लगने लगे। जो लोग शहर से नहीं भाग सके थे और घरों के सदर दरवाजे बंद करके अन्दर छिपकर पिछले बी–बाइस दिनों से बैठे थे, वे बाहर आने लगे। घरों के बुड्ढे, पर्दानशीन बहुएं, बच्चे छतों पर चढ़कर मुंडेरों की आड़ से देखने लगे–गली, सड़कों और हर रास्ते पर लोग कतार बांधे घरों में वापस आ रहे हैं। लोगों के हाथों में, सिरों पर घर–गृहस्थी के कीमती सामान हैं.....कपड़े हैं.....बक्से हैं। ठेलों पर झाड़–फानस, मसनद, तकिए, किताबें, बक्से, तिजोरी, शीशा, कांसे और चांदी के बरतन हैं। हाथों में

तोता–मैना और लाल पक्षियों के पिंजड़े हैं। तानपूरे, सितार, मृदंग, ढोलक और तबले हैं। औरतों ने एक बांह से बच्चे सम्भाले हैं, दूसरे में पान के डिब्बे लिए हैं।

उधर सूरज कपूर के दो मुनीम, तीन नौकर लगे हैं। चारपाई, पलंग और सिलबट्टे बेचने में। पहले दिन दोपहर से आधी रात तक, दूसरे और तीसरे दिन चौबीस घंटों तक वह बिक्री होती रही। मुनीमों ने हिसाब जोड़ा : बीस हजार की चारपाइयां, तीस हजार के पलंग, तीन हजार के सिलब्टे.....टोटल तिरपन हजार रुपये।

बड़े भाई हीराचन्द ने सूरज की पीठ ठोंकते हुए कहा, ''कपूरवालों के लिए धन उतना महत्वपूर्ण नहीं, जितना महत्वपूर्ण है धन पैदा करने की अकल और उससे भी ज्यादा नये धंधे की कल्पना और हिम्मत।'' बड़ी बहू को सहन न हो सका। तड़पकर बोली, ''और ऐसे वक्त और भी बहादुरी है देवर की, जब वह अपनी बहू पंडे के हाथ दे आया हो। वाह !'' यह कहकर बड़ी बहू फफककर रो पड़ीं।

सूरज कपूर मूर्तिवत् खड़ा रह गया है।

मालिक भाई ने कहा, ''चुप रहो, कपूरवालों का अधिकार महज धर्म–पालन में है, धर्म तोड़ने में नहीं।''

''पंडे ने धर्म नहीं तोड़ा ?''

''यह भाग्य की बात है।''

''कैसा भाग्य, कैसा धर्म ?''

''जो सनातन है।''

बड़ी बहू ने जलती हुई आंखों से पति और देवर को देखा। छाती पीटती हुई बोली, ''मैं साथ होती तो धर्म पर लात मारकर बहू को उस मुंहजले पंडे से छीन ले आती।.....इस घर में अब वह घिनौना धर्म नहीं चलेगा। आज से वह मुर्दा दान धर्म खत्म।''

''पिहानीवाली !'' मालिक की आवाज कांपी।

''किसी भी कीमत पर हमारी बहू यहां वापस आएगी।''

मालिक भाई ने त्तप स्वर में कहा, ''अब वह हमारी बहू नहीं.....हमने उसे दान कर दिया.....ईश्वर को वही मंजूर था।''

''क्या ?'' पागल दृष्टि से पिहानीवाली पति को निहारने लगी।

''बिना उसकी मर्जी के हम दान की हुई चीज़ वापस नहीं ले सकते।''

''फिर लो, मुझे भी दान कर दो।''

''तुम्हारा भी उसी तरह दान हुआ था.....मेरी मां का हुआ था, मेरी दादी, परदादी का हुआ था.....हमने दाम देकर वापस लिया था, मगर जब दान लेने वाला किसी भी कीमत पर दान वापस न करे, फिर धर्म के आगे हमारी क्या शक्ति ?.....राजा हरिश्चन्द्र की क्या शक्ति थी, जब उन्हें डोम के हाथों बिकना पड़ा था।''

''मत सुनाओ किस्से मुझे। मेरी बहू मुझे वापस दो.....मेरी ब्रजरानी..... ।''

उसी क्षण ब्रजरानी का इकलौता पुत्र विष्णुपद वहां दौड़ा हुआ आया। पिता का हाथ पकड़कर बोला, ''ताई मां क्यों रोती हैं पिताजी ?''

''अब दो जवाब ?''

यह कहकर पिहानीवाली ताई ने विष्णुपद को अंक में भर लिया। उसे उठाए हुए अपने कमरे में आई और वाल्मीकि रामायण की कहानी सुनाने लगीं।

2

कपूर हवेली मुगल इमारतों का एक खूबसूरत नमूना है। सामने से चहारदीवारी के भीतर लाल पत्थर का रंगीन ऊंचा दरवाजा दिखता है। लोहे की बड़ी–बड़ी कीलों जड़े दो फाटक हैं। दरवाजे के भीतर दोनों तरफ प्याजीरंग की दो चौकियां हैं–पहरेदारों के खड़े होने के लिए। दरवाजे के अंदर लंबी पेचदार ड्यौढ़ी–लाज पर्दे के लिए। ड्यौढ़ी सेनीचे उतरकर एक लंबा–चौड़ा आंगन। बीच में हौज। आगे कुलदेव की कोठरी। दालान के भीतर वह गद्दी वाला बड़ा कमरा। गावतकियों के हाशिये, रेशमी कारचोबी। दालान के नीचे तहखाने–फर्श, दीवारें कौड़ियों से घुटे हैं। सीलन का कोई डर नहीं।

गद्दी वाले बड़े कमरे के दायें–बायें दो हाल–एक अंग्रेजी स्टाइल में 'बैंक्वट हाल' की तरह सजा हुआ। दूसरा भारतीय ढंग का जलसा घर की तरह।

ऊपर खूबसूरत जनानखाना या अंतःपुर। आगे खुली छतें, सामने लाल पत्थर के खूबसूरत बारजे। पीछे बड़े–बड़े कमरे और हर कमरे के साथ एक गुसलखाना। दाईं और एक बैठक पुरुषों के लिए, बाईं ओर एक स्त्रियों के लिए। सारे कमरों के फर्श संगमरमर के–तराशे हुए कमल के पुष्पों से रंग–रंजित। दूसरी मंजिल पर तीन तरफ बड़े–बड़े कमरे। और

तीसरी मंजिल पर एक बारादरी। हर मंजिल के पीछे रसोई। हवेली के पदी एक ओर पांच कारों की गैरेज, दूसरी ओर बग्घी और फिटन रखने का स्थान। उससे जुड़ा हुआ घोड़ों का एक अस्तबल। पहली मंजिल के पीछे नौकरों के कमरे।

हवेली के ही सहन में एक बड़ा–गहरा कुआं। रात–दिन पानी की खिंचाई। भिश्ती आते। मश्कों में पानी भर–भरके सुबह–शाम हवेली की धुलाई करते। माली फूल–पौधों की क्यारियों और गमलों में पानी देते। पास–पड़ौस के लोग भी इसी कुएं से पानी भरते। कपूरवालों का ख्याल है–पानी ईश्वर का है–इस पर सबका समान हक है। पहली मंजिल की सारी दीवारें दोहरी हैं–माल छिपाने के लिए। जड़ाऊ पत्थरों की संदूकें तहखाने में। पहली मंजिल पर अशरफियां रखने के लिए चौबच्चे (तिजौरी)।

पहली मंजिल पर स्वर्गवासी रायबहादुर लाला प्रकाशचंद कपूर का परिवार। दूसरी मंजिल पर रायहादुर के छोटे भाई रूपचंद कपूरा का परिवार। उनके दो लड़के–शिव कपूर और हरि कपूर। शिव कपूर की बहू कुलकंदो के कोई बाल–बच्चा नहीं। हरि कपूर कीपत्नी फूलमती के दो लड़के–कैलाश और शंकर। एक लड़की–मधु। इतना बड़ा परिवार..... सब के लिए एक चौका.....एक रसोई और पूरे परिवार का एक ही मालिक हीराचंद कपूर। रसोई की मालकिन गंगो मिसराइन। नौंकरानियों की इंचार्ज चंपो। और नौकरों का चौधरी–रामहल्ला।

चैत बीत रहाहै। बड़ी बहू की चिट्ठी लेकर रामहल्ला हरिद्वार हो आया है। वहां कुछ भी न पता चल सका। महावीर पंडा ब्रजरानी को लिए हुए न जाने किस देश निकल गया है। हरिद्वार के पंडों ने उसका घर फूंक दिया है। उसकी बूढ़ी मां को मामा के घर सहारनपुर भेज दिया है। रामहलला हरिद्वार से लेकर देहरादून, मसूरी.....नैनीताल, कनखल से लेकर सहारनपुर, पीलीभीत, सीतापुर, रूड़की, मुरादाबाद और लखनऊ क घूम आया है। कहीं कुछ पता नही चला है। कनखल के एक लाला से सिर्फ इतना पता चला है कि महावीर पंडा ने हरिद्वार की अपनी सारी जमीन–जायदाद देहरादून के एक सेठ के हाथ काफी बड़ी रकम में बेची है। उसकी कनखल की जमीन अब तक बची है। सुना जाता है–वहां गंगा की तलहटी से ऊपर एकांत पहाड़ी पर एक बंगला बनाने वाला है।

चैत बीत रहा है। रामहल्ला अपने आठ साल के बच्चे मनसुख के साथ ऊपर बारादरी में ही रात को सो गया था। आधी रात तक नीचे जलसा घर में खुरशीदजान का मुजरा हुआ है–छोटे साहब सूरज बाबू के लिए। मालिक का हुकुम है–सूरज का मन बहलाने और ब्रजरानी को भूल जाने के लिए जलसा घर में रोज जश्न ज़रूरी है, सूरज के लिए।

पिछली रात खुरशीदजान का मुजरा था। करीब तीन बजे रामहल्ला मनसुख के साथ ऊपर बारादरी में शीतलपाटी बिछाकर सो गया था। सुबह की नींद में उसे अचानक सुनाई पड़ा :

जय गंगा !

जय जय राम !

हर हर गंगा !

लगा पहले अकेले कंठ की आवाज गूंजी है। फिर अनेक कंठों में वही जय जय राम.....हर हर गंगा। रामहल्ला की आंख पहली आवाज सुनते ही खुल गई। वह आंख मीचकर उठ खड़ा हुआ। छत के चारों ओर घूम–घूमकर वह निहारने लगा। मालिक की हवेली के पिछवाड़े वाली गली में। फतेहपुरी के सामने। फिर चांदनी चौक वाली सड़क पर। शायद हां, हां शायद सुबह हो चुकी है। उसे लगा–वह असंख्य कंठों की जयजयकार जमुना नदी की ओर बढ़ रही है–लाल किले से नीचे।

रामहल्ला चुप खड़ा रहा। तब उसे लगा–वह महज स्वप्न था। न यह काशी है, न अयोध्या। यह है दिल्ली का चांदनी चौक–नीलकटरा खत्रियों का मुहल्ला। उसने पलटकर पश्चिम दिशा में देखा–आधे चांद की शक्ल में शहर की ऊंची–नीची हवेलियां, टूटे हुए मकान, कोठियों के खंडहर और मकानों की कतार। दायें से बायें उसकी नजर घूमी तो वही फतेहपुरी, बल्लीमारान, चर्खेवालान, दरी शेरअफगन खां, चावड़ी बाजार, कूचा रहमान, शरीफ मंजिल, कूचा दाग, फव्वारा और वही लाल किला। और उल्टी नजर घूमी तो वही गंदी गली, कटरानील, कूचा अत्तार, गली सीताराम, फव्वारा और फिर वही लाल किला।

रामहल्ला अपना कपार थामे वहीं छत पर बैठ गया। उसे लगा, पूरा छत घूम रहा है। फिर उसे हंसी आ गई। और वह बड़बड़ाने लगा, 'अपन बाप–महतारी कैं का कही, कोऊ नाम न मिला तो रामहल्ला, हूं ससुर रामहल्ला। सब सोवैं सुख की नींद, हमें सुनाय पड़ै रामहल्ला।'

मनसुख सो रहा है।

''औरे मनसुखा !''

रामहल्ला ने बरबस अपने बेटे को जगाया। तभी बिचली मंजिल में आहट हुई–आहट क्या, बोलचाल। रामहल्ला ने झुककर देखा–सूरज कपूर और बड़ी बहू में कहा–सुनी हो रही है।

रामहल्ला को लगा–जयजयकार ने उन असंख्य कंठों में ब्रजरानी की आवाज सबसे ऊपर थी। वह इतनी आवाजों के साथ यहां आई थी। पता नहीं क्या ढूंढने !

रामहल्ला नीचे उतरा।

मर्दाना बैठक में से सूरज बाबू और पिहानीवाली बहू की बोलचाल की आवाज आ रही है।

रामहल्ला चुपचाप छत पर खड़ा हो गया।

बहू की आवाज सुनाई पड़ी, ''खुरशीद के साथ उसके कोठे पर जाने की क्या ज़रूरत थी.....जब वह खुद यहां मुजरे के लिए आई थी ?''

''मुझे यहां रात–दिन नींद नहीं आती।''

''बहू तुम्हें अब सोने देगी ?''

''मैं क्या करू भाभी ?''

''डूब मरो कहीं।''

''मेरा क्या कसूर.....वह हमारे घर की परंपरा थी.....धर्म था।''

''मर्द हो, अंधी परंपरा तोड़ी क्यों नहीं ?''

''अब तो जो होना था, हो गया।''

''नहीं। शराब, रंडी, नाच, विलास में डूबने का तुम्हें बहाना मिल गया.....तुम अपने मालिक भाई को नहीं जानते, उनके मन में स्त्री–पुरुष की कोई इज्जत नहीं है.....न कोई कीमत है.....यहां सब कुछ पूंजी और व्यापार है.....और सब कुछ साधन है उसीके लिए।''

रामहल्ला पिहानीवाली बहू की बोली में वही जयजयकार सुन रहा है.....जो लाल किले से जमुना पार होता हुआ हरिद्वार की ओर उड़ गया है।

रामहल्ला हाथ बांधे बैठक के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। विनम्र स्वर में बोला, ''छिमा हो सरकार, एक उपाय है–कनखल में पंडे की कोठी बन जाने दो। मैं रूप बदलकर उसके यहां नौकरी करूंगा और बहू को यहां वापस ले जाऊंगा।''

''अब वह कपूर–बहू नहीं हो सकती।'' सूरज के मुंह से निकला।

''पर कपूर–बहू उससे बदला ले सकती है।'' बड़ी बहू ने कहा।

''किससे बदला ?'' सूरज ने कहा।

सन्नाटा छा गया। हां, किससे बदला ? सारा कसूर तो कपूरवालों का है, इस घर की कुल–परम्परा का। पिहानीवाली और सूरज दोनों खामोश बैठे रह गए।

रामहल्ला उस पूरे मर्म को समझता है। बड़े मालिक का स्वार्थ छोटे भाई में है। उससे ज्यादा अपने घर में है–इसलिए कुल–धर्म सबसे ऊंचा है। छोटे मालिक–सूरज बाबू का स्वार्थ बड़े भाई में है, इस घर की परम्परा में है, इसलिए कुल–धर्म पहले और सब कुछ बाद में। और एक बहू में क्या रखा है.....कपूरवालों को बहुओं की क्या कमी। और उससे भी ऊपर कपूरवालों पर उंगली उठाने वाला कौन है। उल्टे खत्री समाज में कपूरवालों की इस घटना से इज्जत और बढ़ी है। कपूर धर्मात्मा हैं। धर्मपालन में इनका त्याग महान हे।पर अजब मर्मभेदी चोट लगी है केवल बड़ी बहू को। केवल स्त्री, बहू होने के नाते नहीं, अधर्म–अन्याय के सामने कपूरवालों के इस कायरतापूर्ण अमानवीय रवैये से।

केवल रामहल्ला को पता है.....उस दिन से पिहानीवाली बहू ने बबूल के पुतले जलाने शुरू किए हैं कुलदेवी के कमरे में, और मंगल पंडित से मारन मंत्र का जाप बैठाया है उस पंडे के खिलाफ। पंडा पुतलों के साथ जलकर खाक स्याह हो जाए और ब्रजरानी अपने घर वापस आए–यही धुन लगी है पिहानीवाली बहू में।

सूरज कपूर की रोज बड़ी से बड़ी शादियां आती हैं। बड़ी बहू सबको गालियां देकर कोठी से बाहर निकाल देती हैं।

''ब्रजरानी के अलावा इस घर में और कोई बहू नहीं आएगी।''

पर पूरी सच्चाई यह नहीं है। कपूरवालों के लिए बड़ी बहू भी क्या ! मगर बात कुछ और ही है। सूरज बाबू अब खुद अपनी दूसरी शादी के खिलाफ हैं। और किसीसे इस मामले में कभी कुछ नहीं कहा। हां, एक दिन बहुत पी लेने के बाद खुरशीदजान से बोल पड़े थे–अयं, अब शादी–फादी क्या..... करना।जब वैसी मेरी हुश्न की परी, बेनजीर महबूबा मेरी किस्मत में ना रही, तो अब क्या ! मैंने कहा–ले जा साला पंडा, तू भी क्या याद करेगा। खुरशीदजान ! मैं मान गया, जो जिसकी किस्मत में नहीं है, वह नहीं है। अपन को क्या, आओ, आज अपने हाथों से पिलाओ और वही गज़ल सुनाओ–

मेरा वक्त मुझसे बिछुड़ गया
मेरा रूप–रंग बिगड़ गया
जो चमन खिजां से उड़ गया
मैं उसी की फस्ले बहार हूं।

देखते ही देखते ब्रजरानी को गए अब दो साल बीत गए। विष्णुपद अब नौ साल का पूरा हो गया है। मां के बारे में वह सबसे अजब–अजब सवाल करता है। लोगों को चिट्ठियां लिखता है। और सब उसे किस्से–कहानियां सुनाते हैं। पर वह है कि सब की नाक में दिन–रात दम किए रहता है।

एक दिन सूरज कपूर अपने उस बेटे विष्णुपद को अंक से लगाकर रो पड़े थे। तभी मालिक साहब ने विष्णु को अपने बेटे कुंवर के साथ पढ़ने के लिए शिमला पब्लिक स्कूल में भेज दिया था। सोचा, यह तो खतरनाक है।

अगस्त बीत्ते–बीत्ते कपूर हवेली में एक अजीब घटना घटी। अमावस्या की रात अस्तबल की ओर से तीन ताले तोड़कर पहली मंजिल में सेंध लगाकर एक चोर हवेली में घुसा और पिहानीवाली के कमरे में जेवरात का बक्सा उठाते हुए वह रामहल्ला के हाथों पकड़ा गया।

मर्द लोगों को कानोकान नहीं पता लगने पाया। सारी बहुएं और रामहल्ला के बीच ऊपर बारादरी में वह चोर गिरफ्त था। पीठ पर उसके दोनों हाथ खींचकर बंधे थे। पैर रस्सी से बंधे थे।

सब लोग बड़ी बहू का मुंह तक रहे थे।

अजब सन्नाटा छाया था उस बारादरी में।

सुबह पांच बजे पिहानीवाली के मुंह से फूटा, ''ऐ चोर, तेरा नाम क्या है ?''

चोर ने बताया, ''मेरा नाम है पंचानन।''

यह नाम सुनकर बड़ी बहू को हंसी आ गई–पंचानन भगवान चोरी करते हैं। वह भी कपूरवालों के यहां।

''कब से चोरी करता है ?''

''जब से होश सम्भाला है।''

''तेरा घर कहां है ?''

''कोटला मुबारिक। अर्थात् जहां आज डिफेन्स कालोनी बसी है।''

''तेरी जात.....घर के और लोग ?''

पंचालनन बड़ी शांति से जवाब दे रहा है, ''जात गूजर, घर के और सभी लोग चोरी का काम करते हैं–यही हमारा खानदानी पेशा है।''

बड़े गर्व से पंचानन अपने खानदान के लोगों के बारे में बताने लगा।

बड़ी बहू सोचने लगी–अजब है, सब के खानदान का एक धर्म है.....पेशा है, और उस धर्म, पेशे में कहीं कुछ भी अधर्म नहीं है। फिर अकेली चोरी ही अपराध क्यों है ? सारे व्यापार, पेशे और धर्म अपराध क्यों नहीं ?

बड़ी बहू ने सहसा पंचानन चोर से कहा, ''अगर तू मेरा एक काम करने का वचन दे, तो मैं तुझे छोड़ दूंगी और काम पूरा हो जाने के बाद मुंहमांगा इनाम दूंगी।''

''क्या काम है मालिक ?''

''मेरी एक बहू को हरिद्वार का एक पंडा उठा ले गया है.....उसे वापस लाना है।''

''मालिक, मैं सिर्फ चोर हूं और चोरी के जरिए ही मैं कुछ कर सकता हूं। मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, मैं काली माई, बमभोले, गुरु महाराज की सौगंध खाकर कहता हूं.....ज़रूर करूंगा।''

रामहल्ला ने पंचानन को मुक्त कर दिया। उसे अपने कमरे में ले गए। जहां सेंध कटी थी, ताले ताड़े गए थे, सब रातोंरात ठीक कर दिए गए।

पंचानन रामहल्ला की कोठरी में सारा दिन सोता रहा। जैसे उसके लिए सारी प्रकृति ही उल्टी ळै। वह बिल्कुल सच बोलता है–जब से होश सम्भाला है.....दिन–भर सोना, रात–भर जागना। पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई है–किसी साहूकार के घर में सेंध से भीतर जाते हुए क्षणों में एक सांप ने उसे डस लिया था। पंचानन ने रामहल्ला को बताया है–कि किस तरह से दादा जी एक हाथ में जेवरात और दूसरे में मरा हुआ सांप लेकर सुबह घर लौटे थे और काली मां को प्रणाम करके सीधे स्वर्ग सिधारे थे।

3

सच, पंचानन सीधे दिल्ली से हरिद्वार पहुंचा। वहां बाजार में हलवाई की दुकान पर उसने यूं ही टोह लगाने के लिए महावीर पंडे की बात चलाई। जलेबी–दही खाते हुए एक ने कहा, ''अरे, वह साला महावीर यहां की अपनी सारी जायदाद बेचकर कनखल में गंगा–तीर पर अपनी उस प्रेमिका के लिए ताजमहल बना रहा है।''

''भाई, उसे गाली क्यों बकते हो, उसकी दिलेरी तो देखो,'' एक ग्राहक ने कहा। फिर दुकान–भर में महावीर और ब्रजरानी की चर्चा चल पड़ी। एक ने कहा, ''अपनी हवेली में वह चंदन की लकड़ी की किवाड़ लगवा रहा है।''

दूसरे ने बताया, ''लखनऊ से दो घोड़ों की बग्घी मंगवाई है, हवाखोरी के लिए।''

इसी एक हलवाई की दुकान पर नहीं, पंचानन हरिद्वार में जहां–जहां गया है–हर एग गली–कूचा, घाट–मंदिर, धर्मशाला, दुकान–ठीहा, चारों ओर उसने सुना है, लोगों के मुंह से महावीर और ब्रजरानी की बातें।

वह हर रोज कनखल जाता है और शाम को हरिद्वार लौट आता है। दूसरे–तीसरे दिन छोटी–मोटी चोरी करके मजे में रातें काट लेता है और दिन के वक्त कनखल पहुंचकर वही नई हवेली निहारता है।

मज़दूर–कारीगर–मिस्त्री काम पर लगे हैं। हवेली बनकर अब बिल्कुल तैयार हो गई है। चारों ओर बाहर–भीतर रंगाई–पोताई हो रही है। फर्नीचर और किवाड़ों पर पालिश। बगीचे में फूल–पौधों की क्यारियां लग रही हैं।

पंचानन ने पक्का पता लगा लिया है, जेठ बदी सप्तमी को महावीर ब्रजरानी बहू के साथ अपनी इस नई हवेली में गृह–प्रवेश करेगा और उस रात जो जश्न मनाया जाएगा, उसकी भी तैयारी अभी से चल रही है। पंचानन बड़े धैर्य से उसी दिन की प्रतीक्षा में यहां पड़ा है।

इस बीच चोरी के सिलसिले में एक रात पंचानन एक गलत घर में घुस गया। आया था एक सेठ की कोठी समझकर, पर निकला वह किस तालुकेदार की रखैल का घर।

''राम राम राम !''

पुरुष ने आधी रात के समय चिल्लाते हुए कहा, ''तू मेरी रखैल है, ये सारे ऐशो–आराम मेरे दिए हुए हैं। और तेरी यह हिम्मत.....।

औरत ने कहा, ''ऐसा मैंने क्या गुनाह किया ?''

''वह कौन था जो यहां पिछले दिनों रहकर गया है ? सही–सही जवाब दे, वरना.....।''

पंचानन ऊपर की खिड़की से बाहर चिपका हुआ वह सारा दृश्य चुपचाप देखता रहा। पुरुष के हाथ में एक लपलपाती हुई बेंत है। औरत निश्चल खड़ी है।

उसके ऊपर बेंत की मार पड़ने लगी। वह अधनंगी हो गई।

पुरुष चीखा, ''बताती क्यों नहीं ?''

''इस तरह नहीं बताऊंगी, अगर इंसान की तरह पूछा.....।''

स्त्री फफककर रो पड़ी।

पुरुष चुप बैठ गया। तब उस स्त्री ने कहना शुरू किया, ''मैं उसका नाम नहीं जानती। मैं सिर्फ इतना जानती हूं, वह क्रांतिकारी दल का था। चांदनी चौक, दिल्ली, में वाइसराय पर जो बम फेंका गया, वह उसी गिरोह का था। उसके दायें पैर में गोली की चोटी थी.....वह जैसे ही चलने लायक हुआ, यहां से चुपचाप चला गया।''

''वह इसी घर में, तुम्हारे ही पास क्यों आया ?''

''पता नहीं।''

''पहले का परिचित था ?''

''नहीं।''

''फिर यहां क्यों आया ?''

यह कहते हुए वह पुरुष पागलों की तरह उस स्त्री को पीटने लगा। एक बिन्दु पर आकर स्त्री ने चीत्कारते हुए कहा, ''रंडी.....वैश्या समझकर वह यहां आया।'' पुरुष के हाथ ढीले पड़ गए :

''क्या यह सच है ?''

''यही सच्चाई तुम्हारे मन की है। तुम यही सुनना चाह रहे थे।''

''पर क्या यह सच है ?''

स्त्री चुप रह गई। पुरुष चुपचाप शराब पीने लगा। काफी देर वहां सन्नाटा खिंचा रहा। पंचानन ऊपर खिड़की से चिपका हुआ एकटक उन दोनों को निहार रहा था, जैसे उन दोनों की एक–एक सांस गिन रहा था।

एकाएक पुरुष ठहाका मारकर हंस पड़ा। फिर गंभीरता से बोला, ''सच कहूं ? मैं भी तुझे वैश्या समझता हूं..... मगर तुम सिर्फ मेरी वैश्या हो। ऐसा समझना मुझे अच्छा लगता है। या मैं सिर्फ यही समझता हूं।''

स्त्री भरे कंठ सेबोली, ''मगर उसने मुझे यह नहीं समझा। देखो, जब वह यहां से जाने लगा है, मुझे यह पुस्तक भेंट कर गया है।''

पुरुष वह पुस्तक देखकर आगबबूला हो गया। पुस्तक फेंककर उसे इस तरह से मारा कि स्त्री की नाक से खून छलक पड़ा। फिर पुरुष उसे प्यार करने लगा।

सुबह चार बजे पंचानन खिड़की से नीचे उतरकर उस घर से बाहर चला गया। अगले दिन सुबह वह गंगा घाट पर गया चोरी करने के उद्देश्य से। मगर वहां हरि की पैड़ी पर उसी स्त्री को गंगा–पूजन करते देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने देखा, स्त्री की नाक फूली हुई है, पर उसके मुख पर न जाने कहां की अजब–सी प्रसन्नता है।दूर–दूर से

पंचानन उसे निहारता रहा। देखा, वह स्त्री घाट पर एक धर्मसभा में बैठी। फिर देखा, वह हरिकीर्तन कर रही है। दोपहर होते–होते वह अपने घर लौटी।

पंचानन ने अपने जीवन में पहली बार सोचा कि वह स्त्री वास्तव में क्या है ? और क्यों है ? फिर उसने अपने मन ही मन में फैसला किया कि चोर को सोचने–विचारने से क्या मतलब ? उसका काम सिर्फ चोरी करना है, किसीकी ज़िन्दगी में इस तरह दिलचस्पी लेना नहीं। किसीके दुःख–सुख से चोर का क्या सरोकार ?

उसने उस गली में जाना छोड़ दिया। गंगा–तट पर जाना छोड़ दिया। मगर एक दिन उसने कनखल में फिर उसी स्त्री को देखा.....और एक दूसरे पुरुष के साथ। वह यह अनुमान लगाने के लिए मजबूर हुआ कि हो न हो यह वही क्रांतिकारी है, जिसके नाते उस रात वह घटना घटी थी।

पंचानन में अजीब तरह की दिलचस्पी पैदा हुई। वह झटपट भिखारी के रूप में अपने को बदलकर उनके पास गया :

''साहब, जोड़ा बना रहे, दो पैसा।''

''क्या है, भाग यहां से।'' वह आदमी बोला।

''सदा सुहागिन रहो।''

स्त्री मुस्करा पड़ी, ''सदा सुहागिन.....यह क्या होता है रे ?''

''आपके पति जुगजुग जीवें।''

''अगर मेरे कोई पति न हो तो ?''

''यह कौन हैं ?''

''तू कौन है ?'' आदमी ने पूछा।

''मैं..... ?''

पंचानन वही खड़ा रह गया। स्त्री उसके हाथ में कुछ पैसे डालकर आगे बढ़ गई।

जेठ बदी सप्तमी का दिन। सारी नई हवेली सजाई हुई है। शहनाई बज रही है। बनारस की मशहूर रंडी की नाच आई है। लखनऊ के भांड़ आए हैं। ठीक दोपहर के दो बजे महावीर अपनी ब्रजरानी को लिए हुए उस नये घर में गया। गृह–प्रवेश का कर्मकाण्ड खत्म होते ही पंचानन उसी भिखारी के रूप में बाहरी फाटक पर डट गया। शाम होते ही वह घर के भीतर घुस गया और जैसे–जैसे रात घिरती गई वह उस कमरे में छिप गया जहां महावीर और ब्रजरानी की सेज लगी हुई थी। कमरे में लकड़ी की बड़ी अलमारी के पीछे छिपकर वह वहीं से कान लगाए सुनने लगा–बाहर बैठक में रंडी की नाच शुरू हो गई है। वह नाचती हुई गा रही है :

बलमा न जाओ परदेस,
तुमसे हमरी अरज यही
बलमा न जाओ परदेस
कौन बन जाऊं कौन बन ढूंढूं
घर जोगन का वेश।

रंडी की नाच के बाद भांड़ों की पारी आ गई। भांड़ों का गिरोह किसीकी नकल उतार रहा है। ठहाके इस कमरे तक गूंज रहे हैं। फिर भांड़ आलाप लेकर गाने लगते हैं :

पैयां लागी कर जोरि श्याम
मोसे न खेलो होरी।

पंचानन से वहां छिपा न रहा गया। वह उस संगीत की ओर खिंचकर बैठक के पास आ गया। बंद किवाड़ के पीछे ज़रा–सी दार पर आंखें चिपकाए वह मंत्रमुग्ध देखने लगा। एक भांड़ कृष्ण बना है दूसरा राधा बना है और शेष भांड़ गोपियां बने हैं। अजब हंसी–ठहाके के बीच श्रृंगार रस चल रहा है। राधा कृष्ण से विनती कर रही है :

पैयां लागी कर जोरिश्याम
मोसे न खेलो होरी।

मगर कृष्ण हैं कि विनती नहीं मान रहे हैं। रंग से भरी पिचकारी राधा की ओर तान रहे हैं। पंचानन उसी दरार से देख रहा है और सामने का चित्र अजब हो गया है–ब्रजरानी माथा झुकाए मूर्तिवत् बैठी है। माथे पर थोड़ा–सा घूंघट झूल रहा है और महावीर रह–रहकर उसकी ओर निहार रहा है। काफी देर हो गई तो महावीर ने इशारे से कहा–''किसी तरह मेरी ब्रजरानी को खुश करो। जो खुश कर देगा उसे मुंहमांगा इनाम दूंगा।''

''गुलनार बाई।'' भीड़ में से किसीने दाद दी।

गुलनार बाई नया गीत गाने लगीं–इश्क का गीत। और नाचती हुई वह ब्रजरानी के पास आकर बैठ गई। उसका घूंघट उठाकर गा पड़ी :

दिल के दरवाजों की जंजीरें कुहन
मुद्दतों की तल्ख महरूमी के बाद
आज फिर सोजे जुनूं से खुल गई.....।

हाय, कितनी सुन्दर है ब्रजरानी ! कितनी लाज है उसके चेहरे पर ! जैसे यही उसका अस्तित्व है.....वरना गुलनार बाई और भांड़ों की खींचातानी में वह बिखर नहीं जाती–अस्तित्व है तभी तो वह लाज उसकी अटूट सत्ता से जुड़ी हुई है। ब्रजरानी स्थिर अविचल निस्संग बैठी है।

नाच–गाना खत्म हुआ। पंचानन भागकर उसी कमरे में अपनी जगह आकर छिप गया। आधी रात बीत रही है। अब तक वह सेज सूनी पड़ी है। सहसा कमरे से बाहर बोलचाल हुई। और पंचानन ने देखा–ब्रजरानी रोती हुई उस सेज पर आकर गिर पड़ी। महावीर सेज के पास खड़ा हुआ है। ब्रजरानी की सिसकियां कमरे–भर में गूंज रही हैं। महावीर धीरे–धीरे कुछ कह रहा है.....नहीं–नहीं, ब्रजरानी को समझा रहा है। पंचानन तो चोर है। उसे क्या पता कि ऐसी रातों में इन विचित्र शब्दों और आंसुओं के बीच प्रेमी–प्रेमिका की नींद क्यों खत्म हो जाती है ? यह ऐसा भूचाल है, जहां सारे स्थिर अस्थिर हैं। उसे जैसे उस कमरे के सारे रहस्य अज्ञात है, जिसमें पड़कर जहां सब कुछ स्वाह हो जाता है। लेकिन यह ब्रजरानी अब तक उसमें ज़रा भी जैसे नहीं जली। बल्कि सच्चे सोने की तरह उसमें जलकर और निखर रही है। और वह महावीर–जो प्रेम–भिखारी की तरह उसके माथे पर झुका न जाने क्या मांग रहा है। उसके दिल में कितनी आग है–इतनी कि जिसमें भाव को भाषा मिल जाती है, भाषा को छंद मिल जाते हैं और छंद डैने फैलाकर आसमान में उड़ने लगते हैं।

पंचानन ने देखा, महावीर ब्रजरानी को अंक में भरकर बैठा है। ब्रजरानी अबोध शिशु की तरह फफक–फफककर रो रही है। थोड़ी देर बाद कमरे की रोश्नी बुझ गई। और थोड़ी ही देर बाद पंचानन को सुनाई पड़ने लगा–कोई आराम से सोने लगा है। किसीकी नाक बजने लगी है। किसे इत्ती जल्दी नींद आई है ? ब्रजरानी की सिसकियां तो अब तक सुनाई पड़ रही हैं। और वह आराम से सोने वाला कितना खुदगर्ज है। नहीं, उसे ऐसे नहीं सोने दूंगा। पंचानन आगे बढ़ा और बेहद मजबूत हाथों से उसने महावीर के पैर में चिकोटी काट ली। वह उछलकर चिल्लाया :

''चोर ! चोर !''

लोग दौड़े हुए कमरे में आए।

''कहा है चोर ?''

''क्या मालूम कहां है ? मगर वह चोर था.....उसने मुझे पकड़ना चाहा।''

महावीर गुस्से में थर–थर कांप रहा था। ब्रजरानी उसी तरह निर्विकार बैठी रही। सभी लोग एक–दूसरे से पूछने लगे। एक ने कहा :

''बाहर का दरवाजा तो बंद है, इसलिए भीतर ही होगा।''

''नहीं, दरवाजे के खुलते ही वह बाहर भाग गया होगा।''

कोई–कोई तो चोर के अस्तित्व के बारे में संदेह प्रकट करने लगे।

सारा घर एक बार अच्छी तरह से देखा गया। नहीं, चोर कहीं भी नहीं। कुछ ले भी नहीं गया–सब कुछ बदस्तूर है।

सुबह बड़ी देर से महावीर की आंख खुली। जगा तो देखा, ब्रजरानी वहां नहीं है। उसने तेज आवाज दी। नौकरानी दौड़ी आई–

''गंगा, रानी कहां है ?''

''चौके में आपके लिए नाश्ता बना रही है।''

''भेजो यहां उसे।''

थोड़ी देर बाद ब्रजरानी कमरे में दाखिल हुई। महावीर ने कहा, ''तुम इस तरह नहीं मानोगी ?''

ब्रजरानी चुप।

''बोलती क्यों नहीं ? रात को चोर दिल्ली से बुलाया था न ?''

''मैं कुछ नहीं जानती।''

''मैं तुम्हारा होश ठिकाने कर दूंगा।''

''मैं बिल्कुल होश में हूं।''

''मैं तुम्हारा पति हूं.....स्वामी.....मालिक.....प्रेमी सब कुछ।''

''कोई एक ही हो सकता.....सब कुछ नहीं।''

''फिर बताओ मैं तुम्हारा कौन हूं ?''

''पता नहीं।''

उनके बीच यही पहली तल्ख बातचीत थी। ब्रजरानी कमरे से चुपचाप जाने लगी। महावीर ने बढ़कर उसे पकड़ लिया और उसे पलंग पर बिठाकर बोला :

''क्या चाहिए तुम्हें ?''

''कुछ भी नहीं।''

''मुझ से प्रेम क्यों नहीं करतीं ?''

''क्या ?.....''

ब्रजरानी आंख फाड़े उसे देखती रह गई। महावीर ने कहा : ''तुम मुझे इस तरह बर्बाद नहीं कर सकतीं। मैंने तुम्हारे लिए सब कुछ सह लिया। अब तुम्हारे बिना और कुछ नहीं सह सकता। मैं तुम्हें किसी भी कीमत पर पाकर रहूंगा।''

''अब और क्या पाना चाहते हो ?'' ब्रजरानी ने भरे कंठ से कहा।

''तुम्हें.....तुम्हें.....तुम्हें।''

''मैं हूं तो तुम्हारी मुट्ठी में।''

''मैं तुम्हारे उन सबको, दिल्ली के उस नीलकटरे की कोठी के भीतर, खत्म कर दूंगा।''

''वहां मेरा अब कोई नहीं है।''

''सच ?''

''बिल्कुल सच।''

''सिर्फ मैं हूं न तुम्हारा ? एक बार हां कर दो।''

ब्रजरानी चुप रह गई। महावीर का सारा रक्त खौल उठा। सेज के सिरहाने पड़ी सोने की मोती गुंधी करधनी उठाकर उसने ब्रजरानी के मुंह पर मारा। करधनी के सारे मोती कमरे में बिखर गए। ब्रजरानी के मुंह पर खून बरसने लगा। वह वहीं बेहोश हो गई। उस बेहोशी में उसके तन–बदन पर कितने प्रहार हुए, उसे नहीं पता।

महावीर जाकर बाग में बैठ गया। गंगा आकर ब्रजरानी को देखते ही छाती पीट–पीटकर रोने लगी। छिपकर कनखल के बड़े वैद्य गोकुलचन्द जी को बुला ले आई।

कहीं डेढ़ घंटे बाद ब्रजरानी को होश आया। वैद्य ने पूछा :

''अब कैसी तबियत है ?''

''ठीक है।''

''इतनी चोट कैसे आई ?''

''पता नहीं।''

वैद्य जी चले गए। ब्रजरानी मूर्तिवत बैठी थी। गंगा कमरे–भर में बिखरी हुई मोतियां चुनने लगी। एकाएक ब्रजरानी बोली, ''मन के मोती बिखर गए हैं। ये अब नहीं चुने जा सकते।''

''पर ऐसा हुआ क्या बहूरानी ?''

''ऐसा शुरू में ही हो गया है।''

''मुझे पता है।''

''क्या ?''

गंगा एकटक निहारने लगी। बोली, ''ये मोती कहां रख दूं ?''

''जाकर गंगा की तलहटी में बिखेर आ, तुझे यह करधनी इनाम दूंगी। जा, देखती क्या है ?''

गंगा चली गई। मगर गंगा की तलहटी में नहीं, उसी वैद्य जी के पास। उस समय वैद्य के सामने एक बेहोश बालक पड़ा था और उसके मां–बाप बेतरह रो रहे थे। वैद्य जी बालक के उपचार में लगे थे और बीच–बीच में मुस्करा पड़ते थे।

गंगा वैद्य जी की चिंता, अथक परिश्रम और फिर भी वह मुस्कराहट–इन तीनों को एक साथ देखकर विस्मित रह गई। थोड़ी देर बाद बालक की चेतना लौट आई और वह बैठकर मां–बाप से बातें करने लगा। मां–बाप की खुशी का ठिकाना न था। इसपर वैद्य जी ठहाका मारकर हंस पड़े।

गंगा ने एकांत पाकर वैद्य जी से पूछा, ''आपको इस तरह हंसी क्यों आई ? उपचार करते समय आप मुस्करा रहे थे।''

वैद्य जी बड़े सहज ढंग से बोले, ''देखो न, जब तक बालक बेहोश था, मां–बाप किस तरह रो–पीट रहे थे, जैसे ही वह स्वस्थ हुआ वे किस तरह खुशी से झूम उठे। मैं उनकी इसी दशा पर मुस्करा रहा था।''

''कैसी दशा ?''

''अज्ञान की जो दुःख में रोता है और सुख में हंसता है, वह सदा नरक में है। दुःख–सुख दोनों में जो समान चित्त रहता है, वही स्वर्ग में है.....आनन्द में है।''

इसके बाद गंगा ने ब्रजरानी की पूरी कथा वैद्य जी को बताई। वैद्य जी उसकी बात को इतने शांत चित्त से सुन रहे थे, जैसे उन्हें कुछ भी नहीं मालूम। जबकि उन्हें पहले से सब कुछ मालूम था। उन्होंने अन्त में बताया, ''मुझे सब कुछ मालूम है।''

''फिर आप मेरी बात क्यों इस तरह ध्यान से सुन रहे थे ?'' गंगा ने पूछा। वैद्य जी ने उत्तर दिया, ''मैं हर क्षण को जीता हूं–यही मेरा आनन्द है और यही है इस सृष्टि का रहस्य।''

दूसरे दिन वैद्य जी स्वयं ब्रजरानी के पास आए। पास गंगा भी खड़ी थी। ब्रजरानी संताप और दुःख में डूबी थी। लग रहा था वह जड़ हो गई है। वैद्य जी ने बड़े कोमल स्वर में कहा, ''बहू, हर प्राणी का जीवन अमूल्य है, वह जैसा भी हो।''

''मेरा भी ?'' ब्रजरानी बोली।

''हां तुम्हारा भी।''

फिर एक सन्नाटा खिंच गया। वैद्य जी बोले, ''तुम्हारा सारा दुःख मानसिक है.....और झूठा है। तुमने अपने–आपको बीते हुए जीवन में कैद कर रखा है। जो बीत गया, वह कब का मर गया और तुमने वही मरी हुई लाश को अपने अंक से बांध रखा है। इसलिए तुम्हारा वर्तमान इतना दुखमय है.....यह भूतकाल का पश्चात्ताप है, जिसका न कोई अर्थ है न कोई सत्य। सत्य हो तुम.....केवल तुम और तुम्हारे वर्तमान का हर क्षण.....उसका एक–एक पल जो नदी की धारा की तरह असंख्य जल–बूंदों सहित तेजी से बहता चला जा रहा है।''

''कैसे.....कैसे ?'' ब्रजरानी तड़प उठी।

वैद्य जी बताने लगे, ''नदी को देखा है ? उसका जल धरा बनकर हर क्षण बहता रहता है.....उसमें चाहे कितनी गंदगी डाल दो.....कितनी आग फेंक दो.....उसे गाली दो.....श्राप दो.....पुष्प डालो उसमें.....कुछ भी डालो..... .कुछ भी फेंको.....वह बहती जाती है.....उसी रास्ते में पत्थर आते हैं.....चट्टाने आती हैं.....वह उसमें से अपना रास्ता बना लेती है.....क्योंकि उसे हर क्षण बहना है.....जीना है.....यही है सत्व नदी का, जो मुड़कर पीछे नहीं देखती, रास्ते में उसपर क्या बीता है, उसपर उसे दुःख–सुख नहीं होता, यही तो है आनन्द उस नदी का.....उसके हर क्षण का अनंत बहाव.....गतिशीलता.....और यही है अर्थ हमारे जीवन का।''

''मेरे दुःख की कल्पना कोई नहीं कर सकता।'' ब्रजरानी ने अजब करुणा से कहा।

''इस अनंत ब्रह्मांड में तुम्हारे दुःख–सुख का क्या अस्तित्व है ? इस विशाल अनंत सृष्टि में हर क्षण कितना–कितना संहार हो रहा है, तुम कल्पना क्या नहीं करतीं ?'' यह कहते हुए वैद्य जी के मुखमंडल पर जो कांति उभरी थी, उसने ब्रजरानी को जैसे छू लिया।

इतने दिनों बाद आज सहसा उसे लगा, वह अभी जीवित है। वह अब भी कुछ अनुभव कर सकती है। कुछ सोच सकती है। गंगा वहां खड़ी–खड़ी विस्मय से बहूरानी का मुंह निहारती जा रही थी और कहीं बहुत गहरे अपने को भी छूती जा रही रही थी। वैद्य जी जाने के लिए उठ खड़े हुए।

ब्रजरानी ने बढ़कर उनके पांव पकड़ लिए :

''अभी मत जाइए। कुछ देर और बैठिए..... ।''

''मेरे यहां न जाने कितने मरीज आकर बैठे होंगे।''

''पर क्या मैं सबसे बड़ी रोगी नहीं हूं।''

इस बात पर वैद्य जी ठहाका मारके हंस पड़े। विहंसते हुए बोले, ''रोगी समाज है, हमारा अंधविश्वासी..... कर्मकांडी धर्म है.....तुम कहां हो ? तुम हो पवित्र.....स्वस्थ, आनन्दमय। तुम्हें तु युद्ध करना है इनसे, जिसने तुम पर यह प्रभाव डाल रखा है कि उल्टे तुम तो रोगी, अपवित्र.....दुखमय।''

वैद्य जी कब उस कमरे से बाहर चले गए, ब्रजरानी को पता ही नहीं चला। पता तब चला जब गंगा की हंसी उसे सुनाई दी। वह भोजन भरा थाल लिए उसके पास आई। कितने दिनों बाद ब्रजरानी ने मन–भर भोजन किया। उसे अनुभव होने लगा, वह सचमुच बहती हुई नदी है। उसे साक्षात दिखने लगा–हरि की पैड़ी पर गंगा की वह धार बह रही है, जिसके तट पर उसके जीवन का वह करुण, मर्मान्तक नाटक खेला गया। नाटक खेलकर लोग न जाने कहां चले गए हैं और उसे छोड़ गए हैं अकेले उसका परिणाम भोगने के लिए। मगर उसने तो यह नाटक नहीं खेला। फिर उसका क्या कसूर ? यह दुनिया उसने तो नहीं बनाई। यही क्यों, उससे पूछकर तो उसे यह जन्म नहीं दिया गया। यह सब संयोग नहीं है ? वैद्य जी जैसे अब भी उसके सामने बैठे बोलते जा रहे हैं–कल्पना करो बहू, सूरज कपूर से तुम्हारी शादी न हुई होती.....शादी से पहले कहीं इस महावीर पंडे ने तुम्हें देख लिया होता और तुम पहले से ही इसकी पत्नी हुई होतीं।

तो ?

4

हर शाम, दो सफेद घोड़ों की बग्घी दरवाजे पर तैयार होकर खड़ी हो जाती। महावीर अकेले उसपर जाकर बैठ जाता और सूनी नजर से पहले अपनी हवेली की तरफदेखता फिर नजर घुमाकर कनखल की गंगा तलहटी के उस पार की पहाड़ियों पर न जाने क्या देखने लगा। पहाड़ियों पर जब अंधेरा उतर आता और जब पहाड़ियों पर उगा हुआ जुंगल भी नजरों से ओझल हो जाता तो वह अपनी आंखें ऊपर आसमान की ओर मोड़ देता। किसी एकसितारे को न जाने कितनी देर तक देखता रह जाता। फिर चुपचाप बग्घी से नीचे उतरकर हवेली में चला जाता।

ऐसा रोज होता–पिछले कितने महीनों से लगातार–नियमित। कहीं एक दिन भी नागा नहीं। एक दिन अचानक ब्रजरानी ने महावीर से कहा, ''आप रोजा शाम को कहीं घूमने के लिए तैयार होते हैं, पर जाते क्यों नहीं ?''

महावीर चकित होकर ब्रजरानी का मुंह देखने लगा। यह ऐसा पहला प्रश्न था महावीर से ब्रजरानी का। उसने कहा, ''बिना अपनी ब्रजरानी के कहां जाऊं ? क्यों जाऊं ?''

''इस तरह घूमते हुए हमें कोई देखेगा, तो..... ?''

''तो क्या ?.....मुझे अब भी किसीसे कोई डर है ?''

''पर मैं क्या करूं ?''

उस दिन सिर्फ इतनी–सी बात हुई, आगे वही मौन। और एक दिन वही अपूर्व आश्चर्यजनक घटना घटी। जैसे ही शाम को प्रतिदिन की तरह महावीर सज–धजकर अपनी बग्घी में बैठा और हवेली की देहरी की ओर देखने लगा, वैसे ही उसे ब्रजरानी आती हुई दिखी। बग्घी में सीधे आकर बैठ गई–मूर्तिवत। और उस दिन पहली बार वह बग्घी हवेली के अहाते से बाहर निकली। कनखल की सड़क पर हजारों लोग उस बग्घी के दृश्य को देखने लगे। कनखल घूमकर वह सवारी हरिद्वार की ओर बढ़ी। हरिद्वार से पहले वही सड़क मिली, जो दिल्ली जाती है.....यह दिल्ली से हरिद्वार आती है। इसीसे ब्रजरानी की पालकी तब हरिद्वार आई थी।

हरिद्वार की सड़क पर जब वह बग्घी दौड़ी तो जैसे पूरे शहर में तहलका मच गया। कुछ लोग उसके पीछे दौड़े। कुछ शोर मचाने लगे। कहीं से हंसी.....कहीं से गाली.....कहीं से वाह–वाह और कहीं से पत्थर। बग्घी में एक जगह एकांत में महावीर ने ब्रजरानी को आलिंगन में बांधना चाहता। तो ब्रजरानी ने कहा–इसे भी उसी सड़क पर क्यों नहीं किया ? यह भी सबको दिखा देते। पुरुष अपनी बंदिनी के साथ क्या–क्या कर सकता है–लोगों को यह जानना चाहिए–यही तो तुम्हारा सुख है न ! महावीर ठहाका मारकर हंस पड़ा था।

उस रात पहली बार महावीर को लगा, उसका नया जीवन सार्थक हुआ। तभी ब्रजरानी ने पूछा, ''अपने साथ मुझे दूसरों को दिखाना चाहते थे ? सच–सच बताना.....।''

''युह सुख ऐसा है, जिसे तुम नहीं समझ सकती।''

''दिखाने का सुख ?''

महावीर को जैसे कहीं कुछ छू गया। उसने कहा, ''इस संसार में सब कुछ दूसरों को दिखाना तो है.....बताओ न, तुम्हारा दुःख आखिर और क्या है। यही न कि तुम अपने–आपको मेरी पत्नी.....मेरी प्रेमिका.....अर्थात् मेरी नहीं दिखाना चाहती.....तुम्हारा सुख है या था.....उसी धर्मपति सूरज कपूर की पत्नी दिखना।''

इस उत्तर की उम्मीद ब्रजरानी को महावीर से नहीं थी। वह सोचती रह गई। यह कैसा पुरुष है, इसमें ऐसा क्या है ? इसके साहस और विवेक की बुनियाद क्या है ? इसने ऐसा मुझमें क्या देखा ? वह समय अब जैसे आ गया है–इससे पूछना चाहिए। पर ब्रजरानी बहुत चाहकर भी नहीं पूछ पाई।

उस दिन पंचानन के मन में न जाने क्या आया। पिछली रात जहां उसने चोरी की थी। सोने का एक जड़ाऊ हार और एक नथ उसके हाथ लगी थी। गठरी में उसे बांधे वह हरि की पैड़ी पर घूम रहा था। उस स्त्री को देखते ही वह निःसंकोच उसके पास गया। वह पूजा–पाठ करके घर जा रही थी। सामने उस अजनबी को देखकर बोली, ''क्या है ? कौन है तू ?''

''मेरा नाम पंचानन है, मैं चोर हूं।''

वह स्त्री घबड़ाई हुई उसे नीचे से ऊपर तक देखती रही। पंचानन बोला, ''मैं आपको जानता हूं। एक रात संयोग से मैं आपके ही घर में चोरी के लिए घुसा था, मगर रात–भर आपके कमरे के रोशनदान से चिपका बैठा रह गया। आपका वह पति आया था और आप दोनों में झगड़ा हुआ था.....और उसने आपको मारा था।''

पंचानन ये सारी कैफियत इस तरह बयान कर रहा था, जैसे उसे कहीं कोई डर न हो और वह औरत विस्मय से केवल उसका मुंह तके जा रही थी। पंचानन ने कहा, ''मुझे पता है आपका नाम–नंदिनी.....आपके पड़ौसी से पूछा था।''

स्त्री भीतर ही भीतर कांपने लगी थी–जैसे उस पंचानन को सब कुछ पता है। नंदिनी रास्ता बचाकर चुपचाप जाने लगी। पंचानन उसके पीछे–पीछे चलने लगा। अपने घर के पास आकर नंदिनी ने पूछा, ''क्यों मेरे पीछे लगा है ?''

पंचानन बोला, ''मेरी यह गठरी रख लीजिए। इसमें दो बेशकीमती गहने हैं।''

नंदिनी ने गुस्से से उसकी ओर देखा और घर की ओर मुड़ गई। पंचानन वहीं खड़ा रह गया। स्त्री आंख से ओझल हो गई। पंचानन बार–बार उसके घर की मुंडेर पर बैठे कबूतरों को निहारने लगा। एकाएक एक बच्चे ने उसे छूकर कहा, ''हे, तुम्हें बुला रही हैं।''

''कौन ?''

''उस घर में।''

पंचानन उस घर के बाहर आकर खड़ा हो गया। नंदिनी ने कहा, ''अब भीतर क्यों नहीं आता ?''

वह मुश्किल से बरामदे में जाकर खड़ा हो गया, बोला, ''माफ कीजिए, मैं अन्दर नहीं आ सकता। आपको ही बाहर आना होगा।''

नंदिनी का आश्चर्य हर क्षण बढ़ता ही जा रहा था। बरामदे में आकर पंचानन की खुली गठरी में दोनों आभूषण देखकर वह जड़–सी रह गई।

''मगर चोरी का माल मैं क्यों रखूं ?''

''मैं चार–छः दिनों में ले लूंगा, तकलीफ माफ।''

''पर तू है कौन ?''

''बताया न, मैं चोर हूं।''

''कहां से आया है ?''

''दिल्ली से।''

''हाय राम ! इतनी दूर !''

''यहां कुछ काम ही ऐसा है।''

''कैसा काम ?''

''मैं कुछ खा आऊं, फिर बताता हूं।''

खुली गठरी उसी तरह छोड़कर वह तेजी से चला गया। नंदिनी मूर्तिवत खड़ी रह गई। सोचती रही, यह चोर..... .....इसने मेरा सब कुछ जान लिया है। पर इसने मुझपर इतना विश्वास क्यों, कैसे किया ? गहने को भीतर ले जाकर जब वह उसे छिपाकर रखने लगी, तभी उसके हाथ कांपे। वह आईने के सामने गई। हार को गले में डाला। नथ को नाक पर रखा, और अपने–आपको वह देखती रह गई।

एकाएक वह चौंकी। बाहर ज़रूर वही पंचानन आ खड़ा हुआ होगा। बाहर निकलकर देखा, वहां कोई नहीं। फिर कमरे में आकर वही दोनों गहने पहनकर आईने के सामने आने लगी। चौंककर ऊपर रोशनदान पर नजर दौड़ाई, वहां सिर्फ धूप का एक टुकड़ा था। राजा साहब के बनवाए हुए कितने गहने हैं उसके पास। मगर इन गहनों में ऐसा क्या है ? तभी पंचानन की आवाज आई।

वह भोजन करके आया था और सिगरेट पी रहा था। मगर नंदिनी को देखते ही उसने झटाक से सिगरेट फेंक दी और मुंह का धुआं भीतर ही गटाक से पी गया।

पंचानन बोला, ''पहले आप बेठिए तो मैं बैठूं।''

नंदिनी कुर्सी पर बैठ गई और वह पास में फर्श पर बैठ गया।

''नहीं–नहीं, यह कैसो होगा.....इधर कुर्सी पर बैठो।''

''जी नहीं, मेरा स्थान जमीन है.....मेरी सेज लगती है सेंध में, नकब के सूराख में या किसीके घर के अंधेरे में या रोशनदान.....''

यह कहते–कहते वह हंस पड़ा–बिल्कुल बच्चों की तरह। फिर थूक घूंटकर बोलने लगा, ''जी, मैं खानदानी चोर हूं। मेरे बाबा ने दिल्ली में मोहम्मद बहादुरशाह सानी के हरम में घुसकर चोरी की है, परबाबा ने अकबरशाह सानी के यहां और मेरे बाप ने उस अंग्रेज बहादुर हडसन की कोठी में चोरी की है, जिसने बहादुरशाह जफर के तीनों शहजादों को पिस्तौल से दाग कर खत्म किया था और उनके सिरों को काटकर जिसने एक थाली में सजाकर अंग्रेज बादशाह के सामने पेश किया था। हमारे खानदान का उसूल है कि हम चोरी करते समय पहली बार पकड़े जाएं तो हम उसे कुछ ऐसा काम कर दिखाने की कसम लेते हैं जो उसकी सबसे बड़ी इच्छा हो। तो हुआ यह है कि मैं दिल्ली में चोरी करते समय पहली बार पकड़ा गया और इस बात पर छोड़ दिया गया कि उस घर की एक बहू, जिसे हरिद्वार के एक पंडे ने धर्म के नाम पर ठग लिया है, उसे चुराकर लाऊं।''

नंदिनी कांप उठी, ''हाय राम, वही महावीर पंडा तो नहीं, जिसने दिल्ली के किसी सेठ की बहू को हड़प लिया है।''

''हां, वही बदमाश महावीर पंडा और वह गरीब बहू ब्रजरानी.....जिसे लेकर अब वह कनखल की हवेली में रहता है–मैं दो बार उसकी हवेली में घुस आया हूं। मगर मेरी समझ में नहीं आता, मैं क्या करूं। मैंने अब तक धन–दौलत की चोरी की है। उस बहू की चोरी कैसे करूं ?''

नंदिनी आंख फाड़े उस पंचानन को देखती रह गई।

पंचानन बोला, ''आप श्रेष्ठ हैं.....यहां की रहने वाली हैं। मुझे कोई रास्ता सुझाइए।''

नंदिनी बोली, ''भाई, न मैं श्रेष्ठ हूं न यहां की रहने वाली हूं, इस संबंध में मैं क्या मदद कर सकती हूं ?''

''इस घर का वह पुरुष कौन है, जिसने उस रात..... ।''

''वह कहीं के राजा साहब हैं, मैं उनकी..... ।''

''बस.....बस.....बस.....''

काफी देर तक वहां सन्नाटा छाया रहा।

पंचानन बोला, ''मेरी ओर से ब्रजरानी बहू को एक खत लिख दीजिए। मैं वह खत उसके सिरहाने रख आऊंगा।''

''ओहो, जब तुम उसके सिरहाने तक घुस सकते हो तो उससे सीधे बात ही क्यों नहीं कर लेते ?''

पंचानन गंभीर हो गया, ''हमारे गुरु महाराज का सख्त आर्डर है, किसीकी–बहू–बेटी से इस तरह बात नहीं कर सकते। आपसे न जाने क्यों, कैसे बात कर ली.....सच कालीमाई की कसम।''

''अच्छा बोलो, क्या खत लिखूं ?''

पंचानन बोलने लगा, ''स्वस्ति श्री कालीमाई सदासहाय। आगे समाचार यह है कि मैं दिल्ली का चोर हूं। पंचानन मेरा नाम है। मैं यहां आपकी दिल्ली वाली जेठानी श्रीमती पिहानीवाली कपूर की तरफ से आया हूं। आपको यहां से सही–सलामत दिल्ली वापस ले जाने के लिए। बाकी हालात आपसे मिलने पर बताऊंगा। यह खत आपको बाखैरियत मिले। मैं अगले दिन दोपहर के ठीक बारह बजे फकीर के रूप में आपकी हवेली के फाटक पर कोई गीत गाता आऊंगा। मुझे इस खत का जवाब दीजिए।

आपका खिदमतगार,
–पंचानन''

नंदिनी से वह खत लिखाकर पंचानन वहां से चंपत हो गया। और शाम के झुटपुटे में ही वह महावीर की हवेली में जा छिपा। रात को ब्रजरानी अकेली ही अपने सोने के कमरे में आई। बिस्ते पर लेटे–लेटे ही रोशनी जलाकर वह कुछ पढ़ने लगी। यही वक्त सबसे अच्छा था पंचानन के लिए। अपना वह खत उसके ऊपर फेंककर वह वहां से तीर की तरह निकल गया। ब्रजरानी चौंक कर उठी। खत पढ़ा और उसे पूरे घर में वह उस आश्चर्यजनक व्यक्ति को ढूंढने लगी। पर कहीं उसका पता नहीं।

गंगा ने कई बार पूछा, ''क्या ढूंढ रही हो बहू ?''

ब्रजरानी चुप।

रात को महावीर ने भी पूछा, ''क्या बात है, बहुत चिंत्ति लग रही हो ?'' ब्रजरानी किसीको क्या बताती !

रात–भर उसे नींद नहीं आई। खत की एक–एक पंक्ति उसके सामने खिंची रही। सुबह से ही वह उस घड़ी का इंतज़ार करने लगी, जब वह पंचानन फकीर के रूप में उसकी हवेली के फाटक पर दिखाई दे। उसे कुछ भी विश्वास नहीं हो रहा था। वह हवेली के बाहर बाग में घूमती हुई उसी फाटक की ओर निहार रही थी। और सच, ठीक वक्त पर एक फकीर गीता गाता हुआ उसी फाटक पर दिखा। वह अजब स्वर में गा रहा था :

बुलबुलो मत रो यहां
आंसू बहाना है मना।

भीतर से दौड़ी हुई गंगा आई–फकीर को भीख देने के लिए। फकीर ने भीख लेने से इन्कार कर दिया। तब तक ब्रजरानी पास पहुंच गई। पंचानन ने बहू को नीचे से ऊपर तक देखा और फिर माथा झुकाए खड़ा रह गया।

ब्रजरानी ने इशारा किया–गंगा भीतर चली गई।

तब पंचानन ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

ब्रजरानी को कुछ भी नहीं सूझ रहा था, वह क्या बोले।

पंचानन ही बोला, ''मेरा खत पढ़ लिया बहू ?''

''पढ़ लिया।''

''फिर अब क्या हुकुम है ?''

''मेरा बेटा कैसा है–विष्णुपद ?''

''उन्हें कहीं बाहर भेज दिया गया है पढ़ने।''

ब्रजरानी के होंठ, हवा में पीपल पात की तरह कांपने लगे और साथ ही पंचानन के शब्द भी याद आने लगे :

बुलबुलो मत रो यहां

आंसू बहाना है मना।

बहू न जाने कितनी बातें करना चाह रही थी, पर कुछ भी बोल पाना असंभव हो रहा था। पंचानन के हाथ में एक खत देकर वह तेजी से भीतर चली गई।

पंचानन सीधे नंदिनी के घर आया। नंदिनी ब्रजरानी का खत पढ़ने लगी। पंचानन कहता रहा :

'मुझे भी सुनाओ.....मतलब बताओ।''

नंदिनी खत सुनाने लगी :

''हे भाई !

कर जोड़ प्रणाम। पहले तुम्हारी हिम्मत और साहस की बड़ाई कर दूं। तुम दिल्ली से यहां मेरे पास पहुंचे, मुझे दर्शन दिया इसके लिए बहुत धन्यवाद। तुमने मुझे देखा। यह हवेली देखी.....मेरा विचार है, तुमने छिप–छिपाकर बहुत कुछ देखा होगा। तो मैं वह जानकी नहीं हूं, जिसे रावण ने हरण कर उस लंका की अशोक–वाटिका में रखा था। मैं हूं एक साधारण मामूली औरत जो इस तरह अंधविश्वास का शिकार हुई। मैं समझती हूं, मेरी तरह न जाने कितनी असंख्य स्त्रियां किसी न किसी चीज़ की शिकार हैं। जानकी और रावण का संघर्ष धर्म और अधर्म का था, मेरी और इस महावीर पंडे की लड़ाई अधर्म और अधर्म की है। मैं अब तक कैसे और क्यों जीवित हूं, मैं खुद नहीं समझ पाती। पिहानीवाली बड़ी बहू को मेरा चरणस्पर्श कहना। और उनसे साफ बता देना, अब मैं उस कपूर कोठी की बहू नहीं रही, ना कभी मुझे वहां वापस ही आना है। मुझे यहां से कोई चोर उठाकर फिर उसी कपूर घर में ले जाए, यह अब नहीं हो सकता। एक धर्मका डाकू मुझे यहां ले आया है, बस यही अंत है मेरे जीवन का। अगर मेरी धर्म–पति मुझे यहां से नहीं ले गया तो अब मैं उसकी धर्मपत्नी नहीं रही। अब मैं हूं वही जो अधर्म ने मेरे ऊपर जुल्म किया। पिहानीवाली मुझे क्षमा दें। उनकी जो शक्ति थी और जो है, उसे मैं जानती हूं और वह मेरे सिर–माथे। कल्याण इसीमें है कि वह मुझे सदा के लिए भूल जाएं, जैसे कि मेरा पति मुझे यहां छोड़कर सदा के लिए भूल गया है। हमारे इस अधर्मी समाज में स्त्री का यही दर्जा है। बस, मेरी प्रार्थना है कि पिहानीवाली बहू मेरे प्राण से प्यारे पुत्र विष्णुपद की रक्षा करें.....उसे पाले–पोसें–मेरी जगह। और समय से उसे बताए कि उसकी मां पर क्या अत्याचार–अन्याय हुआ है–बस, सदा के लिए विदा, और क्षमा, भाई पंचानन, अब तुम यहां से दिल्ली वापस चले जाओ, यही है तुम्हारी इस अभागिन की सेवा और मदद।

ब्रजरानी।''

यह खत पढ़ते–पढ़ते नंदिनी रो पड़ी। पंचानन जड़वत् शून्य में देखता रह गया।

वह दुःख से बोला, ''अब क्या करूं ?''

नंदिनी ने कहा, ''उसने जो कुछ लिखा है, सब ठीक है।''

''एक दिन तुम उससे मिलो।''

''पर कैसे ? किस बहाने ?''

''अपना और मेरा यह सब कुछ बता कर।''

''अच्छा, तुम मुझे उस हवेली तक छोड़ आना।''

दूसरे दिन पंचानन ठीक उसीदोपहर के वक्त नंदिनी को उस हवेली के फाटक पर छोड़कर स्वयं वापस चला आया कनखल बाजार में। नंदिनी की भेंट सबसे पहले उसी गंगा से हुई।

गंगा ने पूछा : ''आप कौन हैं ?''

''मैं यहीं हरिद्वार की रहने वाली हूं, बहू से मिलने आई हूं।''

गंगा ने बताया, ''वह बीमार हैं।''

''क्या हुआ है ?''

गंगा चुप रह गई।

सामने से महावीर गुजरा।

गंगा ने इशारे से कहा, ''मालिक को चले जाने दीजिए।''

दोनों स्त्रियां एक किनारे खड़ी हो गई। महावीर की आवाज आई, ''गंगा, मैं सहारनपुर जा रहा हूं, रात तक लौट आऊंगा, बहू को देखना।''

यह कह महावीर घोड़े पर चढ़कर निकल गया। गंगा ने खुलकर सांस ली।

बोली, ''बात यह है कि मालिक का हुकुम है कि कोई औरत बिना मेरी इजाजत घर के भीतर न जाए..... मतलब.....।''

नंदिनी बोली, ''मुझे सब मालूम है, बस मैं एक बार बहू से मिलना चाहती हूं। मैं भी एक राजा की.....।''

गंगा प्रभावित हो गई। नंदिनी को साथ लिए अंदर गई। आंगन में उसे ठहराकर अकेली उस कमरे की ओर बढ़ी।

वापस आकर बताया, ''सो रही हैं। आप तब तक यहां बेठिए।''

नंदिनी को एक ऊंचे आसन पर बिठाकर गंगा उसे पंखा झलने लगी। नंदिनीचुपचाप उस घर को निहारती रही। इतना अच्छा घर.....इतना नया, और इतना सूना ! गंगा चतुर थी। वह बताने लगी इधर–उधर की बातें, नंदिनी के मन को बांधने के लिए। ''यहां मैं हूं.....एक नौकर है, एक माली है, बहू हैं और मालिक। क्या किया जाए, मालकिन की तबियत ठीक नहीं रहती। मालिक ने एक जंगल का ठेका लिया है। बहुत काम रहता है उन्हें। हां, क्या किया जाए, घर सूना तो लगता ही है ऐसी दशा में, आपके यहां कौन–कौन हैं ?''

नंदिनी गंगा की बात पर मुस्करा पड़ी, ''मैं हरिद्वार में अकेली रहती हूं, एक नौकर और एक महाराजिन है साथ में।''

''और आपके पति ?''

नंदिनी चुप रह गई। तभी बहू के कमरे में आहट आई। गंगा दौड़ी। थोड़ी देर बात लौटी, ''आइए मेरे साथ।''

गंगा नंदिनी को संग लिए हुए बहू के कमरे में जब दाखिल हुई, उस वक्त ब्रजरानी बिस्तर से उठकर तकिये के सहारे बैठने की कोशिश कर रही थी और दर्द से तड़प उठी थी।

गंगा ने उसे सहारा दिया और नंदिनी एकटक उसे निहारने लगी। परिचय हुआ। फिर एक सन्नाटा छाया रहा।

जब गंगा उस कमरे से बाहर गई, तब नंदिनी ने जल्दी–जल्दी में सारी बातें बताईं। पंचानन की बात। उस खत की बात और जब अपनी कैफियत बताने लगी तो उसके माथे पर पसीने की बूंदे छलक उठीं।

''आपने बिल्कुल सही लिखा है,'' नंदिनी ने कहा, ''आपकी ही तरह इस समाज में असंख्य स्त्रियां किसी न किसी चीज़ की शिकार हैं.....मैं भी एक राजा की रखैल हूं।''

ब्रजरानी का मुख पीला पड़ गया था। लगता था, उसके सारे बदन पर मार पड़ी है। वह बोली, ''मार–मारककर प्यार पाने की बात आपने सुनी है ?''

नंदिनी ने कहा, ''वही है मेरा जीवन। पर मेरा आश्चर्य एक और है–मैं अपने राजा से प्रेम करती हूं, फिर भी उन्हें मुझपर विश्वास नहीं।''

आगे नंदिनी ने उस घटना को बताया, जब उसके घर में अचानक एक रात वह फरारी युवक आया था। जिसके बायें हाथ में पिस्तौल की गोली लगी थी और जिसने बताया था–जहां भारत मां विदेशियों के हाथ वंदिनी हो, वहां की सारी स्त्रियां, सारा मानव समाज बंदी है।

बात करते–करते अंत में ब्रजरानी ने जैसे नंदिनी के सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। उसने बताया–उसका जीवन अब यही है। यही है उसका आदि और अंत। दुःख और सुख। स्वर्ग और नरक। करुणा और आनंद। उसे अब कहीं नहीं जानाहै। यही है उसकी सारी स्वीकृति और अस्वीकृति। पर जब बात ब्रजरानी के पुत्र विष्णुपद पर आई, तब जैसे वह विक्षिप्त–सी हो गई। वह रो–रोकर कहने लगी :

''मुझे केवल विष्णुपद के लिए तब तक जीना है, जब तक वह पूर्ण चेतन न हो जाए। मैं महज उसी दिन के लिए जीवित हूं। उस पंचानन को कहना, दिल्ली जाकर मेरा यह संदेश मेरे विष्णुपद को दे कि उसकी मां जीवित है। मेरे लिए कभी कोई चिंता न करे। अपने को वह पूर्ण पढ़ा–लिखा विवेकवान पुरुष, जो सदैव निर्भय हो। उसका अपना एक निजी सत्य हो.....व्यक्तिव हो.....और तब वह मुझे अकेले ढूंढता आए। मैं उसे अवश्य मिलूंगी। उसी दिन के लिए मैं तब तक किसी भी हालत में अपने को जीवित रखूंगी।''

ये बातें नंदिनी लिखती जा रही थी। ब्रजरानी ने नंदिनी के हाथ से वह कागज़–कलम लेकर उसके नीचे और न जाने क्या–क्या लिखना शुरू किया और जब उस कागज़ पर कहीं कोई जगह नहीं बची तब वह उसे मोड़कर आंखों पर रखकर निःशब्द रोने लगी।

नंदिनी उस खत को सम्भाले अपने घर लौट आई। दूसरे दिन दिल्ली जाने से पहले पंचानन ठीक उसी दोपहर के वक्त हवेली के दरवाजे पर आया।

गंगा ने पूछा, ''कोन हो तुम ?''

''मैं चोर हूं।'' पंचानन ने सहज ढंग से कहा।

गंगा डरकर भागी तो पंचानन ने उसे पुकारकर रोक लिया, ''सुनो तो, चोर मेरा नाम है, भीतर जाकर बहू से बोल देना, बस। मैं तुम्हारी चोरी करने नहीं आया हूं, हां।''

''मेरी क्या चोरी करेगा, बड़ा आया है दिल्ली से ?''

''मानता हूं, तुम इनती सुंदर हो, पर मुझसे क्या।''

''हे, तू कैसे बोलता है ?''

''हे, तू कैसी बोलती है ?''

''मुझसे दिल्लगी मत कर, हां।''

''मुझसे भी मत कर, हां।''

''बड़ा ढीठ है।''

''बड़ी सुंदर हो।''

''मैं बहू जी को क्यों बताऊं कि तू यहां आया है, बड़ा लाट साहब बन कर ?''

''मत बताओ, मैं जाता हूं।''

पंचानन लौट पड़ा। गंगा ने उसे टोका :

''ऐ चोर, रुक जा, बड़ा आया गुस्सा दिखाने।''

पंचानन खिसिर–खिसिर हंसता हुआ दरवाजे पर खड़ा रह गया। गंगा भीतर गई। दौड़ती हुई वापिस आई, आंख नचाकर बोली :

''चल आ अंदर।''

''हैय, कैसे बोलती है ?''

''तू बड़ा अच्छा बोलता है।''

पंचानन को संग लिए गंगा बहू के कमरे में खड़ी रह गई। बहू उस पंचानन को एकटक निहारती रही। गंगा बोली, ''यह कहता है, 'चोर' है।''

बहू के मुख पर हंसी बिखर गई।

''यह मेरा भाई है।''

पंचानन ने बढ़कर बहू के चरणों पर अपना माथा गड़ा दिया।

''मेरा दूसरा खत अपने हाथों से मेरे विष्णुपद को दे देना और मेरे विषय में कभी किसी और को ना बताना। पिहानीवाली से कहना, वह मुझे भूल जाएं।''

पंचानन हाथ जोड़े बोला, ''बहन, मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता।''

''गंगा, इसे भोजन कराओ।''

''नहीं। मैंने भोजन कर लिया है।''

''कहां ?''

''नंदिनी मां के यहां।''

''रास्ते के लिए तुम्हारे पास खर्च कहां है.....ये लो सो रुपये।''

''नहीं–नहीं, मेरे पास बहुत माल है। रुपये–पैसे की कोई कमी नहीं। यहां हरिद्वार में हर रात कहीं न कहीं चोरी करता रहा हूं। बहुत माल लगा है हाथ में।''

यह कहते हुए पंचानन ने अपनी गठरी खोली। उसमें से वही जड़ाऊ हार, वही सोने की करधनी और नोटों की एक गड्डी दिखाई।

सब विस्मित रह गए। गंगा ज़ोर से चीखी।

पंचानन ने बढ़कर गंगा के गले में वही हार डाल दिया और बहू के चरण छूकर तीर की तरह बाहर निकल गया।

5

चांदनी चौक में अब तक तमाम नई–नई दुकानें खुल गई थीं–पीक एंड एलेन, प्राविजन एंड वाइन मर्चेन्ट्स, क्वसिजी एंड जहीर जनरल ऑर्डर सप्लायर्स, सूरजमल जेठमल हीराचंद साऊ, कुइन्स स्टोर, लंदन क्लाथ स्टोर्स, झावजीवाला शू स्टोर्स, घंटावाला मिठाई की दुकान।

एक ओर गली में गुड़वाला रिलीफ सोसाइटी खुली है–दूसरी ओर 'न्यू इंडिया बैंक'। फव्वारे के पास अल्फ्रेड कंपनी का थियेटर आया हुआ है। उसके सामने एक तरफ है इलाहाबाद बैंक की बिल्डिंग और दूसरी तरफ है 'ब्रिटिश इंडिया बैंक'। कपूरवालों का खाता इस ब्रिटिश इंडियन बैंक में है।

पंचानन घूमते–घूमते बाईसवें दिन इसी चांदनी चौक से गुजरता हुआ नीलकटरा मुहल्ले में आया। कोठी के सामने दोनों तरफ फाटक पर बंदूक लिए दरबार मुस्तैद थे। कोठी के सहन में, गद्दी पर, दरवाजे पर व्यापारियों और लोगों

की भीड़ थी। सो पंचानन कोठी के पीछे जाकर खड़ा हुआ। बड़ी देर इंतज़ार करने के बाद वही रामहल्ला उसे दिखा। पंचानन ने इशारा किया।

रामहल्ला पास आकर पंचानन को पहचान नहीं सका।

''कौन हो भाई तुम ?''

''अरे, भूल गए ? वही चोर पंचानन।''

यह कहकर पंचानन ही–ही करके हंस पड़ा। खीस निपोरकर बोला, ''हरिद्वार से लौटा हूं, ब्रजरानी बहू से मिलकर लौटा हूं, बहू ने यह खत दिया है बड़ी बहू को।''

रामहल्ला पंचानन को नीचे से ऊपर तक देखता रह गया। उसे संग लिए हुए कोठी में घुसा। पिहानीवाली को खबर दी। पंचानन ने बहू को खत दिया। खत पढ़कर पिहानीवाली रोने लगी। घर की सारी बहुएं धीरे–धीरे वहां जमा हो गई। सब ने खत पढ़ा।

पिहानीवाली ने रोते हुए कहा, ''धिक्कार है कपूरवालों को !''

रामहल्ला राम–राम जपने लगा। पंचानन सारी बातें, शुरू से अंत तक बताने लगा। लोग विस्मय से उसकी बातें सुन रहे थे।

बीच में हरि कपूर की बहू फूलमती ने कहा, ''मतलब, ब्रजरानी मजे में है.....खाने–पीने–रहने की कोई तकलीफ नहीं है।''

पिहानीवाली का मुख आरक्त हो गया। अपने को संयत रखकर बोली, ''खाते–पीते–रहते तो जानवर भी हैं। बहू के दुःख को केवल वही भगवान ही जानता होगा। यहां कपूर की हवेली में बैठे हुए लोग क्या जानेंगे।''

रामहल्ला ने कहा, ''एक बार अपने संग मुझे ले चलो पंचानन।''

''बहू ने मना किया है।''

''कुछ भी हो, एक बार मैं जाऊंगा जरूर।''

पिहानीवाली रोती हुई कुलदेवी के कमरे में गई और छाती पीट–पीटकर कहने लगी, ''मां.....जगत–जननी, बचाओ.....रक्षा करो.....ब्रजरानी बहू का मन–चित्त बदलो, वह यहां लौटे.....मां.....।'' एकाएक पिहानीवाली बहू को लगा किसीने उसके मुंह पर हाथ रख दिया है। उसे ये शब्द सुनाई पड़े हैं–'ब्रजरानी कपूरवालों से मुक्त हो गई.....अब उसे मत छेड़ो। बहू, इसे ज्ञान की दृष्टि से देखो.....और सोचो.....।' बहू कमरे की देहरी के भीतर आकर न जाने कहां अदृश्य हो गई। पिहानीवाली पसीने में भीग गई। एक अजीब अनुभूति से वह सिहर उठी।

पंचानन वहां से विदा होने लगा। शिव कपूर की बहू गुलकंदो ने कहा, ''फिर आना, मगर चोरी करने नहीं।''

पंचानन हंसा, ''अब तो इस घर का नमक खा लिया।''

रामहल्ला बोला, ''अच्छा, मेरे कमरे में आना.....अब तुम मेरे भाई हो।'' तब तक गुलकंदो ने पूछा, ''हमें विश्वासनहीं था, तुम इतने पक्के हो अपनी बात के।''

''मुझे भी नहीं पता था.....लेकिन हां, जब कोई किसी पर इतना विश्वास कर लेता है, तो उसका विश्वास सौगुना बढ़ जाता है।''

रामहल्ला पास आकर पंचानन को सौ–सौ रुपये के पांच नोट पकड़ाने लगा।

पंचानन दूर छटककर बोला, ''नहीं–नहीं यह क्या ?''

''बड़ी बहू ने इनाम दिया है।''

''मुझे बहुत–सा इनाम पहले ही मिल चुका है।''

गुलकंदो ने पूछा, ''इनाम क्यों नहीं लेते ?''

वह बोला, ''हमारे गुरु महाराज का हुकुम है–पहली बार जिसके घर में चोरी करते हुए पकड़े जाओ, उसकी कोई एक सेवा, मनोकामना पूरी करके शांति पाओ। मैंने वही किया। और इस काम में मुझे इतना मिला कि सचमुच मैं धनी हो गया.....।''

पंचानन अपनी बात पूरी नहीं कर पाया। वहां से चल पड़ा। रामहल्ला के कमरे में आया। बोला, ''मेरा तो बड़ा नुकसान हुआ, मुझमें मोह पैदा हो गया। अब मेरा क्या होगा। मेरे गुरु महाराज ने कहा था, 'बेटा, चोरी करना ही तेरा जीवन है। इसके अलावा तू अगर किसी भी चक्कर में फंसा, तो मारा जाएगा। और सबसे ज्यादा बेटा, तू मोह–माया से बचना। यहां कोई किसीका नहीं है–सब चक्कर है।' रामहल्ला पंचानन की बात पर हंसता रहा। पंचानन कहता रहा, ''अरे भाई मुझे क्या पता, हरिद्वार और कनखल में मेरे साथ क्या–क्या हुआ। मैं तो लुट गया। बाप रे बाप, इस कदर के मोह में मैं फंसा। किसीको 'मां' कह दिया.....किसीको बहन.....और वह जो बहू की नौकरानी थी न,.....गंगा, उस ससुरी तो तो मैंने वह हार ही पहना दिया। हां जी, पांच सौ का हार रहा होगा। बताओ न, यह क्या हुआ मुझे। लो, जूता उठाकर धड़ाधड़ मारो मुझे।''

रामहल्ला गंभीर हो गया और अब पंचानन हंसने लगा। पंचानन बोला, ''हां, एक ज़रूरी बात तो भूला ही जा रहा था.....ब्रजरानी अपने बच्चे के नाम यह खत दिया है, और बोला है–'उसी मेरे बेटे के ही हाथ में देना और किसीको नहीं।' कहां है वह ? क्या नाम है ?''

''विष्णुपद.....शिमला में पढ़ता है।''

''फिर तो शिमला ही जाना होगा.....क्या पता है ?''

रामहल्ला को विस्मय में डालकर पंचानन शिमले का पता लेकर चला गया।

रात को फूलमती ने अपने पति हरि कपूर को पंचानन की सारी बात बता दी। सुबह तक वह बात सूरज कपूर और मालिक हीराचन्द तक पहुंच गई।

लोग सोचते हैं, पति सूरज ने जब से चारपाइयों, सिलबट्टों के अंबार को बेचकर उसने अपनी जो अद्‌भुत व्यापार–बुद्धि दिखाई, तब से आज तक कपूर–गद्दी पर उसका अलग स्थान बन गया। मालिक हीराचन्द कपूर लेन–देन देखते हैं–खास तौर पर अंग्रेज अफसरों को कर्ज देते हैं। उनमें मिलने–जुलने की सारी जिम्मेदारी देखते हैं। सूरज कपूर के जिम्मे है दिल्ली के आसपास के गांवों में लोगों को कर्ज देना और कर्ज अदा न होने पर उनकी जमीन की मिलकियत कपूरवालों के नाम लिखा देना। चाचा परिवार के बड़े लड़के शिव कपूर के जिम्मे है–चांदनी चौक की दुकानों, बल्ली मारान, दरीबें, लोथियन रोड और गंगा गली के सैकड़ों मकानों के हिसाब–किताब और किरायेदारी। छोटे भाई हरि कपूर की जिम्मेदारी है शहर में नई जमीन–जायदाद की खरीद–फरोख्त।

पर यह सब बाहरी जगह है सूरज कपूर के लिए। जब से उसे ब्रजरानी की चिट्‌ठी की बात मालूम हुई है, वह जैसे भीतर ही भीतर गूंगा होता चला गया है। कितनी पी थी उसने उस रात। खुरशीदजान के अंक में वह डरे हुए शिशु की तरह अपना सिर छिपाकर बोला था–मेरी जान, मुझे माफ करना, मैंने खुद अपने–आपको माफी नहीं दी। मुझे तब नहीं पता था, क्या होता है धर्म, क्या है अधर्म.....क्या है न्याय.....क्या है अन्याय। अब पता लग रहा है, पर अब क्या, अब तो मैं खाक हो रहा हूं। तूने मुझे खत नहीं लिखा, अच्छा किया। कोई और शमां लाके जलाएं क्यों ? कोई फूल चढ़ाए क्यों ?

मैं तो कसी का मजार हूं।

अजब है वह कपूर कोठी। बाहर से कहीं कुछ भी नहीं पता चलता। हां, पता चलेगा क्यों ?

बहुएं कोठी में हैं–जैसे पिहानीवाली, गुलकंदो, फूलमती। उन्हें ही कौन पूछता है–उस स्त्री के रूप में, जहां स्त्री पूज्य है, समान धर्मा, सुन्दर है, कोमल है, संवेदनशील है। इसलिए होता यह था कि पुरुषों की दुनिया अलग और स्त्रियों का संसार अलग।

दस बजे भोजन करके सारे पुरुष बाहर गद्दी पर जा बैठते थे या दिन–भर बाहर–बाहर रहते थे और बहुएं भीतर कोठी में या तो साती थीं, या जुआ–चौपड़ खेलती थीं। वहां न कहीं संगीत था, न परस्पर प्रेमभाव न कोई कला। अपनी कोठी से बाहर निकलकर पास–पड़ौस के घरों में भी जाना कपूर–बहुओं की शान के खिलाफ था। आस–पड़ौस की औरतें ुद इस कोठी में आएं–ऐसी धाक थी कपूर–कोठी की।

मगर एकदिन उसी अंतःपुर में बहुओं के बीच एक अजीब घटना घट गई। गुलकंदो से फूलमती ने कहा :

''ब्रजरानी भाग्यवान थीं, उसे कोई इतना बड़ा प्रेमी तो मिला। मुझे भी ऐसा मिले तो मैं खुद इस कोठी को छोड़कर भाग जाऊं।''

गुलकंदो का चेहरा तमतमा आया। वह बोली, ''ऐसा ?''

''हां, हां, ऐसा।''

''इस बात को तुम पिहानीवाली से कह सकती हो ?''

''कहने की क्या बात। यहां सुखी कौन है.....असली सुखी ?''

गुलकंदो ने पूछा, ''असली सुख क्या है ?''

फूलमती ने कहा, ''असली सुख है मन का.....प्राणों का, जहां स्त्री यह अनुभव कर सके कि उसकी भी कोई सत्ता है।''

जैसे गुलकंदो चीख पड़ी हो।

''अच्छा, असली सुख यहां क्यों नहीं मिल पा रहा है ?''

''बताऊं ? किसीसे प्यार नहीं किया.....मतलब, किसीने हमसे प्रेम नहीं किया ?''

गुलकंदो पसीने से तर होने लगी। हाथ मलते हुए पूछा, ''प्यार करने से क्या सुखी हुआ जा सकता है ?''

''हां, प्यार ही तो सुख है असली।''

''यह प्यार क्या पति से नहीं हो सकता ?''

''पति में अगर वह पुरुष जीवित हो, जो पत्नी में स्त्री देख सके। पर यहां का पति शुद्ध व्यापारी है.....सेठ है, बनिया है।''

न जाने कैसे यह बात पिहानीवाली तक पहुंच गई। और पूरे अंतःपुर में बवेला मच गया। पिहानीवाली ने फूलमती से पूछा, ''तुमने यह बात कही कैसे ?''

फूलमती चतुर निकली। वह नकार गई–बिलकुल उसने ऐसा कुछ नहीं कहा। फिर यह बात कहां से पैदा हुई ?

पिहानीवाली बेहद परेशान। उसके गुस्से का आर–पार नहीं। एक दिल फूलमती ने मजा लेने के लिए भीतर ही भीतर यह बात फैलाई कि यह बात स्वयं पिहानीवाली ने ही कही है। इसपर जो कांड हुआ, वह गजब था।

दोनों बहुओं को अपने कमरे में बिठाकर पिहानीवाली ने पूछा, ''यह सब इस घर में क्यों और कैसे हो रहा है ?''

दोनों बहुएं चुप। फिर पिहानीवाली ने दोनों पर कसम रख दी कि उन्हें सच–सच बताया जाए, नहीं तो वह अन्न–जल छोड़ देंगी।

और यही हुआ। दोनों बहुएं डर के मारे चुप हो गई। और पिहानीवाली ने अन्न–पानी छोड़ दिया। सारी कोठी में जैसे महामारी छा गई। नौकर–चाकर, रसोइये, नौकरानियां सब को जैसे काठ मार गया। बात पुरुषों तक पहुंच गई।

चंपो नौकराइन और गंगा मिसराइन को घर का वह सारा रहस्य मालूम था। चंपो थी बड़े मालिक की प्रिय और गंगो थी छोटे मालिक की। दोनों ने एक स्वांग रचा। रात की निचलाई में–जब पूरी कोठी में सन्नाटा छाया था तो दोनों ने शोर मचाया।

''पकड़ लो.....पकड़ लो.....वह खड़ी हैं.....वह भागीं.....वह भागीं।''

यह चिल्लाती हुई दोनों अपने–अपने मालिकों के कमरे में जा घुसीं और वही एक बात बताने लगीं :

''हां जी, दो औरतें आई थीं.....एक लाल साड़ी पहने, एक सफेद। आंगन में खड़ी बातें कर रही थीं–'असली सुख है प्रेम.....इस कोठी में वही प्यार नहीं है.....ब्रजरानी भाग्यवान थी, उसे ऐसा प्रेमी तो मिला।''

''कहां से आईं वे औरतें ? कहां गईं ?''

ये ही सारे लोग पूछने लगे।

वे दोनों अजब अभियनय करके बताने लगीं, ''लगता है, वे दोनों भवानी थीं, चुडैल नहीं थीं, क्योंकि उन दोनों के पैर सीधे थे.....पैरों में पायल और बिछुए थे.....मांगें भी भरी थीं। वे दोनों बात करती हुई इधर आंगन से आसमान में उड़ गईं.....हमने अपनी आंखों से देखा मालिक। हां.....ऐसा।''

दोनों का यह अभिनय प्रभावशाली रहा। घर की बहुएं मुक्त हो गईं। पिहानीवाली ने अन्न–जल ग्रहण किया। सारा दोष वही अदृश्य कल्पित भवानी अपने माथे लेकर चली गईं।

कुछ महीनों बाद एक दिन फूलमती और गुलकंदो पिहानीवाली के साथ आंगन के धूप में बैठी थीं। सब के मुंह में पान थे। फूलमती ने ही पूछा :

''बड़ी जी, आप सुखी हैं ?''

''क्यों, तुम दुखी हो ?''

''उस भवानी ने ऐसा क्यों कहा था कि इस कोठी में असली सुख नहीं है ?''

''असली सुख क्या होता है ?'' पिहानीवाली ने पूछा।

गुलकंदो बोली, ''भवानी ने कहा था असली सुख है प्रेम।''

पिहानीवाली ने कहा, ''इन बातों में इस घर की बहुओं को नहीं आना चाहिए। असली सुख है संतोष। मतलब, जो कुछ है, वह पति है। उसके अलावा और कुछ भी सोचना पाप है.....दुःख का मूल है।''

फूलमती ने पूछा, ''बड़ी जी, यह प्रेम क्या है ?''

''मुझे क्या पता ?''

''.....जी।'' दोनों बहुएं एकटक पिहानीवाली को देखने लगीं।

पिहानीवाली ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, ''क्या वह प्रेम है, जो उस पंडे ने मेरी ब्रजरानी बहू के साथ किया ?''

''फिर वह क्या है ?''

''मुझे क्या पता ?''

थोड़ी देर बाद वे तीनों बहुएं पिहानीवाली के कमरे में बैठकर चौपड़ खेलने लगीं। ब्रजरानी की खाली जगह पर एक साड़ी रख दी गई। लग रहा था, वही चारों बहुएं चौपड़ खेल रही हैं। चंपो बैठी हुई पान की गिलोरियां देती जाती थी।

खेलते–खेलते फूलमती ने फिर वही बात चला दी, ''पंडे के लिए तो वह प्रेम ही रहा होगा।''

पिहानीवाली चाल चलती हुई बोली, ''प्रेम क्या हुआ मानो पूड़ी–परांठा हो.....मिला कि खा लिया।''

''फिर प्रेम क्या है ?'' गुलकंदो ने चाल जीत्ते हुए पूछा।

''वह क्या नहीं है, मैं इतना ही जानती हूं, वह क्या है, यह नहीं जानती।''

पिहानीवाली ने यह कहकर एक ठंडी सांस ली और गंभीरता से बोली, ''मगर कपूर–घर की बहुओं को ये बातें नहीं सोचनी चाहिए। सोचना उनका काम है.....बल्कि स्वभाव है, जो अभाव में रहते हैं।''

फूलमती तपाक से बोली, ''जीजी, जिन्हें सोचने का ही अभाव हो, वे क्या हैं ?''

बड़ी बहू ने अब डांट दिया। और दोनों बहुएं सहमकर चुप हो गईं।

शनिवार की रात नीचे हाल कमरे में बहुत बड़ी पार्टी थी। दिल्ली के रेजिडेंट और चीफ कमिश्नर चार्ल्स मेटकाफ साहब और गवर्नर जनरल के व्यापारी एजेन्ट एलैक्जन्उर रोज साहब अपनी–अपनी मेमों के साथ आमंत्रित थे। शाम से ही पूरी हवेली के बाहर गुलाब जल के छिड़काव में भिश्ती लोग लगे थे। पुलिस के सैकड़ों जवान सड़कों और गलियों में तैनात थे। खुफिया पुलिस तरह–तरह के भेष में इधर–उधर घूम रही थी और दुकानों में ग्राहक बनी घुसी थी। कपूर कोठी के सबसे ऊपर शहनाई बज रही थी और नीचे फाटक से दाईं ओर रोशनचौकी वाले संगीत दे रहे थे। अंग्रेजी, मुसलमानी और हिन्दू तीनों तरह के भोजन तैयार किए जा रहे थे। शैम्पेन की बोतलें बर्फ में डाली हुई थीं। इम्पीरियल व्हिस्की की बोतलें नीचे सजी थीं। चारों भाई कपूर और दिल्ली के कई रईस मेहमानों की अगुवाई में खड़े इंतज़ार कर रहे थे। रईसों में रायबहादुर लाला हरिनारायण माथुर भी अपनी पत्नी भुवनमोहिनी के साथ आए थे।

ठीक आठ बजे अंग्रेज मेहमान आए। उससमय कायदे के अनुसार नीचे–ऊपर दोनों ओर के संगीतवादक 'लांग लिव द किंग' की धुन बजाने लगे। बंदूकों के फायर होने लगे। और थोड़ी ही देर में हाल की बैठक में मेहमानों के आसपास चांदनी चौक के रईस और कपूरवाले इस तरह घिरकर बैठ गए जैसे कोई नियामत बांटी जा रही हो।

शैम्पेन और व्हिस्की की बोतलें खुलने लगीं। कपूर–घर की केवल बड़ी बहू–वही पिहानीवाली उस पार्टी में शरीक है। माहौल गुलाबी होते ही इधर–उधर बातों का सिलसिला शुरू हुआ।

चार्ल्स मेटकाफ साहब हरिनारायण माथुर के साथ, शहर में छिपे क्रांतिकारियों और स्वराजियों के बारे में बातें करने लगे। उन्हें पकड़ने और खत्म करने के लिए तरकीबें निकाली जाने लगीं।

एलक्जन्उर रोज कपूर भाइयों से विशुद्ध तिजारत और 'कामर्स' की बातें कर रहा था। इंग्लैण्ड में बने कपड़े, सामान के मार्केट यहां और बढ़ाए जाएं। इसकी बात हो रही थी।

मेमें औरतों से यहां के पुरुषों की बाबत तरह–तरह की बातें जानने में लगी थीं।

'डिनर' के बाद नाच–गाने का जश्न शुरू हुआ। तभी हवेली के फाटक पर जाने कहां से एक बम फूटा और एक भयानक तहलका मच गया। फायरिंग होने लगी। जो सड़क पर दिखा उसे अंग्रेज अफसरों ने गोली मार दी। आसपास के घरों में घुसकर सुरक्षा पुलिस ने लोगों को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। सारी रात नीलकटरा के आसपास बल्लीमारान, गंदी गली, फतेहपुरी, चर्खेवालान, दरी शेर अफगन खां और चावड़ी बाजार में जो जुल्म ढाया गया उससे सारा चांदनी चौक कांप उठा।

सुबह चांदनी चौक के सारे रईस, अमीर–उमरा और लाला लोग चार्ल्स मेटकाफ कोठी पर हाथ बांधे आ खड़े हुए। उधर चांदनी चौक में चौबीस घंटे के लिए कर्फ्यू लग गया। जो दीखे उसे गोली मार दो का आर्डर लग गया।

दूसरे दिन जब कर्फ्यू टूटा तो फतेहपुरी के फाटक के सामने न जाने कहां से एक पगला आकर रंग–बिरंगे कपड़े, हाथों में इंसान की एक खोपड़ी लिए वहां नाच–नाचकर गाने लगा। जब वहां लड़के–बच्चों की भीड़ लग गई। लोग अपने–अपने दरवाजों और खिड़कियों पर आकर खड़े हुए–तब वह पगला नाच–नाचकर कहने लगा :

''ऐ बच्चा लोग, ज़रा ताली बजाओ.....चांदनी चौक में लाल प्रेत आया है.....उसे खून चाहिए.....उसे खून पिलाओ।''

लाठी टेकता हुआ एक फकीर वहां आ खड़ा हुआ और अल्लाह का नाम लेने लगा। वह पगला दौड़ा हुआ आया और फकीर का डंडा छीनकर उसे हवा में घूमाने लगा। डंडा अजीब ढंग से टेढ़ा–मेढ़ा हो गया। फिर वह उसी टेढ़े–मेढ़े डंडे को हवा में सांप की तरह घुमाता हुआ नाचने लगा। उसके सिर की लंबी टोपी हवा में लोटपोट होने लगी। उसका दरवेशी चोगा नाच की रफ्तार में उसके पैरों में फंसने लगा। और उस चौक में इकट्ठी जनता भय और कौतूहल से उस पगले की फटे बांस–सी आवाज सुनने लगी :

''हा हा हा हा.....आया है लाल प्रेत.....लाल पिचाश यहां। वह घुस गया है कपूर की हवेली में। वह ले भागा है उसकी सबसे खूबसूरत शरीफ बहू को। जानते हो उसका नाम ? ब्रजरानी..... ! वही लाल पिशाच इन सारी कोठियों में घुस जाता है। खून के प्यास है उसे। सन् सत्तावन की गदर में वह लाल पिशाच खड़ा देखता रहा–लालकिले में से

बहादुरशाह जफर की लाश अंग्रेज खींच रहे थे। कपूर कोठी के लाला प्रकाशचन्द अंग्रेजी सेना को जमुना के उस पार रसद पहुंचा रहे थे। यहां दिल्ली वाले अंग्रेजों से लड़ रहे थे। बलवाइयों के सिरों पर वही लाल पिशाच नाच रहा था..... हा हा हा। वही सीताराम जी गुड़वाला कुदसिया बाग में गिरफ्तार हुआ था। हडसन ने उसे गुड़वाले को पिस्तौल की गोलियों से भूना था.....और उस अधमरे को फव्वारे पर लाकर फांसी दी गई। हां, हां, वही लाल पिशाच। उसीने लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकवाया। कहां से आए इतना खून कि लाल पिशाच का पेट भरे। जब उसे बहुत भूख लगती है.....तभी वह बम फेंकवाता है। भारत माता की जय। बोलो भाई, भारत मां की जय।'' भीड़ में से किसीकी आवाज आई–''और फिरंगी का खून ?'' पगला चिल्लाया–''बहुत अच्छा.....लाल प्रेत खून में फर्क नहीं करता। उसे तो बस खून चाहिए..... खून.....लाल रक्त।''

''वह देखो।''

लोग चिल्ला पड़े। शहर कोतवाल कुछ पुलिस के साथ घोड़े पर चढ़ा आ रहा था। लोग गलियों में भागने लगे। पगला चिल्लाने लगा, ''लाल पिशाच को खून पिलाओ.....मर्दाना–जनाना, लड़की–लड़का, मर्द–औरत.....लाल पिशाच को खून पिलाओ।''

''साला हरामी।'' कोतवाल ने पगले की पीठ पर हंटर से एक जबरदस्त प्रहार किया। पगला जमीन पर बेहोश गिर पड़ा। जब उसे होश आया तो वह धीरे–धीरे चलकर कपूर हवेली के पिछवाड़े पीपल के पेड़ के पास आया और उस वृक्ष को सूनी निगाहों से तकने लगा। लगा कि वह किसी अदृश्य सत्ता के साथ बातें कर रहा है।

उन्हीं दिनों इम्तहान कके बाद शिमले से बड़े भाई कुंवर के साथ विष्णुपद घर लौटा।

एक दिन वह चुपचाप पंचानन को संग लिए अपनी मां के कमरे में आया और भीतर से कमरा बंद करके जैसे एक बुजुर्ग आदमी की तरह उससे बातें करना लगा :

''मुझ यह पता नहीं था, ऐसा भी हो सकता है.....।''

पंचानन अजीब संकट में पड़ा था। उससे कुछ भी उत्तर नहीं सूझता था। विष्णुपद उससे सवाल पर सवाल पूछता ही जा रहा था।

''ऐसा क्यों हुआ ?''

''पता नहीं सरकार।''

''मेरी मां ने और क्या–क्या कहा ?''

''मुझसे और कोई बात नहीं की।''

''ऐसा क्यों ?''

''पता नहीं।''

पंचानन को उस कमरे में बैठा रह सकना असंभव हो रहा था। वह कमरा खोलकर जाने लगा, तो पीछे से विष्णुपद ने उसे पकड़ लिया। बोला, ''मैं भी चोर बनना चाहता हूं.....।''

पंचानन अजब भय और आश्चर्य से उस बालक को देखने लगा। फिर विवश होकर बोला, ''चाहने से क्या होता है ?''

''चाहने से सब कुछ होता है।''

पंचानन के मुंह से निकल गया, ''ब्रजरानी मां ने क्या चाहा था ?''

''हां, क्या चाहा था ?''

पंचानन बोला, ''मुझे क्या पता ?''

''फिर किसे पता ?''

''पता लगाओ न !''

''लगाऊंगा।''

''पर मां का वचन याद रखना।''

''मैं कुछ नहीं याद रखूंगा।'' विष्णुपद ने इस तरह चीखकर कहा कि पंचानन डर के मारे भागा वहां से।

विष्णुपद उसी तरह चीख–चीखकर पूरी हवेली भर में कहने लगा, ''मैं जाऊंगा मां के पास.....मैं कुछ नहीं जानता.....मैं कुछ नहीं याद रखूंगा.....यह क्या है.....वह कौन है ? ऐसा क्यों हुआ ? कौन है तू ? मुझे पता दो।''

लगता था विष्णु पागल हो गया था। डाक्टर, वैद्य, हकीम सब दौड़े आए हवेली में। मगर किसीका उपचार काम न आया। पिहानीवाली ताई भी फेल। नौकर–चाकर, नौकरानियां, चाचियां किसीका कोई असर नहीं। शाम होते–होते वह बेहोश हो गया। बीच–बीच में जब होश आ जाता तो वह सबको एक–एक करके देखता, फिर चीख पड़ता और बेहोश हो जाता। बड़े–बड़े डाक्टर लगे थे। पिहानीवाली, गुलकंदो और फूलमती तीनों बहुएं रात–भर खड़ी की खड़ीरह गईं।

सुबह तक जब विष्णु की हालत में कोई सुधार न हुआ तब रामहल्ला ने उसे भरे हुए कमरे में हाथ जोड़कर कहा, ''सरकार, मेरी एक अरज है, अगर आप सब लोग इस कमरे से बाहर निकल जाएं, तो बेठवा को मैं स्वस्थ कर लूंगा, और ऐसा न कर सका तो राम कसम, मैं इस हवेली को छोड़कर चला जाऊंगा।''

एक–एक कर सब उस कमरे से चले गए। रह गया अकेला रामहल्ला विष्णु के पास। वह राम–राम का जप करने लगा और विष्णु के माथे पर अपना दायां हाथ रखकर बोला, ''हे भगवान, हे अन्तर्यामी, यदि मुझमें जो कुछ भी ईमानदारी, विश्वास, भक्ति हो वह उस पुत्र पर काम आए।''

विष्णु को होश आया। उसे अंक में लिए रामहल्ला बैठा रहा और मुसमी का रस पिलाने लगा। और उसे एक कथा सुनाने लगा–सीता वनवास की। पहला वनवास–कैकेयी रानी का दिया हुआ, रावण जब जानकी का जंगल में हरण करता है। दूसरी कथा जब राम जानकी को वनवास देते हैं और लवकुश का जन्म होता है उस जंगल में ऋषि के उस आश्रम में।

विष्णुपद पूछता है, ''मेरी मां वही सीता हैं ?''

''हां, बेटा, मां वही सीता मां है।''

''मैं कौन हूं ?''

''तू वही लवकुश है।''

''और मेरा पिता क्या है ?''

रामहल्ला चुप रह गया।

फिर रामहल्ला उस हवेली का रहस्यमय इतिहास बताने लगा उस बालक को। सन् सत्तावन का इतिहास। कैसे उस हवेली के परबाबा, बाबा ने अंगरेजों की मदद की। कैसे अंगरेजों ने दिल्ली पर कब्जा किया। कैसे दिल्ली में अंगरेजों ने कत्लेआम किए। विद्रोहियों का सफाया किया। वह लाल किया क्या था–क्यों था..... ? बहादुरशाह जफर, बल्लभगढ़ के राजा, झझर के नवाब, गुड़वाले किस तरह लड़े थे उन अंगरेजों के खिलाफ और किस तरह अंगरेजों ने दिल्ली को जीता और किस तरह देश–प्रेमियों को बागी करार देकर उन्हें फांसियां दीं। दिल्ली ने तैमूरलंग को भी देखा था और नादिरशाह को भी, मगर वे लुटेरे थे। आए और दिल्ली को लूटकर चले गए। मगर ये अंग्रेज तो यहां शासन करने आए थे और वह भी सात हजार मील दूर बैठकर चंद गोरों और चंद हिन्दुस्तानी गद्दारों के जरिए। तो भइया, उन अंग्रजों ने हमारी इस दिल्लीको इस तरह नोचा–खसोटा और बर्बाद किया कि सब मिट्टी में मिल गया। तमाम अच्छे–अच्छे हिन्दू–मुसलमानों को शहर बदर कर दिया गया और सिर्फ वही बचे रह गए जो अंगरेजों की वफादारी का दम भरते थे। शाही खानदान वालों, उमरा और रईसों के जितने महल और हवेलियां थीं, वे जब्त कर ली गईं और कौड़ियों के मोल नीलाम कर दी गईं। वही हवेलियां आज बड़ी–बड़ी गंदी बस्तियों के कटरे बने हुए हैं।

सहसा विष्णुपद ने पूछा, ''मेरे बाबा कौन थे ?''

''रायबहादुर लाला प्रकाशचंद कपूर.....उन्होंने ही यह कपूर हवेली बनाई। उन्होंने ही सन् सत्तावन में दिल्ली वालों से छिपकर अंग्रेजों की मदद की। उन्होंने ही इतनी बड़ी जायदाद खरीदी कौड़ियों के मोल, अंग्रेजों की नीलामी में.....।''

विष्णुपद स्वस्थ होकर रामहल्ला के साथ छाया की तरह संग रहने लगा। वह एक अजनबी बालक की तरह न जाने क्या सवालात सबसे पूछता रहता। बातें करता तो उसी रामहल्ला से। कोठी की गद्दी को दूर से खड़ा निहारता। वहां उसके पिता–ताऊ जो व्यापार करते होते, उसे देखता। बड़ी–बड़ी बहियों और किताबों को मौका पाकर पढ़ता।

फिर वह शिमला पढ़ने नहीं गया।

मां की वह चिट्ठी अपने पास रखता–अक्सर उसे पढ़ता और ताई तथा रामहल्ला से कहता, वह मां की बात पूरी करेगा।

कोठी में रहकर वह पढ़ने लगा। सुबह एक अध्यापक उसे अंग्रेजी पढ़ाने आता। शाम को दूसरे अध्यापक उसे हिन्दी–उर्दू पढ़ाते। बीच में जो वक्त मिलता, वह अपने पिता, मां के बारे में सोचता। ऐसा क्यों हुआ, वह कारण जानना चाहता। पिताजी उससे आंख क्यों चुराते हैं, वह इतने चुप उदास क्यों रहते हैं–वह शाम को कहां जाते हैं, क्या करते हैं–इन सब के मर्म जानना चाहता है।

वह अक्सर सोचता पिताजी की जगह अगर वह होता, तो उस पंडे से लड़ाई कर उसे मार डालता और मां को वापस ले आता। पर पिताजी ऐसा क्यों नहीं करते, उन्हें कौन रोकता है ?

6

इस तरह कुछ वर्ष और बीत गए। तभी ठीक होली के दिन एक अजीब घटना घटी। विष्णुपद तब चौदह साल पूरा कर चुका था। वह पड़ौस के एक घर में गया। वहां उसने देखा, घर के सभी लोग होली खेल रहे हैं, मगर दो जवान

बहुएं एक कमरे के भीतर से कुंडी मारे बैठी रो रही हैं। वह दौड़ा हुआ रामहल्ला के पास आया और चोटखाए शिशु की तरह बोला, ''बाबा.....बाबा, जानते हो मैंने क्या देखा ? महेश टंडन के घर की दो बहुएं.....बिल्कुल जवान.....खूबसूरत.. .....मगर उनके सिर के केश सफाचट.....सफेद वस्त्रों में.....कमरे में बंद रोती हुई..... ।''

रामहल्ला ने बताया, ''वे बाल–विधवा हैं बेटे। अब यही उनका जीवन है। वे सिर पर केश नहीं रख सकतीं..... रंगीन कपड़े नहीं पहन सकतीं.....पलंग पर सो नहीं सकतीं.....कोई खटाई, मसाला, मिठाई नहीं खा सकतीं। किसीको छू नहीं सकतीं। रंग का कोई छींटा तक उनपर नहीं पड़ सकता। उन्हें हर त्यौहार, हर पर्व को इसी तरह रोकर मनाना होगा।''

''मगर ऐसा क्यों ?''

रामहल्ला हथेलियां मल–मलकर बताने लगा, ''लोगों का विश्वास हे, यह उनके पूर्व जन्म का पाप है, अधर्म है, जो इस तरह उसके लिए प्रायश्चित्त कर रही हैं।''

''पूर्व जन्म क्या होता है ?''

''पता नहीं बेटा।''

''पाप और अधर्म क्या है ?''

''तुम्हीं बताओ.....मैं क्या जानू ?''

''बाल–विधवा क्या ?''

रामहल्ला ने कहा, ''बेटवा, तुम तो इतनी किताबें पढ़ते हो, और पूछते मुझसे हो। तुम्हें तो उलटे अब मुझे बताना चाहिए कि यह सब चक्कर क्या है ?''

यह कहते हुए रामहल्ला हो–हो करके हंस पड़ा।

''तुम इस तरह हंसते क्यों हो ?''

रामहल्ला ने कहा, ''हंसना तुम्हें भी चाहिए बेटा, वरना बिना हंसे तुम इतने सारे सवालों के साथ क्या करोगे ?''

तभी सामने रामहल्ला का लड़का मनसुख दौड़ा आया। रामहल्ला ने मनसुख का हाथ विष्णुपद के हाथों में देते हुए कहा, ''यह तुम्हारा सेवक है.....इससे पूछो.....यह हर वक्त खिस–खिस हंसता है। स्कूल में पढ़ने जाता है–अब दसवीं जमात में है और यह मुझसे पूछता है–पढ़ने से क्या होता है.....इससे करो बात।''

रामहल्ला कोठी में काम–धाम देखने गायब हो गया। तब दोनों मित्रवत उसी महेश टंडन के घर की उन दो बहुओं की बातें करने लगे। मनसुख सचमुच बात–बात में खिस–खिस करके हंसता है। विष्णुपद को उसकी हंसी बहुत अच्छी लगती है।

मनसुख ने बताया–नीलकटरे में ऐसे तो सैकड़ों घर हैं जहां ऐसी बाल–विधवाएं पड़ी हैं।

''सच ?''

''हां।''

मनसुख सहसा बोला, ''पर यह क्या है, शंकर ग्वाला बड़ी मजेदार बातें बताता है।''

''क्या ?''

''हां।''

मनसुख विष्णुपद के संग लिए हुए एकांत में गया। रहस्य–भरे शब्दों में बताने लगा, ''शंकर ग्वाला बताता है–गद्दियों पर जो मसनद होती हैं न, उसी तरह की मसनद बनाकर कुछ बाल–विधवाएं अपने कमरों में रखती हैं। रात को इन मसनदों पर पुरुष की तसवीर खींच देती हैं.....आंख.....मुख.....हाथ.....पैर.....फिर इन्हें पुरुष के कपड़े पहनाती हैं और उन्हें अपनी बांहों में भरकर सो जाती हैं.....फिस.....फिस.....नहीं, नहीं, उनसे प्यार करती हैं। फिस–फिस..... फिअ.....यही नहीं, कुछ तो खुद छिपकर श्रृंगार करके उनसे प्रेम करती हैं.....और वह शंकर बता रहा था.....जिन गरीब बाल–विधवाओं को ऐसा करने का मौका नहीं मिलता.....वे लकड़ी के आटे के पुतले बनाकर अपने संग सुलाती हैं।''

एक दिन शंकर ग्वाला जब कोठी के गौशाले में दूध की बाल्टियां भरने में लगा था, तभी वहां विष्णुपद आ पहुंचा। गौशाले में उसी तरह अकेले विष्णुपद को देखकर शंकर घबड़ा गया।

''सरकार यहां ?''

''हां, सुना है तुझे यहां की बहुत सारी बातें मालूम हैं।''

''क्या सरकार ?''

''यह सरकार–सरकार क्या.....सरकार तो अंग्रेज हैं.....मेरा नाम..... ।''

शंकर ग्वाले की घबड़ाहट और बढ़ गई। पता नहीं क्या पूछने आया है विष्णुपद। शंकर इधर–उधर की बातें करने लगा। कुछ किस्से.....कुछ मजाक। सहसा विष्णुपद ने पूछा, ''बताओ, रात को मेरे पिता कहां जाते हैं ?''

''मुझे क्या पता साहेब, वह इत्ते बड़े आदमी, मैं उनका छोटा–सा चाकर.....महीनों गुजर जाते हैं.....मैं तो उन्हें देख भी नहीं पाता। गउओं को दुहकर कोठी में दूध पहुंचाना–इतना ही तो काम है मेरा..... ।''

''नहीं, तुझे बहुत सारी बातें मालूम हैं।''

''किसने बताया ?''

''मनसुख ने।''

बहुत देर चुप रहने के बाद शंकर ने कहा, ''मेरा नाम मगर आप किसीको मत बताइयो। कसम खाइए..... ।''

''कसम खाता हूं।''

शंकर बोला, ''रात को आपके पिता कहां–कहां जाते हें, सब तो वही भगवान जाने, हां, एक जगह जानता हूं–मेरा ख्याल है, बहुत लोग जानते हैं..... ।''

शंकर रुक–रुककर बोल रहा था। विष्णुपद कोन जाने कैसी उतावली थी, ''बताता क्यों नहीं..... ? छिपाना नहीं कुछ।''

''अरे आप खुद अपनी आंखों से देख लेना,'' शंकर बताने लगा, ''गली शहरबानू और निक्का कटरा है न..... इन दो के बीच जितनी बस्ती है.....वही है मशहूर तवायफों का मुहल्ला। मुहल्ले तो और न जाने कितने हैं.....चाहे तो मैं संग ले चलूं.....नहीं नहीं नहीं,.....वही मनसुख ही ठीक रहेगा। मैं नहीं बताऊंगा। और भइयो, मेरा नाम भी न लेना..... गली शहरबानू के बिल्कुल पीछे है वह आलीशान कोठी.....आशियाना है नाम.....और उसका नाम है गुलनार.....वहीं जाते हैं पिताजी..... ।''

विष्णु एकाएक वहां से भागा। मनसुख को बताया। और लगा, जैसे मनसुखा को पहले ही से मालूम है।

''तूने पहले मुझे क्यों नहीं बताया ?''

''मुझे पक्का विश्वास नहीं था, मुझे चंपो नौकराइन ने बताया था।''

विष्णुपद मनसुख के उस जवाब से सन्न रह गया। सोचने लगा, कितनी सारी बातें कितनी–कितने लोगों को पता हैं.....लोग ऐसा क्यों करते हैं। दूसरें की बातें झूठी भी हो सकती हैं।

और एक दिन ऐसा ही हुआ। पिता सूरज कपूर की बग्घी ठीक रात के आठ बजे चांदनी चौक की सड़क पर उतरकर निक्का कटरा की तरफ मुड़ गई। उधर से गली शहरबानू। विष्णुपद बहुत पीछे–पीछे चलता हुआ सब देख रहा था। सचमुच 'आशियाना' ही नाम था। पिताजी बग्घी से नीचे उतरकर उसी आशियाने में सचमुच चले गए।

विष्णुपद दूर एक दुकान के किनारे चुपचाप खड़ा रहा। उसके कानों में घुंघरू, नाच के बोलों, और साजों की आवाजें चमक रही थीं। हंसी–कहकहों के बीच सहसा एक अलाप और सम पर लौटता हुआ कोई संगीत लहरा जाता। वह एकटक उसी आशियाने की तरफ देख रहा था। करीब साढ़े दस बजे पिताजी की बग्घी सामने आई। और उन्हें बिठाकर चली गई।

विष्णुपद निःसंकोच उसी आशियाने में घुसा। सीढ़ियां पार कर जैसे ही वह कोठे की मंजिल पर पहुंचा, किसी आदमी ने उसे रोका, ''अब भीतर आना मना है।''

''क्यों ?''

''बकवास मत करो।''

विष्णुपद ने बिल्कुल निर्भय होकर कहा, ''चुप रहो।''

अचानक भीतर से आवाज आई, ''आने दो..... ।''

विष्णु उस कमरे में घुसते ही बोला, ''गुलनार आप ही हैं..... ।''

''जी, मैं ही हूं.....तशरीफ रखिए।''

''शुक्रिया।''

''माफ कीजिए, मैं अभी हाजिर हुई।''

गुलनार चली गई। विष्णुपद देखने लगा–कितने करीने से आराइशी चीजों और सामानों से वह कमरा सजा है। छत से बिल्लौरी झाड़फानूस और दीवारों पर कदेआदम विलायती आईने टंगे हैं। फर्श पर कीमती कालीन–उसपर चांदनी। चौकी पर नोटों, रुपयों और गिन्नियों को देखा जा सकता है। चांदनी पर इधर–उधर फूलों के हार बिखरे पड़े हैं। कहीं इत्र की शीशी पड़ी है–कहीं पान से खाली चांदी के डिब्बे पड़े हैं। तभी एक मोटी–सी औरत आई। सामने बैठकर पान देती हुई बोली, ''हुस्न में, नाच–गाने में नाजो–अंदाज, शेरो–शायरी में मेरी गुलनार बेटी का कोई सानी नहीं। इसके हुस्न के बारे में आपने हुजूर ज़रूर सुना होगा–

जगाए फितने वो गुलनार ने कि आठों पहर,
हराम हो गई नींद अहले दिल्ली पर।''

तभी एक मासूम–सी खूबसूरत लड़की हाथ में सोने की फरशी लिए कमरे में दाखिल हुई और एक ही क्षण बाद एक हाथ में खंस की पंखी लिए बिल्कुल नये पोशाक में गुलनार दाखिल हुई। पीछे–पीछे एक दूसरी लड़की चांदी की सुराही में पानी और मोती–जड़ा पायदान लिए आई। मोटी औरत न जाने क्यों डर से भाग गई।

गुलनार ने मुस्करो हुए पूछा, ''कहए.....।''

विष्णुपद चुप।

''पहली बार घर से बाहर निकले हैं।''

''जी।''

''अभी आपकी उमर कम है।''

''जी।''

''कैसे आना हुआ इस वक्ता ?''

''आपसे ही मिलने।''

''आप किस घर के हैं ?''

''मैं, आपके आशिक सूरज कपूर का लड़का हूं।''

सारा कमरा जैसे झनझना उठा। छः आंखें उसे एकटक निहाने लगीं। गुलनार ने पानी पीकर लंबी–सी सांस ली। आंखों से इशारा किया। दोनों लड़कियां वहां से चली गईं।

''हुक्म दीजिए, क्या खातिर करूं ? सच, बड़ी खुशी हुई आपसे मिल कर।''

''मेरे पिता क्या सचमुच आपके आशिक हैं ?''

''इश्क क्या है, क्या आप समझते हैं ?''

''आप तो समझती हैं।''

गुलनार को हंसी आ गई।

वह समझाने लगी–हुजूर, आपकी उमर अभी चौदह साल से ज्यादा नहीं है–इस तरह इन गलियों में अकेले नहीं आते। मुझे आपकी परेशानी का पता है। आपके वादिल साहब ने मुझे सब बताया है। खुरशीदजान को वह जिस दिन छोड़कर मेरे पास आए थे, उस रात उन्होंने आप ही के बारे में बातें की थीं।''

''क्या कहा था ?''

''मेरे बेटे को उसकी मां चाहिए, मैं उसे कहां से लाऊं ?''

''वह झूठ बोलते हैं।''

यह कहकर विष्णुपद उठ पड़ा था। गुलनार ने कहा–''रुकिए, मैं आपको घर छोड़ आने के लिए इंतज़ाम करती हूं। आप यहां से अकेले मत जाइए।''

जैसे ही गुलनार दूसरे कमरे में गई, विष्णुपद वहां से तीर की तरह निकल गया।

सड़क पर चलता हुआ जब वह फतेहपुरी की ओर मुड़ा, तभी उसे दो गुंडे मिले। थोड़ी–सी ही बातचीत हुई कि दोनों उसपर टूट पड़े। एक ने उसे पकड़ लिया–हाथ और मुंह दोनों से, और दूसरा उसे लूटने लगा। पास में जब उन्हें कुछ भी न मिला तो दोनों गालियां देने लगे, ''साले के पास दो फूटी कौड़ी भी नहीं, चला था रंडीखाने में.....।''

बेहद अपमानित विष्णुपद से रात के उस सन्नाटे में अपने घर न लौटा गया। वह चांदनी चौक की ट्रामवे लाइन पर घूमने लगा–लाहौरी दरवाजे से खारी बावली, एस्पलेन रोड, जामा मस्जिद, चावड़ी बाजार, हौजकाजी, लाल कुआं, कटरा वड़ियां से फतेहपुरी। फिर लाहौरी दरवाजे से सदर बाजार और हिन्दूराव के बाड़े तक.....और फिर सब्जी मंडी घंटाघर तक वह रात–भर घूमता रहा। रात की इस आवारा यात्रा में उसने जो गरीबी, हैवानियत और एक दूसरी ही दुनिया देखी उससे वह कांप गया।

सुबह होते–होते वह चांदनी चौक से दूर चला आया। कश्मीरी दरवाजे के बाहर कुदसिया बाग के सामने अलीपुर रोड पर जो छोटा–सा बाग था–निकलसन पार्क–वहां एक पत्थर पर जा बैठा। सामने निकलसन का बुत खड़ा था। उसे याद आने लगा–उसने पढ़ रखा था। इसी निकलसन ने चौदह सितम्बर, अठारह सौ सत्तावन के दिन कश्मीरी दरवाजे की ओर से दिल्ली पर हमला किया था। काबुली दरवाजे पर हमला करते समय उसके गोली लगी थी.....।

तभी सुबह के उस झुटपुटे में उसे सुनाई पड़ा–लोगों का एक झुंड प्रभातफेरी करता हुआ उधर ही आ रहा है :

ऐ जाग मुसाफिर भोर भई

अब रैन कहां जो सोवत है !

भारत माता की !

जै.....जै जै।

विष्णुपद दौड़कर उस झुंड में शामिल हो गया। उसे एक अजीब नई चेतना.....नव उल्लास मिला। वह भी उन्हीं कंठों में अपना कंठ मिलाकर जयजयकार करने लगा और उसे लगने लगा वह धन्य हो गया।

सुबह आठ बजे अपने घर लौटा। हवेली भर में जो खलबली मची थी, वह और भी तेज हो गई।

सब लोग पूछने लगे–वह कहां था रात–भर ?

विष्णुपद ने सब सच–सच बता दिया–आदि से अंत तक।

बात घर के भीतर से बाहर कोठी की गद्दी तक पहुंची–पिता सूरज कपूर और मालिक हीराचन्द जी तक। दोनों चिंत्ति हुए। मालिक ने चेतावनी दी :

''यह खतरनाक है कपूरवालों के लिए।''

उस दिन कोठी के सभी नौकर–चाकरों को आदेश दिया गया कि विष्णुपद को हवेली से बाहर न जाने दिया जाए। उसे जिस–जिस चीज़ की ज़रूरत हो वह सब कुछ इसी हवेली में ही ले आई जाएं।

उन्हीं दिनों चांदनी चौक आर्यसमाज का एक बहुत बड़ा जलसा हुआ। उसीमें आए थे स्वामी श्रद्धानन्द। उन्हींके मुख से पहली बार विष्णुपद ने सुना–''जो गुलाम है, वह मनुष्य नहीं।.....वह परतंत्र जननी जन्मभूमि भारत माता की पूजा क्या है ? इसे स्वतंत्र करना.....और इसे स्वतंत्र कौन करेगा ? यहां के ही स्त्री–पुरुष। यह देश ही तो हमारा देवता है–सर्वत्र उसके हाथ हैं, पैर हैं, कान हैं, वाणी है। पर गुलाम देश सो रहा है–जगाओ इसे आर्य हिन्दू.....श्रेष्ठ मनुष्यो !''

स्वामी जी के इन शब्दों से विष्णुपद को एक निजी अर्थ मिला। उसे लगा उसकी मां ही वंदिनी भारत माता है।

कुछ ही दिनों बाद आर्यसमाजियों ने मिलकर नीलकटरे की एक गली में 'खत्री कन्या पाठशाला' की स्थापना की। आर्यसमाजी महिलाओं ने घर–घर जाकर उन युवती बाल–विधवाओं के नाम लिखे जो सिर मुड़ाकर घरों में निर्जीव बैठी थीं।

कन्या पाठशाला में पढ़ाने के लिए जब कहीं कोई अध्यापिका न मिली तो एक वृद्ध पुरुष अध्यापक जी आए थे।

खत्रियों का कहना था–''हम अपनी विधवाओं को पढ़ाकर क्या करेंगे ?'' महिला आर्यसमाजियों की नेता थीं–वेद कुमारी–स्वामी श्रद्धानन्द जी की बेटी। उन्होंने उत्तर दिया, ''विद्या ही विवेक देता है।''

''विवेक से क्या होगा ?''

''विवेक ही मनुय का लक्षण है।''

''पर हम अपनी बहू–बेटियों को किसी पुरुष अध्यापक से नहीं पढ़ने देंगे।''

वेद कुमारी की लड़की थीं–सत्यवती जी–उमर यही चौदह साल–विष्णुपद की हमउम्र। यही पहली अध्यापिका बनीं उस खत्री कन्या पाठशाला की। उन दिनों विधवाएं, सिर सफाचट्ट तो रखती ही थीं, पर अन्य लड़कियों और मध्यवर्गीय बहुएं भी अपने सिर के बालों को सदा गूंथे रखती थीं और इस तरह उसमें जूंएं पड़ जाती थीं। सत्यवती ने जिस दिन कन्या पाठशाला में यह कहा कि विधवाएं अब सिर पर बाल रखें, उसे न कटाएं और सब अपने बाल खुले रखें..... .....उसे साबुन से रोज धोकर तेल–कंघी करें, उस दिन पूरे खत्री टोले में तहलका मच गया।

खत्री समाज का एक प्रतिनिधिमंडल कपूर हवेली की गद्दी पर आया था। मालिक ने सारी बात सुनकर उत्तर दिया, ''तो इसमें बुरा क्या है ? ऐसा तो होना ही चाहिए। मैं इंग्लैंड आता–जाता हूं–वहां की स्त्री–समाज पुरुष–समाज से किसी तरह से भी कम नहीं।.....''

मालिक ताऊ जी इस बात से विष्णुपद प्रसन्न हुआ। उसने पहली बार ताऊ जी की गद्दी पर बैठकर उनसे कहा, ''ताऊ जी, सो यू आर ए जेन्टिलमैंन.....।''

''ओह, तू अंग्रेजी बोलती है ?''

''जी हां, मैं रोज आठ घंटे पढ़ता हूं।''

''क्या पढ़ते हो ?''

''बस्स.....पढ़ता हूं।''

गद्दी पर ताऊ और भतीजे की बात बढ़ती चली गई और मां ब्रजरानी काप्रसंग आते ही गद्दी का सारा वातावरण तनाव से भर गया। विष्णुपद कभी रो पड़ता, कभी आवेश में भर जाता कभी धर्म–इतिहास के आधार पर मालिक की बोलती बंद कर देता।

तभी कपूर हवेली में वह रहस्यमय बैठक हुई–रात के सन्नाटे में उस बैठक में थे–कपूरवालों के सबसे बड़े पुरोहित, माधोदास बगीची के सबसे बड़े कर्मकांडी, निगम बोध श्मशान घाट के अवधूत और कपूर लोग–और कोई नहीं। यहां तक कि पिहानीवाली को भी नहीं पता। उस बैठक में यह फैसला हुआ कि ब्रजरानी की अन्तिम क्रिया कर दी जाए, तभी इस घर की शांति होगी और ब्रजरानी के पुत्र विष्णुपद की अपनी मां से मुक्ति होगी। यह फैसला हो गया।

जो मर गई हमारे लिए, उसकी अन्तिम क्रिया होनी ही चाहिए। यह निर्णय कपूरवालों ने ले लिया।

पर यह निर्णय जैसे ही मालिक ने पिहानीवाली को सुनाया, वह आगबबूला हो गई '

''बहू के जीते जी उसे कोई नहीं मार सकता।''

''पर वह हमारे लिए तो मर गई।''

''पर वह मेरे लिए ज़िंदा है।''

''हमने फैसला किया है.....बहुत कुछ सोच–समझकर कि जो मर गई उसका अन्तिम क्रिया–संस्कार होना ही चाहिए.....इस घर की शांति के लिए.....।''

''कैसी शांति ?''

पिहानीवाली के इसी प्रश्न बिंदु पर जैसे सारी बात टूट गई। बहुओं के खिलाफ इस घर में ब्रजरानी का अन्तिम संस्कार होगा। दान–पुण्य बंटेंगे। बहू की आत्मा को शांति दी जाएगी।

हवेली के सबसे निचली तह के उस कमरे में वह अन्तिम संस्कार होगा। चुपचाप तैयारियां होने लगीं। विष्णुपद तक को न खबर हुई।

रामहल्ला से कहकर पिहानीवाली ने पंचानन को बुलवा भेजा। वही युक्ति लगाई गई–जलते दीपक के सामने जूता पटककर दीया बुझाने की–पर पंचानन इस बार नहीं लौटा। लगा कि वह कहीं बहुत दूर निकल गया है चोरी के सिलसिले में। तब पिहानीवाली ने रामहल्ला से कहा :

''तुम्हीं जाओ कनखल और बहू को सारी खबर दो।''

रामहल्ला जिस दिन उस कनखल की हवेली के सामने गया, उस दिन न जाने क्यों हवेली के सारे फाटक बन्द थे।

एक से पता चला, मालिक साहब मालकिन के साथ कहीं दूर गए हैं–दो महीने हुए। एक दिन रुकने के बाद रामहल्ला को असली खबर मिली उसी गंगा नौकराइन से।

उसने बताया कि एक दिन ऐसा हुआ कि, हाय राम, कैसे बताऊं। मालिक साहब मालकिन के संग नखलऊ जा रहे थे। रास्तें में एक गांव पड़ा। गांव में कोई स्त्री पति की चिता में बैठकर सती हो रही थी। मालकिन ने जब देखा और समझा तो अपनी सवारी से कूद पड़ीं और दौड़कर उस स्त्री को चिता से नीचे खींच ले आई खर खर खर खर। फिर तो भइया गांव–भर में खलबली मच गई। मालकिन ने चिता में अपने हाथ से आग लगा दी। चिता जल गई और गांव वालों ने घेर लिया मालकिन और उस विधवा स्त्री को। हां, राम कसम, उस विधवा ने साफ–साफ कह दिया कि मैं सती नहीं होना चाह रही थी, यही गांव वाले.....। अब तो सारा मामला शांत हो गया है पर मालकिन अब तक उसी विधवा के संग उसी गांव में हैं। मालिक अकेले अपने जंगल के काम–धंधे पर हैं।

रामहल्ला उस गांव का पता–ठिकाना लेकर जिस दिन उस गांव में पहुंचा और ब्रजरानी को देखा, वह आश्चर्यचकित रह गया।

क्या यह बड़ी ब्रजरानी बहू है ? इन मामूली वस्त्रों में–इन हालातों में। बहू को अपना परिचय दिया। सोचता था, वह नाराज होंगी उसे देखकर। पर नहीं। बहू ने कहा, ''कैसे इतनी दूर आए ?'' रामहल्ला ने हाथ जोड़कर सब कुछ निवेदन किया।

बहू हंस पड़ी, ''हां, ठीक तो है। मैं उनके लिए मर गई ही हूं। उन्हें अन्तिम क्रिया करनी ही चाहिए।''

फिर रामहल्ला ने विष्णुपद के बारे में बताया और बहू को समझाने लगा कि उसे दिल्ली में उस क्षण प्रकट होना ही चाहिए, जब वह अन्तिम झूठा कर्मकांड चल रहा हो। वरना विष्णुपद परन जाने कैसी भयानक प्रतिक्रिया हो। फिर उसने पिहानीवाली का खत दिया बहू को।

खत पढ़कर बहू ने रामहल्ला से एक अजब प्रश्न किया :

''मैं अब क्या हूं रामहल्ला ?''

रामहल्ला ने बहुत सोच–समझकर उत्तर दिया, ''आप एक निर्दोष इंसान हैं, जिसपर इतना जुल्म हुआ है।''

''जब तक घर में बन्द थी, तब तक मैं समझती थी जुल्म अकेले मुझ पर ही हुआ है, पर जब से घर से बाहर निकली हूं–तब से देख रही हूं, चारों ओर जुल्म ही जुल्म है–और इंसान मजबूर है।''

बहू की सारी बातें सुनकर और उस तरह उसे गांव में उस विधवा के घर रहते हुए देखकर रामहल्ला को अपने अयोध्या वाले गुरु की वह वाणी याद आई–हे मनुआ, जब तक इंसान अपने से बाहर के संसार को नहीं देखता, तब तक वह सोचता है कि संसार में उससे अधिक दुःखी और कोई नहीं है। पर जब वह अपने से बाहर निकलकर संसार से जुड़ता है, तब वह पाता है–सारा संसार ही दुखमय है–अन्याय, जुल्म चारों ओर हैं।

वही बहू आज बाहर निकलकर देख रही है।

गांव में उस विधवा को सुरक्षित और उसमें अजब विश्वास जगाकर, बहू रामहल्ला के साथ कनखल लौट आई।

और दूसरे ही दिन महावीर पंडा भी घर लौटा। उस शाम जब सजी–सजाई बग्घी पर बहू को अपने संग बिठाए पंडा कनखल की सड़कों से हरिद्वार की सड़कों पर घूमा, तब रामहल्ला वह सारा दृश्य देखकर आश्चर्यचकित रह गया। पंचानन चोर ने तब जो कुछ बताया था, वह कितना कम और अधूरा लगा।

रामहल्ला ने अपनी आंखों से देखा सड़कों, गलियों, खिड़कियों और अतरियों से कितनी ही स्त्रियां एकटक उस दौड़ती हुई बग्घी को निहारती रह जाती हैं। पंडे का आनन्द उसी आंखों में छलकने लगता है।

रात को ब्रजरानी बहू से रामहल्ला ने पूछा–''बहू, पंडा आपको अच्छी तरह रखता है या नहीं ?''

''हां, क्यों नहीं, मैं उसकी रखैल जो हूं।''

''राम राम.....।''

''मैं यहां रखने–दिखाने के लिए ही तो हूं।''

''बोलो बहू, मैं का करूं ? आप यहां से भागने को भी तैयार नहीं.....।''

''अब भागकर कहां जाऊं ? क्या होगा उससे ?''

दोनों चुप रह गए।

थोड़ी देर बार रामहल्ला सिर झुकार बोला, ''बहू, छमा करना, मैं तो गंवार निरक्षर हूं–मेरे गुरु महाराज कहते थे, मानुस का यह जीवन लाखों बरसों में कहीं एक बार मिलता है.....बस, एक बार, फिर सब कुछ धूल राख में मिल जाता है, तो यह जीवन दुख–पश्चात्ताप में क्यों गंवाया जाए ? किसलिए ? तो बहू, उसे आनन्द में क्यों न जिया जाए ?''

ब्रजरानी की आंखों से आंसू झरने लगे। जैसे कोई प्रतिमा रो रही हो।

रामहल्ला का कंठ भर आया। वह लंबी सांस भरकर बोला, ''मानुस रोए क्यों बहू ? कौन इसकी परवाह करेगा ? मौत के बाद तो सब कुछ भुला दिया जाएगा।''

''ये बातें किससे कह रहे हो राम ?'' बहू ने फफककर रोते हुए कहा।

रामहल्ला बहू की इस बात से सन्न रह गया। वह जहां बैठा था, वह सारी पृथ्वी, वह सारा वायुमंडल मानो कुम्हार की चाक की तरह घूमने लगा। उसने आंखें मूंद लीं। जब आंखें खुलीं बहुत देर बाद तब सामने से बहू कहीं चली गई थी।

अगली रात महावीर पंडा वापस घर आया। रामहल्ला ने निडर भाव से सारी बातें महावीर को बता दीं।

महावीर ने कहा, ''जैसी ब्रजरानी की इच्छा। मैं तो सिर्फ उसे ही चाहता हूं। और मेरी कोई इच्छा नहीं।''

रात को ब्रजरानी सोने से पहले रामहल्ला के पास आई। बहुत देर चुपचाप बैठी रही। फिर धीरे–धीरे बोलना शुरू किया, ''किसे, कैसे बताऊं, मेरी क्या–क्या कल्पना थी उस कपूर–घर में। मैं पति के लिए, पुत्र के लिए क्या–क्या सोचती थी देने के लिए। मैं उस कपूर–घर में, जहां सब कुछ धन है, व्यवसाय है, वहां कुछ वह देने आई थी, जिसका उन्हें कभी पता ही नहीं। मैं वहां अपने को उस स्त्री के रूप में प्रकट करने आई थी, जिसे अब तक किसीने नहीं देखा।''

यह कहते–कहते ब्रजरानी हाहाकार करके रो पड़ी।

हां, बिलकुल ठीक। रामहल्ला को पता है, ब्रजरानी आगरे के एक मामूली घर की लड़की थी। पिताजी नहीं थे उसके। ना कोई भाई न और कोई बहन। बड़ी बहू पिहानीवाली ने देखा तो उसे, फिर शादी हो गई थी।

''सारा कष्ट इसी शरीर देह की वजह से तो है। यही तो सारा अहंकार जगाता है। यही है सबकी जड़। इसीने सारा सत्यानाश किया।''

''दुखी मत हो बहू।''

''मैं कैसे भूलू ?''

''कपूर–घर को तो भूलो।''

''कहना आसान है राम।''

''पर वे तो भूल गए बहू।''

''इसी तरह एक दिन मुझे यह पंडा भी भूल जाएगा।''

''तो क्या फर्क पड़ता है।'' रामहल्ला बोला।

''पर मैं अपने विष्णुपद को वहां कैसे भूलूं ?''

फिर एक अजब सन्नाटा छा गया। रामहल्ला ने कहा, ''मेरे गुरु महाराज कहते थे–अपने दुश्मन से परेम करो।''

''पर कैसे ?''

''पता नहीं बहू।''

फिर वही चुप्पी छा गई। बहू उठकर चली गई। सुबह रामहल्ला ने बहू से कहा, ''पहले मैं सोचता था बहू, मैं दिल्ली से आकर तुम्हें यहां से ले जाऊंगा। पर अब सोचता हूं, कहां ले जाऊं ? कैसी दिल्ली ? कैसा कपूरवालों का घर ?''

बहू के चेहरे पर हंसी बिखर गई।

''क्यों हंसी आई हू ?''

''पता नहीं।''

''तो अन्तिम क्रिया के दिन वहां आवोगी न ?''

''जैसी उनकी इच्छा।''

''किसकी ?''

''पंडा महाराज की।''

रामहल्ला अगले दिव वहां से दिल्ली के लिए रवाना होने लगा। तभी वही गंगा दौड़ी आई।

''दिल्ली में वह पंचानन चोर रहता है न,.....।''

''हां, पंचानन ?''

''हां, वही।''

गंगा से आगे कुछ नहीं बोला गया। वह भाग गई रामहल्ला के सामने। रामहल्ला जब कोठी के फाटक से बाहर निकला तो वही गंगा उसके पीछे से बोली :

''उससे कहना, बहू के साथ मैं भी दिल्ली आऊंगी।''

रामहल्ला तेजी से पीछे धूमा, ''बहू आएगी दिल्ली ?''

''पता नहीं।''

7

पक्के सवा मन आटे को पिछले तीन दिनों से दूध और जमुना के पानी से गूंधा गया था। आज उसका पुतला बनाया जा रहा था–कूपर हवेली के आंगन में। ब्रजरानी का पुतला। आंखों की जगह केले के नव अंकुरित फूल को बीचोंबीच चीरकर उसीसे दो आंखें बनाई गई थीं। कमल के फूल से नाभि बनाई गई थी। कच्चे नारियल के गोले से दोनों स्तन बनाए गए थे। कटि में चारों ओर कमल नाल बांधे गए थे। केश के लिए बरगद की जटाएं लगाई गईं थीं। हाथ की उंगलियां हल्दी के आटे से तैयार की गई थीं और उनमें नाखून लगे थे लाल मूंगों के। पैर की उंगलियां बनाई गई थीं–आटे में कौड़ी धंसा कर।

मंत्र पढ़कर पुतले को अन्तिम स्नान कराया जाने लगा और उसे चुनरी पहनाई जाने लगी। पिहानीवाली अपने कमरे में बन्द भीतर ही भीतर रो रही थी। विष्णुपद पिछले तीन दिनों से तेज बुखार में अचेत–सा पड़ा था। रामहल्ला उसके पास बैठा था। शेष चारा घर चुपचाप उस कर्मकांड को उसी देख देख रहा था, जैसे लोग श्मशान में चिता पर जलती हुई लाश देख रहे हों।

ठीक तीसरे पहर अचानक कपूर हवेली में खलबली मच गई :

''ब्रजरानी बहू आई है।''

''उसी पंडे के साथआई है।''

''बाहर, सदर दरवाजे के बाहर खड़ी है।''

पिहानीवाली दौड़ी हुई बाहर गई–सदर दरवाजे से बाहर–ब्रजरानी को अपने अंक में भरकर अचानक वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी। सारे नौकर–चाकर, पड़ोसी वहां उमड़ पड़े। रामहल्ला विष्णुपद को पीठ पर लादे बहू के सामने आ खड़ा हुआ।

''बेटे, देख अपनी मां को।''

विष्णुपद अपने पैरों पर खड़ा मां को अपलक निहारने लगा।

ब्रजरानी ने विष्णुपद को अंक में भरकर कहा, ''आह ! केवल तेरे प्रमाण के लिए आई हूं।''

''मां।''

केवल इतना कहकर विष्णुपद जैसे बिल्कुल स्वस्थ हो गया। उस भीड़ में से न जाने कहां कब ब्रजरानी अदृश्य हो गई। उधर कपूर–घर में ब्रजरानी की अन्तिम क्रिया हो रही थी, इधर ब्रजरानी गुड़वालों के धर्मशाले के एक कमरे में विष्णुपद को समझा रही थी :

''धर्म से बढ़कर अत्याचारी और कौन हो सकता है ? और वह धर्म जो धन और भय के भीतर से उपजा हो, उसकी यातना।''

विष्णुपद बिल्कुल चुप बैठा था। बाहर बरामदे में महावीर पंडा बैठा चुपचाप सिगरेट पी रहा था।

विष्णुपद ने कहा, ''घर नहीं चलोगी ?''

''कैसा घर मेरा ?''

''फिर मेरा ही घर कैसा ?''

इस प्रश्न से ब्रजरानी फफककर रो पड़ी।

तब विष्णुपद गम्भीर होकर बोला, ''मैं सब समझता हूं मां, पर सिर्फ यह नहीं समझ पाता कि मेरे पिताजी क्या हैं ?''

''ऐसा ही होता है–यही तो वह धर्म है–जहां उस राम ने उस सीता को स्वयं वनवास दिया था।''

''यह झूठ है–अधर्म है।''

''जो भी है–यही लोग हैं, वह कथा बनाने वाले।''

''कारण क्या है ?''

''यही जानने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है।''

''पर कैसा है मेरा जन्म ? तुम्हारा जन्म ?''

''ज्ञान से देखो, फिर इसका अर्थ तुम्हें एक दिन मिल जाएगा।''

ब्रजरानी यह कहकर मूर्तिवत चुप हो गई।

विष्णुपद बोला, ''अर्थ पाने के लिए क्या तुम जैसी मां को इस तरह खोना पड़ता है ?''

''पर मैंने तुम्हें नहीं खोया है। देखो न, सिर्फ तुम्हारे लिए मैं यहां इस तरह आई हूं।''

''इसका कोई असर कपूरवालों पर नहीं पड़ेगा।''

''मैं उन पर असर डालने नहीं आई हूं।''

''पर वही तो सच है।''

''नहीं, सच केवल तुम्हारा जीवन है।''

''और तुम्हारा जीवन ?''

''मैं तुम्हारे द्वारा जीवित हूं। रहूंगी।''

''पर मेरा जीवन तुम्हारे बिना क्या है मां ?''

''यही तो है तुम्हारी खोज।''

''कैसी खोज ?''

''तुम्हारा अपना चरित्र, जो कपूरवालों से अलग होगा।''

फिर दोनों के बीच सन्नाटा छा गया। मां ने विष्णुपद को अंक में भरकर मंत्रवत कहा, ''अभी वह महावीर तुमसे कुछ कहेगा–तुम साफ कह देना कि तुम.....।''

आगे एकाएक फिर वही सन्नाटा।

महावीर सच सामने आया। स्नेह से बोला, ''चलो, तुम भी हमारे साथ कनखल।''

विष्णुपद ने तप्त स्वर में कहा, ''तुमने मेरी मां के साथ अत्याचार किया है।''

''कैसा अत्याचार ?''

''प्रेम का अत्याचार।''

महावीर हंस पड़ा।

बोला, ''तुम्हारी मां आजाद हैं मेरी ओर से।''

विष्णुपद क्रोध से तिलमिला उठा, ''यह अंधा धर्म तुम्हींने बनाया है। उसीसे गुलाम बनाकर अब आजादी की बात करते हो। याद रखना, यह मेरी मां है।''

तभी बाहर बरामदे में पिहानीवाली दिखाई पड़ी। साथ में वही रामहल्ला। महावीर सामने से हट गया। दोनों बहुएं गले से बंधकर निःशब्द रोने लगीं। उस रुदन के ताप से जैसे विष्णुपद पकने लगा।

उसके सामने जैसे कोई तस्वीर उभरने लगी–वह उस तस्वीर से आंख मिलाने लगा।

रात को जब पिहानीवाली को ब्रजरानी विदा देने लगी तब उसने विष्णुपद का हाथ उसके हाथ में थमाकर कहा, ''मैं बस इसीके जरिए जीवित हूं। मेरी बस एक इच्छा है, इसपर कपूरवालों की छाया तक न पड़े। इसे यहां से बाहर पढ़ने इंग्लैंड भेज दो। मेरा बेटा इतना विद्वान–इतना निडर और इतना पूर्ण मनुष्य बनकर आए कि मैं इसमें अपनी पूरी सच्चाई देख लूं।''

विष्णुपद बीच ही में बोला, ''बिना मां के मैं पूर्ण मनुष्य कैसे बन पाऊंगा ?''

''वह मां सदा तुम्हारे भीतर है–जैसे तुम सदा मेरे पास हो.....तभी तो मैं जीवित हूं।''

अगले दिन सुबह उन्हें कनखल के लिए चल देना पड़ा। तभी रामहल्ला के साथ वही पंचानन आया। गंगा के सामने पंचानन को खड़ा कर रामहल्ला बोला, ''यही है वह चोर।''

गंगा हंस पड़ी। पंचानन शरम से पानी–पानी हो गया।

गंगा ने पंचानन से कहा :

''हे, कैसे आदमी हो तुम, बस, हार देकर चले आए।''

''.....''

''कोई और धंधा क्यों नहीं कर लेते ?''

''और कुछ नहीं कर सकता।''

''तेरे कारण दिल्ली आयी हूं।''

पंचानन चुप। रामहल्ला दूर खड़ा मूंछों के भीतर ही भीतर मुस्करा रहा था।

पंचानन घबड़ाकर बोला, ''अच्छा, जल्दी आऊंगा कनखल।''

विष्णुपद को विश्वास नहीं था कि इस तरह मां से भेंट होगी। पंचानन को भी नहीं इतवार था कि गंगा इस तरह दिल्ली आकर उससे इस तरह बातें कर जाएगी।

पंचानन ने रामहल्ला से कहा था, ''बोलो भाई, मैं और क्या जवाब देता ?''

रामहल्ला मजे ले रहा था, ''अरे, उसे दिल्ली घुमाते।''

''भाई मुझे लाज आती है।''

''भक वे।''

''और डर भी लगता है, कहीं पुलिस न धर ले ! सोचो न, एक चोर इस तरह एक औरत को.....वह भी इतनी सुन्दर चुलबुली औरत.....।''

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े थे।

विष्णुपद सोचने लगा–मेरी मां कितनी बहादुर है। पर उसकी सारी विशेषताएं उस दुर्घटना से लड़ने में धीरे–धीरे जल जाएंगी। यह कैसी व्यर्थता है ? यह कैसा है जीवन ? मनुष्य अपने जीवन का स्वामी कहां है ? इसका सारा संचालन तो परिस्थितियों के हाथ में है। सब कुछ तो वहीं संयोग है। यह सारी सृष्टि महज एक संयोग है। अनादि शून्य में कोई अचानक घटना घटी होगी–उसीसे यह पृथ्वी, यह वायुमंडल, नक्षत्र–ग्रह, जीव–जन्तु, पेड़–पौधे बने होंगे। और एक दिन फिर कोई संयोग होगा–फिर सब कुछ नष्ट हो जाएगा। कोई इसे याद करने वाला तक न होगा। फिर मनुष्य इस जीवन और संसार को इतनी गम्भीरता से क्यों लेता है ? क्यों एक घटना उसके सारे जीवन को इस तरह विषाक्त–दुखी और नरक बना दे। जब सब कुछ महज संयोग है, तो मनुष्य भी इसे क्यों न उसी भाव से स्वीकार करे–लीला, माया, संयोग। और इस पर वह खुलकर हंसे। जैसे वैरागी जीवन को देखता है–पर नहीं, यह सब महज सोचने की बातें हैं। इन्हें कोई जी नहीं सकता। नहीं नहीं नहीं.....।

विष्णुपद अब अठारह वर्ष का हो चुका है। उसे कई रातों से नींद नहीं आ रही है। वह किसीसे बात तक नहीं करना चाहता। लगता है, वह हर वक्त अपने–आप से बातें करता है।

एक दिन पिता सूरज कपूर ने विष्णुपद को सौ–सौ रुपये के तमाम नोट भरा एक लिफाफा दिया।

''बेटे, जाओ कहीं घूम आओ।''

''पर पिताजी, कहां ? क्यों ?''

''बेटे, तुम्हारी उमर अभी खेलने–कूदने और मौज करने की है। यह क्या है, खामखां मां का गम लिए बैठे हो ? उसके लिए तो मैं अभी ज़िन्दा ही हूं।''

उस दिन बाप–बेटे में इस तरह की बातें हुई जैसे अचानक दो अपरिचित लोग मिल गए हों। पिता ने कहा था–वह कायरता मेरी थी, वह आग मेरी है। मैं उसमें जलकर खाक हो जाऊंगा, पर तुम्हें..... ! जलने से जो रोशनी पैदा होती है न, तुम क्या वही नहीं हो सकते ? विष्णुपद बोला था–पिताजी, हम एक–दूसरे को तो प्यार–विश्वास दे सकते थे, पर ऐसा क्यों नहीं होता ? क्यों आपके लिए वही शराब, वही कोठे, वही जलसा–घर..... ?

पिताजी विष्णुपद की आंखों में निहारकर बोले थे–वह दे सकतना अगर इतना आसान होता, तो ऐसा होता ही क्यों ? उसके लिए जिस तैयारी की ज़रूरत है, वह कहां है, इस घर में ?

बातें बढ़ती चली गई थीं। अंत में पिता ने कहा :

''सब भाग्य की बातें हैं बेटा।''

''भाग्य क्या है ?''

''तुझे इन बातों में नहीं पड़ना चाहिए।''

''क्यों ?''

''तुझे किस चीज़ की कमी है ?''

''हमें, इस कपूर–घर में किस चीज़ की कमी नहीं है ?''

'तू ही बता न।''

विष्णुपद उस रात पूरे कपूर–परिवार के बीच बोला था, ''मुझे लगता है, इस घर–संसार में न तो पाप है, न दुःख है, न रोग है न शोक.....यहां है इन सबका मूल 'भय'। इस भय से इस घर–संसार में वह अन्धा धर्म पैदा हुआ है, जहां मेरी जीवित मां की अन्तिम क्रिया कर दी जाती है। समझ लो कपूर पुरुष, तुम सब अपनी–अपनी मृत्यु के बाद के जीवन को जी रहे हो।''

''ये बातें तेरे योग्य नहीं हैं।'' मालिक साहब गंभीर होकर बोले थे।

''कैसे कहते हो, हम मर चुके हैं ?'' पिता के अलावा सभी पुरुष एकमत होकर बोले थे।

विष्णुपद संयत स्वर में समझाते हुए बोला, ''जिस दिन कपूरवालों ने अपने देश के खिलाफ अठारह सौ सत्तावन में अंग्रेजों की मदद की, दिल्ली के प्रति गद्दारी की, जिस दिन मेरी मां को उस पंडे के हाथ में दे आए, उसी दिन तुम सब मर गए।''

विष्णुपद की इस बात से पुरुषों में बड़ी चिन्ता फैल गई। इसके लिए तरह–तरह के उपाय सोचे जाने लगे। शादी, विलास.....धन.....मंत्र.....औषधि.....और न जाने क्या–क्या।

पर अन्त में पिहानीवाली की बात मान ली गई। विष्णुपद को पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया।

शिमले से उसे विदा देने के लिए पिहानीवाली का लड़का वही कुंवर आया था। वह इस साल सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा दे चुका था। परीक्षा–फल निकलते ही वह भी इंग्लैंड घूमने जाएगा।

पर हुआ उलटा। कुंवर सीनियर कैम्ब्रिज में फेल हो गया। कुंवर मां से बोला, ''अब मैं आगे नहीं पढ़ूंगा।''

मां ने कहा, ''तुम्हारा छोटा भाई विष्णुपद क्या सोचेगा। पता है, वह तुमसे कितना प्यार करता है.....इंग्लैंड से उसकी हर चिट्ठी में तुम्हारे वहां आने के समाचार पूछता है।''

''मैं उसेसाफ लिख दूंगा–मेरा जीवन–दृष्टिकोण उससे बिल्कुल अलग है। मैं समझता हूं–मनुष्य की समझ, उसकी शिक्षा–दीक्षा उतनी ही होनी चाहिए, जितनी उसकी शक्ति हो.....जीवन–क्षेत्र हो। जो अपनी शक्ति के बाहर सोचने लगता है, वही दुखी है, असफल है।''

कुंवर जब ये बातें कर रहा था, तब एकटक उसके मुंह को मां पिहानीवाली निहार रही थी। और सोच रही थी–कितना व्यावहारिक है मेरा यह लड़का। हाय, यह अपने ही परिवार वालों की ही परंपरा में है–कपूरवालों की नई पीढ़ी। पर इन व्यावहारिक लोगों से यह दुनिया आगे नहीं बढ़ती। इससे धन बढ़ता है.....व्यापार और विलास बढ़ता है, दुनिया बढ़ती है उन अव्यावहारिकों से जिनमें एक है वह विष्णुपद। वह कहता था :

'मनुष्य ही मनुष्य का शत्रु है। और अपना सबसे बड़ा शत्रु वह स्वयं है।' पिहानीवाली को विष्णुपद की जब याद आती है, तब वह अपने पुत्र कुंवर से पूछती है, ''कुंवर, तू विष्णु के बारे में क्या सोचता है ?''

कुंवर जवाब देता है, ''विष्णु सोचता बहुत है, अगर उसने अपने को सुधारा नहीं तो वह बहुत दुःखी होगा।''

''पर सुख क्या है कुंवर ?''

''अपना काम करना।''

''कैसा काम ?''

''यही जो काम मिला है।''

''मतलब, तू व्यापारी बनेगा.....धन–दौलत कमाएगा।''

''हां मां, बहुत बड़ा व्यापार.....बहुत धन–दौलत।''

''तेरे घर में इसकी भी काई कमी है क्या ?''

''मैं यहां गद्दी पर बैठकर न यह व्यापार करूंगा न ऐसा धन कमाऊंगा। मैं कुछ बिल्कुल नया करूंगा। अपनी बुद्धि से और अपने पुरुषार्थ से।''

''कुछ और क्यों नहीं सोचते ?''

फिर एक दिन वह बीस वर्ष का कुंवर मां को समझाने लगा–मनुष्य अपने संस्कारों का दास है–उसके जन्म से पहले उसमें मां–बाप, पिता–पितामह, पिरपितामह का संस्कार उसके रक्त में घुल जाता है और जो उसके रक्त में होता है, उसे वही करना होता है।

''फिर समाज में नया–नया परिवर्तन कहां से आता है ?''

''आत्म–विद्रोह से।''

''तुम वह विद्रोह क्यों नहीं करते ?''

''मुझे उसकी ज़रूरत नहीं।''

''मुझे है कुंवर।''

''पर मुझे नहीं है।''

इस बिन्दु पर आकर पिहानीवाली को एकदम चुप हो जाना पड़ा। मां ने मन ही मन मान लिया कि कुंवर बिल्कुल अपने बाप–पिता पर गया है।

उस दिन रात को तो वह अचरज में पड़ गई जब उस डिनर पार्टी में कुंवर को उस अंगरेज चीफ इंजीनियर से ये बातें करते सुना :

''मैंने आपके नई दिल्ली योजनाकार सर एडविन लिटन और हरबर्ट बेकर से मुलाकात की है। कनाट प्लेस की कोई इमारत बनाने का 'कांट्रेक्ट' लेना चाहता हूं।''

उस चीफ इंजीनियर ने कहा, ''आपको हम लाल और सफेद पत्थर सप्लाई करने का कांट्रेक्ट दे सकते हैं।''

''नहीं, मैं कोई पूरी इमारत बनाने का कांट्रेक्ट ले सकता हूं।''

''आप हार्डिंग ब्रिज और मिंटो ब्रिज बनाने का ठेका ले सकते हैं ?''

''वह भी काम ले सकता हूं.....पर साथ में कनाट प्लेस का कोई एक हिस्सा बनाने में भी दिलचस्पी रखता हूं।''

''आप इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले सकते हैं ?''

''क्यों नहीं, शौक से।''

''ठीक है, कल मेरे आफिस में आइए।''

दूसरे दिन पिहानीवाली ने देखा, अपने पिता से दस हजार के नोट बांधकर कुंवर अपनी कार से उस चीफ इंजीनियर के दफ्तर गया था। और रात के बारह बजे घर लौटा था। सुबह गद्दी पर कपूरवाले यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गए कि कुंवर को पांच लाख रुपयों की लागत का एक ठेका मिल गया।

''कैसे मिला कुंवर ?'' मां ने पूछा था।

''रुपये में बड़ी ताकत है मां।''

''तो तूने कांट्रेक्ट पाने के लिए दस हजार घूस दिए ?''

''नहीं, अंगरेज घूस नहीं, 'प्रेजेन्ट' लेते हैं।''

''एक ही बात है।''

''तुम लोग चांदनी चौक की इन गलियों से निकलकर अब नई दिल्ली की तरफ आओ–जमाना अब बदल चुका है।''

यह कहते हुए कुंवर हंसता हुआ मां के गले से लग गया था।

उन्हीं दिनों एक अजीब घटना घटी। विष्णुपद के पिता सूरज कपूर एक रात उसी गुलनार के कोठे की सीढ़ियों पर गिरकर बेहोश मिले। बड़े–बड़े डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों ने जांच की। सब ने एक ही बात पकड़ी–'लिवर' खराब हो गया है।

मालिक हीराचंद कपूर ने कहा, ''यह जिस तरह से भी अच्छे हो सकें, मैं वह प्रबन्ध करने को तैयार हूं–इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका, स्विट्जरलैंड इन्हें इलाज के लिए भेजा जा सकता है।'' पर बाबू सूरज कपूर पलंग पर पड़े–पड़े आंखों में आंसू भरकर बोले, ''मैं यहां से कहीं भी बाहर नहीं जाऊंगा।''

''क्यों ?'' सभी ने पूछा था।

''मुझे पता है.....।''

सूरज बाबू बस इतना ही बोल पाए कि उन्हें खून की एक उल्टी हुई और तीन दिनों तक बेहोश रहे। नर्स, डाक्टर उनकी सेवा–उपचार में दिन–रात लगे थे। सारा कपूर–घर उन्हें फिर से होश में पाने के लिए उनके आसपास खड़ा था।

चौथे दिन सुबह एकाएक उनकी आंख खुली। उस समय कमरे में एक नर्स के साथ वही पिहानीवाली थीं। उन्हें ओश में पाकर पिहानीवाली जैसे जी गई। एकटक दोनों एक–दूसरे को देखने लगे।

सूरज बाबू ने हाथ उठाकर कुछ इशारा किया।

पिहानीवाली की समझ में कुछ नहीं आया। झुककर देवर के मुंह पर अपना कान लगा दिया।

तब बहू के कान में एक हल्की–सी आवाज कांपी–''शराब !''

पिहानीवाली भागती हुई उसी ब्रजरानी के सूने कमरे में गई। सुबह का पहला उजाला न जाने किधर से उस कमरे में आ रहा था। दोनों पलंग सजे–सजाए बिछे थे। एकाएक उसकी नजर उस अलमारी पर पड़ी, जिसमें इम्पीरियल व्हिस्की की खाली बोतलें पड़ी थीं। दूसरी अलमारी बंद थी।उसे खोलकर देखा तो हतप्रभ खड़ी रह गई–आलमारी के ऊपर दोनों खालों में वही इम्पीरियल व्हिस्की की मोहरबंद बोतलें, नीचे के दोनों खानों में सूखी हुई फूल–मालाओं के ढेर और बीच के खाने में ब्रजरानी का एक चित्र, बगल में विष्णुपद का।

ब्रजरानी का वहसौंदर्य उसकी बड़ी–बड़ी गहन आंखों से उस चित्र में भी दमक रहा था। लगा, वह मुस्कराती हुइ कह रही है, जीजी, सोचो, कितना निर्मम अत्याचार हुआ ? कौन लगा सकता है अंदाज इस नुकसान का.....इस दर्द और संताप का ?किसीको भी उसकी सही जगह से हटाकर कहीं और रख देने से यही फल होता है। कौन है हिसाब–किताब करनेवाला इस क्षति का ?

हयं, यह व्यापारी समाज।

ब्रजरानी की अनाहत हंसी जैसे उस सूने कमरे में गूंज उठी। पिहानीवाली थर–थर कांपने लगी। झट आलमारी बंद कर दी। दौड़ती हुई नजर अचानक उस बिछे हुए सेज पर पड़ी–उसपर से एक काली छिपकली भाग रही थी। बहू दौड़कर कमरे से बाहर निकल गई। उस कमरे में आई तो वहां पूरा घर जमा हो गया था।

सब चुप मौन खड़े थे। केवल सूरज बाबू सांय–सांय करके बोल रहे थे, ''शराब.....एक घूंट.....सिर्फ एक घूंट। मैं तुम सबके हाथ जोड़ता हूं.....सिर्फ एक घूंट।''

डाक्टर लोगों ने तै किया कि इंजेक्शन देकर मरीज को सुला दिया जाए। एक के बाद दूसरा इंजेक्शन लगा, तब कहीं सूरज बाबू की आंख मुंदी। दोपहर होते–होते आंख फिर खुल गई। और उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। कुछ कहने के लिए होंठ कांप–कांपकर रह जाते।

पिहानीवाली समझ रही थीं–देवर साहब क्या कहना चाहते हैं। कमरे को सूना पाते ही पिहानीवाली एक गिलास में थोड़ी–सी शराब ले आई और सूरज बाबू के होंठों पर लगा दिया।

घूंट अंदर जाते ही जैसे उनकी चेतना लौट आई। टूटते हुए शब्दों में बोलना शुरू किया, ''भाभी, यह दुनिया कायरों के लिए नहीं बनी है.....काश, यह मुझे पहले से ही पता होता। अगर मैं एक बार, सिर्फ एक बार स्वस्थ हो जाता तो जाकर ब्रजरानी को ज़रूर ले आता.....कह देता साफ.....मैं धर्म नहीं मानता.....मैं सिर्फ जीवन को मानता हूं..... ऐसा धर्म तो इन्हीं पैसे वालों ने ही बनाया है।.....धर्म तो गुलाम का नाम है। है न भाभी ?''

आगन में पंडित लोग गायत्री मंत्र का जाप कर रहे थे। सूरज बाबू के शरीर में फिर वही तड़पन शुरू हुई–जैसे ज़िंदा मछली आग में डाल दी गई हो।

''मंत्र बंद कराओ। यह सब झूठ है।''

सूरज बाबू चीखकर बोले। मंत्र–जाप रुक गया। फिर वह तड़पते हुए बोले, ''भाभी, ब्रजरानी कहां है ?''

पिहानीवाली की आंखें भर आई।

''विष्णुपद कहां है ?''

पिहानीवाली ने उनके माथे पर हाथ रख दिया।

''मैं मर जाऊंगा ना ? पर कब ? कैसे ?''

''राम राम करो बाबू।''

सूरज का चेहरा एकाएक कठोर हो गया। मुट्ठियां भिंच गई। आंखें जैसे फूट पडत्रेंगी। न जाने किस अन्तर्मन की वह अभिव्यक्ति थी। यही अवस्था शाम तक बनी रही–जैसे खिंचा हुआ धनुष।

पर जैसे–जैसे रात घिरती गई, वह धनुष शरीर धीरे–धीरे ढीला होता गया, जैसे एक–एक गांठ टूटती चली गई हो।

कमरे में कपूर–घर के सारे लोग चुपचाप बैठे थे–न जाने किस प्रतीक्षा में। मालिक हीराचंद ने कहा, ''गंगाजल पिलाओ। गऊदान करो।''

पुरोहित ने सूरज बाबू का दायां हाथ पकड़ा, पर वह जैसे बरबस हाथ छुड़कर चल चुके थे।

''स्वर्गवास हो चुका।''

''तो क्या, गंगाजल तो मुंह में डालो। गउओं का दार करो।''

''हां, हां, कर्मकाकंड तो होना ही चाहिए।''

पर सूरज बाबू का मुंह इस तरह बंद हो चुका था कि उसमें गंगाजल का एक बूंद भी जाना असंभव था। गंगाजल मुंह के ऊपर ही फैलकर रह गया।

8

उस दिन शाम को महावीर जब घर लौटा तो ब्रजरानी को विधवा रूप में देखकर हंस पड़ा।

''तो वह मर गया। मैं इसी दिन के इंतज़ार में था।''

''हो सकता है।'' ब्रजरानी ने उत्तर दिया।

''अब तक मैं तेरा प्रेमी था, अब हूं पति।''

''तू मेरा कुछ नहीं है।''

''तूने मुझे अब तक देखा कहां ?''

''मुझे भी अब तक कहां देखा ?''

बातें बढ़ती गई। जैसे आज दोनों स्वतंत्र होकर एक–दूसरे के आमने–सामने खड़े थे। महावीर ने बढ़कर भीतर का दरवाजा बंद कर लिया। और पशु की तरह ब्रजरानी पर टूट पड़ा। उसे बांहों में भींचकर वहीं फर्श पर पटक दिया। उसके सफेद वस्त्रों को फाड़कर तार–तार कर दिया।

''तुझे पाने के लिए चाहे तुझे बर्बाद कर देना पड़े.....।''

ब्रजरानी कुछ भी न बोली।

महावीर चीखा, ''साली बड़ी पतिव्रता बनती है.....।''

और वह ब्रजरानी को मारने लगा। पहले हाथों से। पर जब ब्रजरानी ज़रा भी न रोई, एक बार भी न चीखी, तब वह उसके नंगे शरीर पर बेंत बरसाने लगा। ब्रजरानी तब भी न चीखी, तब उसने उसके अधमरे शरीर को अपनी बांहों में कस लिया। दांतों से उसके मुंह, होंठ, स्तन, जंघा, बांह सब काटने लगा। और एक बार जब उसके मुंह में खून भर आया तो उसे ब्रजरानी के मुंह पर थूककर उसके शरीर पर बिछ गया। ब्रजरानी निस्तेज, अचेत उसकी क्रिया में पड़ी रही। महावीर बस, ब्रजरानी की एक चीख, एक आह सुनने की प्रतीक्षा करता रह गया। सुबह तक ब्रजरानी की बेहोशी न टूटी। उसी अवस्था में सिर्फ कभी–कभी कह बैठती, ''तूने ऐसा क्यों किया ?''

पता नहीं ब्रजरानी यह प्रश्न किस–किससे कर रही थी।

''तूने ऐसा क्यों किया ?''

अगले दिन वही कनखल के वैद्य जी आए। घावों पर लेपन की औषधि दी। पीने और खाने की दवा दी। ब्रजरानी जगकर बैठ तो गई, पर उसकी नींद गायब हो गई। वह दिन–रात मूर्तिवत, आंख फाड़े बैठी रहती।

न कोई प्रश्न, न कोई जिज्ञासा और न कुछ प्रतिक्रिया।

अन्त में वही वैद्य जी ने ही पूछा, ''अपने को इतना महत्त्वपूर्ण क्यों मानती हो ?''

ब्रजरानी के मुंह से फिर वही फूटा, ''उसने ऐसा क्यों किया ?''

''यही उसकी प्रकृति थी।''

''कैसी प्रकृति ?''

''स्वभाव।'' यह बोलकर वैद्य जी हंस पड़े।

और ब्रजरानी फटी–फटी आंखों से उन्हें निहारती रह गई। ऐसी निगाह जिसमें प्रश्न के पीछे छिपे हुए शून्य से आंख मिलाने की निराशा होती है।

वैद्य जी ने एकाएक कह दिया, ''तुम्हारी भी तो वही प्रकृति है.....।''

''कैसी ?''

''वही स्वभाव।''

''कैसा ?''

अब वैद्य जी गंभीर हो गए। पर बोलते–बोलते फिर मुस्करा पड़े :

''बहू, नहीं–नहीं, ब्रजरानी, तुम भी तो उसी स्वभाव की गुलाम हो। वह स्वभाव जो तुम्हें समाज से, परम्परा से मिला है–जिसमें तुम्हारा अपना कोई निजी हाथ नहीं। पति जैसा भी हो, वही सब कुछ है, यही तो तुम्हारी दिक्कत है न। यह सारा धर्म, सारा स्वभाव मनुष्य पर ऊपर से थोपा हुआ है।''

''यह क्या कह रहे हैं आप ?''

ब्रजरानी नीचे से ऊपर तक दहल गई। उसके स्वर कांपने लगे :

'क्या कह रहे हैं आप ?''

''जो महज स्वभाव में जीता है, वह मनुष्य नहीं गुलाम है।''

''यह सरासर झूठ है.....अधर्म है।''

वैद्य जी ठहाका मारकर हंस पड़े। बोले, ''जो स्वभाव का अतिक्रमण करता है, वही नया जीवन जीता है।''

ब्रजरानी तड़पकर बोली, ''नहीं–नहीं, जो स्वभाव का अतिक्रमण करता है, वही मरता है।''

''मरना ही तो जीवन है।''

फिर वहां एक सन्नाटा खिंच गया।

वैद्य जी फिर बोले, ''क्या तुम्हारा वह पति तुमसे प्रेम करता था ?''

ब्रजरानी बोली, ''क्या यह महावीर मुझसे प्रेम करता है ?''

''अच्छा, छोड़ो इसे, क्या तुम किसी और से प्रेम नहीं कर सकती ?''

''नहीं, अब और किसीसे नहीं, अब मैं सिर्फ मर जाना चाहती हूं।''

''सच क्यों नहीं कहती ? क्योंकि तुम जिसे चाहती थी, उसे अपना प्रेम दे नहीं सकी, इसीकी निराशा में अब तुम मर जाना चाहती हो।''

''आप कुछ भी कह लीजिए.....।''

सहसा ब्रजरानी चुप हो गई।

पर वैद्य जी नहीं रुके, शिशुवत बोले :

''पर हम सब की बुनियादी समस्या कुछ और ही है.....मतलब, हमारी तलाश है कि हम किससे प्रेम करें। प्रिया प्रेमी की खोज में है, प्रेमी प्रिया की खोज में। ठीक जैसे हर मनुष्य उस कर्म की तलाश में है, जो उसे आनन्द दे सके। जो उसे उसका निजी लगे।''

ब्रजरानी आवेश में बोली, ''अभी आप कहेंगे, अपने शत्रु से प्यार करो।''

''नहीं, मैं मनुष्य की सीमा पहचानता हूं, मैं कहूंगा–अपने–आपसे करो, लेकिन अपने अहंकार से नहीं, अपने उस से जो निजी है और व्यापक भी है।''

''आप महज ज्ञान की बातें करते हैं.....।''

''ज्ञान की नहीं, भक्ति और आस्था की बात करता हूं।''

''मेरे लिए अब सब निरर्थक है।''

ब्रजरानी एकदम निराश होकर चुप रह गई।

वैद्य जी कहने लगे, ''कल्पना करो, यदि तुम्हारा पति वही दिल्ली में ही तुम्हारे सामने किसी और से प्रेम करने लगता, तो क्या तुम जान दे देतीं ?''

''हां, मैं जान दे देती और गुस्सा आता तो जान ले भी लेती।''

''हां, क्यों नहीं, तुम प्रकृति की बेटी जो ठहरीं।''

''बिल्कुल.....।''

''ये पेड़–पौधे प्रकृति के बेटे–बेटियां नहीं ?''

''मैं इन्सान हूं।''

''मतलब अप्राकृतिक हैं ?''

''चुप रहिए।''

''सुनो, सुनो ब्रजरानी, ज़रा ध्यान से देखो इस विराट प्रकृति की लीला। यह प्रकृति पूर्णता नहीं, सिर्फ वृद्धि चाहती है। मानव चरित्र, गुण, धर्म से प्रकृति का कोई मतलब नहीं। मानव मूल्यों–आदशों पर प्रकृति मज़ाक करती है, हंसती है, अंगूठा दिखाती है। प्रकृति सिर्फ चाहती है सृष्टि, संख्या–मतलब सारी सृष्टि की नस्ल कायम रहे, और चाहे कुछ भी हो जाए, युद्ध, विध्वंस, दुःख, विनाश कुछ भी। प्रकृति सबसे तटस्थ, अलग सिर्फ चाहती है सृष्टि.....सृष्टि.....।''

यह कहकर वैद्य जी तेजी से उठ पडद्ये। सीधे कमरे से बाहर होकर आंगन पार कर चले गए। ब्रजरानी उन्हें निहारती रह गई।

उस रात ब्रजरानी की नींद वापस आ गई। उसे वर्षों बाद वह ऐसी नींद आई थी, जिसका उसे आज तक अनुभव न था–होश और बेहोशी की निद्रा। सुबह आंख खुली तो लगा, वही वैद्य जी सामने हंस रहे हैं और एक–एक शब्द पुष्प की तरह हवा में उड़ रहे हैं.....उड़ रहे हैं।

उसने महावीर को जगाकर पहली बार उस विश्वास, धैर्य और वैराग्य से कहा, ''बोलो, तुम क्या चाहते हो ?''

''सिर्फ तुम्हें। चाहे जैसे।''

''तुम मुझे किसी तरह भी नहीं पा सकते। हमारे बीच में धर्म की अभेद्य दीवार है।''

''मैं उस दीवार को तोड़ डालूंगा।''

''नहीं, वह दीवार और मजबूत होती चली जाएगी।''

''मगर वह धर्म क्यों है ? वह धर्म झूठा है।''

''क्योंकि उसी झूठे धर्म का सहारा लेकर तुमने मुझे पाना चाहा।''

महावीर सन्न रह गया।

ब्रजरानी के चेहरे पर अजब शांति छाई थी। ऐसी शांति जो मन के कठोर सत्य को अभिव्यक्त करने से प्राप्त होती है।

ब्रजरानी ने फिर वही प्रश्न किया–पर पहली बार जैसे अपने स्वभाव का अतिक्रमण करती हुई : ''बताओ, तुमने ऐसा क्यों किया ?''

महावीर जैसे अपने–आपसे कहने लगा–अपना एक ऐसा रहस्य, जिसे अपने सिवा वह कभी किसीको नहीं बता सकता था।

''तब मेरे पिता जीवित थे। हरिद्वार भर में सबसे अधिक इज्जत और ताकत उन्हींकी थी। मैं बारहवीं कक्षा में पढ़ता था–देहरादून में। मैं अत्यन्त गंभीर ढंग से महज विद्या का अनुरागी था। ब्रह्मचर्य ही तब मेरे जीवन का लक्ष्य था। पड़ोस की एक युवती से मेरा परिचय हुआ। तब तक मैं जानता भी नहीं था कि प्रेम क्या है.....वासना क्या चीज़ होती है–स्त्री क्या है। एक दिन उस युवती ने मुझसे कहा–कि वह मुझसे प्रेम करती है। मैंने इसका विरोध किया–मुझे यह अत्यन्त अप्रीतिकर और अस्वाभाविक लगा। मैं उससे बिल्कुल दूर भागने लगा। पर उतनी ही वह युवती मेरे पीछे पड़ गई। हां, याद आया, उसका नाम था सुमित्रा। वह मौका पाते ही मेरे कमरे में दौड़ आती और स्वयं भीतर से दरवाजा बन्द करके मुझे प्रेमासक्त करने की तमाम कोशिशें करती। मैं उसे समझाता। पर समझाते–समझाते एक दिन मैं उसके प्रति समर्पित हो गया। पवित्र–मन–प्राण से समर्पित, पर इसके बाद ही जैसे वह सुमित्रा बिल्कुल बदल गई। उसने मुझे तरह–तरह से बदनाम करना शुरू किया और एक दिन उसके पिता और भाई ने दिन–दहाड़े मेरे उसी कमरे में घुसकर मुझे इतना मारा, इतना कि मुझे मरा हुआ ही समझकर छोड़ा। पास–पड़ौस का सारा समाज मेरे लिए महज शत्रु लगा। मैं टूटकर हरिद्वार वापस चला आया। मेरी पढ़ाई खत्म, मेरा विश्वास खत्म, और मेरे भीतर वह दिन–रात हहराती हुई प्रतिहिंसा। न जाने कितने दिनों तक मैंने एक विक्षिप्त–सा जीवन बिताया और उसमें लिप्त होकर मैंने न जाने क्या–क्या किया–हिंसा, व्यभिचार, बलात्कार, चोरी, झूठ, जाने क्या–क्या.....। मेरी कितनी–किनी शांदियां आईं–एक से एक बड़ी शादी–रूपवती, सुशील कन्याएं–उत्तम घर–परिवार। मैं एक–एक को अस्वीकार करता चला गया। इस आघात से पहले मेरी मां की मृत्यु हुई, फिर मेरे धर्मात्मा, सर्वमान्य पिता की.....और फिर मैं गम्भीर हो गया। मगर महज बाहर से गम्भीर–भीतर मेरे वही प्रतिहिंसा की अंधी आग धक–धक जल रही थी। पंडागीरी का चुपचाप कर्म करते हुए मैं दिन–रात इसी भावना में जलता रहता कि मैं स्वभाव और प्रकृति को तोड़कर किसीको प्राप्त करूंगा और उसे अपना सर्वस्व दे दूंगा।''

यह कहते–कहते महावीर का चेहरा बिल्कुल निर्दोष शिशु की तरह हो गया , जो न जाने कब से रोते–रोते थककर चुप हो गया हो।

ब्रजरानी ने कठोर स्वर में कहा, ''इतनी यातना, इतनी पीड़ा और दुःख, यह क्या है ?''

''इससे मुझे शांति मिलती है.....मुझे अच्छा लगता है.....कह सकती हो, यही मेरी अभिव्यक्ति है। यही हूं मैं..... .....।''

''पर मैं यह नहीं हूं।''

''मुझे कतई परवाह नहीं।''

एक अजब सन्नाटा छा गया। इसी तरह कई दिन बीत गए। पर इस बीच ब्रजरानी ने अनुभव किया कि जैसे महावीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन आया है–ऐसा भीतरी परिवर्तन जो अचानक स्वयं को प्रकट कर देने से आता है। वह ब्रजरानी से, लगता है, थोड़ा तटस्थ हुआ है। उसके भीतर जैसे कोई चट्टान टूटी है। वह लोगों से खुलकर.....अक्सर हंसते हुए बातें करने लगा है। और उन्हीं दिनों ब्रजरानी को पहली बार यह अनुभव होने लगा कि उसमें अब भी कुछ शेष है जो उसका निजी है.....स्वतन्त्र है.....वह कहीं फिर भी जीवित है।

इसी अपूर्व बोध और उत्साह के साथ एक दिन वह सुबह ही सुबह पैदल, अकेली हरिद्वार के उसी हरि के पैड़ी की गंगा के सामने जा खड़ी हुई। और एकटक उस स्थानको देखने लगी, जहां वर्षों पहले उस दिन उस तरह उसका दान दे दिया गया था। उस बिंदु को देखते–देखते उसीकी नजर गंगा की तेज धार पर जा लगी–हाहाकार करता हुआ गंगाजल.....यह कहां बहता जा रहा है ? तब से गंगा का कितना अपार–अनंत जल बहकर कहां चला गया ?

ब्रजरानी शून्य में न जाने क्या निहारने लगी–ऋषिकेश के पहाड़ों की ओर–हिमालय की अदृश्य चोटियों की दिशा में–और वह सोचने लगी–यहां सब कुछ.....सारी सृष्टि का एक–एक त्तव कहीं हर क्षण भाग रहा है–एक–दूसरे में जा मिलने के लिए आतुर है। यहां रुक गया है केवल मनुष्य.....केवल हम। और उसे बांधकर रोके हुए हैं वही उसकी स्मृति–अमुक मेरा पति था.....उसने उस दिन ऐसा किया.....मैं वह था अधर्मी पंडा, उसने मेरे साथ ऐसा किया.....यह हुआ.....वह हुआ.....मैं यह था.....यह हूं.....था.....था.....था.....था.....हूं.....हूं.....हूं.....।

हिमालय की ओर से आती हुई अगहन की उस उत्तरी हवा,.....उस मलयानिल के तेज बहाव में जैसे चारों ओर वही था.....था.....था.....हूं.....हूं.....हूं के स्वर असंख्य होकर बहने लगे थे। और ब्रजरानी को लग रहा था, वह गंगा की धार में आकंठ डूबी नहा रही है.....जल के साथ कहीं तेज बहती जा रही है। अचानक उसने अपने कंधे पर किसीके हाथ का स्पर्श अनुभव किया।

''आप..... ?''

''मैं.....नंदिनी।''

''कौन..... ?''

''आप मुझे भूल गईं.....आपसे मेरी भेंट हुई है.....आपके ही यहां.....कनखल में। वह जो पंचानन चोर आया था दिल्ली सं.....।''

''हां–हां, याद आ गया.....आपके वह राजा साहब.....सब कुशल–मंगल ?''

''पता नहीं !''

एक अजब करुण सन्नाटा छा गया। पर बड़ी हिम्मत से नंदिनी ने अचानक बताना शुरू किया, ''वह राजा साहब, जिनकी मैं रखैल थी.....वह अब नहीं रहे। उनकी मृत्यु हो गई.....नहीं–नहीं, हत्या.....।''

''किसने ? कैसे ?''

नंदिनी ने भीड़ से घिरे हुए एक साधु की ओर इशारा किया, ''वह देखो.....वह साधु बना बैठा है मेरा फरारी..... उसीने एक दिन राजा को मार कर खत्म कर दिया.....लाश ही लापता.....कहीं कुछ भी न हुआ। कितना बहादुर है मेरा फरारी.....अब तक कितने सारे अंग्रेजों को मौत के घाट उतारा है। अंग्रेज खजाने को लूटा है। बारूद लगाकर पुल उड़ाया है.....गाड़ियों पर बम फेंका है.....।''

''यह सब मुझे क्यों बता रही हो ?''

''तुम्हें खुशी होगी.....तुम पर सबसे ज्यादा अन्याय हुआ है।''

ब्रजरानी मुस्करा पड़ी।

चुपचाप बढ़कर उसी भीड़ में खड़ी हो गई।

साधु बना वह फरारी लागों को उपदेश दे रहा था :

''जब इस जगत में अन्याय–अधर्म काराज बढ़ जाता ै.....तब भगवान संतों की रक्षा करने और अन्यायियों–अधर्मियों के नाश के लिए अवतार लेते हैं.....।''

ब्रजरानी ध्यान से सुन रही थी–साधु धाराप्रवाह ढंग से धर्मग्रंथों से उदाहरण देता हुआ सिद्ध कर रहा था..... क्या है अन्याय.....क्या है अधर्म.....और क्या है संत–समाज। वह बड़ी बारीकी से गुलाम भारतवर्ष की तस्वीर खड़ी करके अंग्रेज शासन के अन्याय–अत्याचार की ओर इशारा कर रहा था। पर कहीं वह खुफिया पुलिस की आंख में न खटक जाए, वह झट कीर्तन करने लगता :

जै जै रामकृश्न हरी
गोकुल कृश्न मुरारी रे
दुखी देश भारत की द्रोपदी
कहती आज पुकार
बनो दुष्ट संघारी.....
जै जै रामकृश्न.....।
राज कंस का फिर आया है
मचा विकट कुहराम
भारत के गोकुल में जन्मे
फिर से कृश्न बलराम
इन गोरे कंसों को मारो
काले कृश्न मुरारी.....
जै जै रामकृश्न हरी.....जै जै.....।

वाह वाह ! क्या नाच–नाचकर वह स्वयं कीर्तन करने लगा और उसके साथ सारी भीड़ उस कीर्तन में लीन हो गई।

नंदिनी मुख पर आंचल रखकर हंसती रही और ब्रजरानी वह सारा दृश्य देखकर गंभीर हो गई।

नंदिनी ने पूछा, ''क्या सोच रही हो ?''

''यही कि तुम इतनी प्रसन्न कैसे हो ? और उस फरारी साधु में वह कौन–सी प्रेरणा है, भाव है, जो उसे इस तरह कर्म में इतनी मजबूती और गहराई से बांधे हुए है ?''

''मैं अपने फरारी से प्रेम करती हूं और फरारी अपने कर्म से।''

''प्रेम क्या है ?''

''नहीं जानती।''

''फिर क्या करती हो ?''

''बिना जाने ही तो किया जाता है।''

ब्रजरानी वहां से मुड़कर अकेली जाने लगी।

''सुनो, मेरे फरारी से मिलो.....।''

''क्यों ?''

''एक बार उससे तुम्हारी चर्चा की थी।''

''क्या कहा था ?''

''यही पूरी घटना बताई थी.....।''

''घटना ?.....इससे क्या होता है ?''

''तुम उससे सारे प्रश्नों के उत्तर पाओगी।''

ब्रजरानी वहीं खोई हुई खड़ी रह गई। थोड़ी देर में कीर्तन खत्म हुआ। भीड़ छटने लगी। फरारी और नंदिनी में इशारे में ही कोई बात हुई और देखते ही देखते वह साधु छलांग मारकर गंगा की धार में कूदकर अदृश्य हो गया।

ब्रजरानी आश्चर्यचकित रह गई। तब नंदिनी ने उसे धीरे से बताया, ''वह इसी तरह बहकर दो मील के बाद किनारे आएंगे–वहां अपने कपड़े बदलकर फिर मेरे घर आएंगे.....।''

'आपका घर तो यहीं हरिद्वार में ही है ?''

''नहीं, राजा की मृत्यु के बाद मुझे वह सब कुछ छोड़ देना पड़ा। अब मैं यहीं गंगा के किनारे एक गांव में रहती हूं।''

दोनो चुपचाप गंगा के किनारे की पगडंडी से चलती जा रही थीं। ब्रजरानी ने पूछा, ''राजा की तुम कौन थीं ?''

''रखैल।''

''यह क्या होता है ?''

''जो तुम उस पंडे की हो।''

यह उत्तर सुनकर ब्रजरानी सिर से पांव तक कांप गई। जैसे वह उस शब्द के अर्थ को पूरे अंग–शरीर से छूने लगी हो।

ब्रजरानी ने फिर पूछा, ''राजा की रखैल से पहले क्या थीं ?''

''बनारस की रंडी।''

ब्रजरानी चुपचाप चलती जा रही थी, और सोच रही थी, नंदिनी कितनी स्पष्ट है–निर्भय है–शायद मुक्त भी है।

''फरारी भी तुमसे प्रेम करता है ?''

''पता नहीं !''

''क्या पता नहीं ?''

''कहा तो, तुम सारे प्रश्न फरारी से कर लेना।''

गंगा के कगार पर ही वह छोटा–सा गांव था–चारों ओर पहाड़ी का दृश्य.....वही जंगली पेड़–पौधे। एक किनारे छप्परों वाला बरामदें के साथ महज एक कमरे का घर।

फरारी बरामदे के चूल्हे पर खिचड़ी पका रहा था। अब वह बिल्कुल गांव का पुरुष लग रहाथा। दोनों स्त्रियों को घर में आते देख वह प्रसन्नता से बोला, ''आइए, भोजन तैयार है।''

तीनों ने एक संग भोजन किया। भोजन के तुरंत बाद फरारी वहीं बरामदे में एक चटाई पर बेधड़क सो गया।

ब्रजरानी ने कमरे में जाकर देखा–वहां एक बक्स था, शायद दो कच्चे घड़ों में अनाज रखे थे। दो–चार कपड़े टंगे थे और एक आसन पर कुछ किताबें रखी थीं, बस।

नंदिनी ने कहा, ''मैं सब छोड़ आई, बाप रे, कितना–कितना सामान था !''

ब्रजरानी ने पूछा, ''जो छोड़ आई, उसकी याद आती है ?''

''याद ही आए तो छोड़ना क्या ? और सारा दुःख तो उसी याद में है।''

''पर कैसे भूलीं ?''

ब्रजरानी एकटक नंदिनी को निहारती रह गई। जैसे उसने अपने दुःख के मर्म को पा लिया। तभी फरारी की आवाज आई :

''कहां है रे सुंदरी ?''

ब्रजरानी को लिए हुए नंदिनी बरामदे में आ गई। फरारी ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा, मुस्कराते हुए बोला, ''तो आप ही वह प्रेमिका हैं ?''

ब्रजरानी हक्की–बक्की–सी रह गई।

फरारी ने हंसते हुए कहा, ''प्रेम माने देना, मतलब आप वही दे नहीं पाईं.....मैं ठीक कह रहा हूं न ?''

ब्रजरानी मूर्तिवत चुप।

तीनों वहां से उठकर गंगा धार के किनारे आ गए।

फरारी बोला, ''देखो न, यह गंगा–धारा हर क्षण क्यों–कहां बह रही है ? यह जो अथाह पानी है.....यही तो हर क्षण बहता हुआ समुद्र की ओर जा रहा है। यही तो गंगा का सारा व्यक्तिव है.....प्रेम कह लो.....यही तो दिया जा रहा है.....''

''पर किसे ?''

''जो ले ले.....चाहे समुद्र.....चाहे कोई इसे पी ले.....बोतल में बंद कर ले.....खेत सींच ले.....बिजली पैदा कर ले..... ।''

ब्रजरानी तड़पकर बोली, ''हां, हां, मैं प्रेम देने आई थी इस संसार में, पर मैं अभागन किसीको न दे सकी। जबरन किसे देती ? कैसे ? क्यों ?''

फरारी अपलक ब्रजरानी के तप्त मुख को देखता रहा।

कुछ क्षणों बाद बोला, ''प्रेम माने ?''

''प्रेम माने प्रेम.....जो एक स्त्री अपने को देती है.....पुत्र को देती है.....समाज, घर, परिवार को देती है..... जैसे आप अना प्रेम देश की आजादी के लिए दे रहे हैं.....जैसे..... ।''

ब्रजरानी की आंखें आगे नंदिनी के मुख पर टिकी रह गई। नंदिनी लजा गई।

फरारी ने मुस्कराते हुए कहा, ''.....हां, हां.....जैसे तुम अपना प्रेम मुझे दे रही हो.....अपने प्रेमी को।''

''हां।''

''पर यह प्रेम है क्या ?''

''फिर वही प्रश्न !''

''हां, हां, फिर वही प्रश्न.....अनंत बार यही प्रश्न.....यह प्रेम है क्या ?''

''देना.....अपने–आपको देना।''

''पर क्या देना ?''

''जो मां अपने पुत्र को देती है.....जो पत्नी पति को देती है।''

''क्या देती है ?''

''प्रेम.....सेवा.....सर्वस्व..... ।''

फरारी और ब्रजरानी के बीच जैसे कुछ तन गया था।

फरारी ने कहा, ''छोड़ो, छोड़ो दुनिया की बात, अपनी बात करो।''

''अपनी बात तो कह रही हूं.....न मैं अपने पति को प्रेम दे सकी, न अपने पुत्र को.....न उस प्रेमी पंडे को।''

''अच्छा, पंडे को छोड़ो, अपने पति और पुत्र की बात करो। कल्पना करो.....तुम उन्हींके पास होती तो प्रेम करतीं ?''

''हां, क्यों नहीं ?''

''पति और पुत्र से तुम्हारा स्वार्थ था, तभी न प्रेम करतीं.....य प्रेम नहीं है.....नहीं था।''

''देश की आजादी से तुम्हारा स्वार्थ नहीं है ?''

''अगर यह स्वार्थ है.....तो यह प्रेम नहीं है। इसका कोई ताल्लुक न निजी कारणों से है न बाहरी किन्हीं उद्देश्यों से..... ।''

अजब सन्नाटा छा गया।

गंगा चुपचाप, तटस्थ बह रही थी।

ब्रजरानी माथा पकड़े बैठी थी।

फरारी ने उठते हुए पूछा, ''पर वह चीज़ क्या है, जो प्रेम के नाम पर दिया जाता है ?''

''प्रेम।''

फरारी ठहाका मारकर हंस पड़ा–इतनी ज़ोर से कि आसपास जैसे कुछ झनझना उठा।

''प्रेम, जैसे कि यह कोई लड्डू–पेड़ा हो, जो उठाकर किसीको दे दिया या खा लिया.....मैं पूछता हूं प्रेम के माने क्या ? वह चीज़ क्या है जो इस नाम पर किसीको दी जाए ?''

एक अजब चुप्पी छा गई। सच बात भी यही थी कि ब्रजरानी इतना ही जानती थी कि प्रेम माने प्रेम, और दी जाने वाली चीज़ भी यही, प्रेम। पर फरारी इसके बाद भी कैसा–कौन प्रश्न कर रहा है ? वह तो इसके भीतर के उस त्तव को मांगता है–जिसका उसे कोई अता–पता नहीं।

ब्रजरानी अकेली जाने लेगी।

फरारी ने कहा, ''जाओ, किसी ठोस कार्य में मन लगाओ.....और कुछ कर्म करो.....प्रेम क्षेम तुम्हारे मान का नहीं।''

''क्या काम करूं, बताओ न ?''

''बाग में फूल–पौधे लगाओ.....उसे सींचो, उनकी सेवा करो। इससे जो वक्त बचे अपने पास–पड़ौस के लोगों के दुख–दर्द में हाथ बंटाओ।''

''मैं इसके योग्य नहीं।''

''फिर प्रेम देने के योग्य हो ?''

''नहीं।''

''फिर देने की चिंता कैसी ? तुम्हारे पास देने को है ही क्या ?''

''फिर मैं ज़िंदा कैसे हूं ?''

''तुम अपने को ज़िंदा मानती हो ?.....हरगिज नहीं.....तुम भूत हो भूत..... ।''

''चुप रहो !''

''समझ लो तुम कब की मर चुकी हो.....तुम महज लाश हो.....बोझ हो अपने ऊपर।''

ब्रजरानी के पैर जैसे जड़ हो गए थे।

फरारी बिल्कुल तटस्थ स्वर में बोलता जा रहा था, ''जो हरदम अपने–आपकी ही चिंता में डूबा है.....अपने ही दुख.....अपनी ही स्मृतियों में, यादों में, जो अपने से बाहर कुछ देखता ही नहीं, वह कैसा ज़िंदा.....समझ लो तुम्हारे पास देने को कुछ नहीं है.....कुछ भी नहीं.....तुम्हारा स्वार्थ, तुम्हारा अहंकार, बस और कुछ नहीं।''

ब्रजरानी को लगा, उसके सारे वस्त्रों को तार–तार करके उसे नंगा कर दिया है। वह भागी वहां से.....उस अंधेरे में अपने को छिपा लेने के लिए जो मात्र उसका रक्षक लग रहा था। कनखल के पास की गंगा में वह कूद पड़ी। इस संकल्प से कि वह आत्महत्या कर लेगी। पर गंगा के जल में ओ ही जैसे उसी फरारी की वे दमकती आंखें उसके सामने खिंच गईं।

ब्रजरानी सहम गई। उसे लगा–गंगा की उल्टी धार में तैरता हुआ वह फरारी आया है। उसकी आवाज कौंधी है :

''है.....है.....तुम्हारे पास देने को..... तुम दे सकती हो।''

''पर क्या ?''

गंगा की लहरों का शोर चारों ओर छा गया।

आज जैसे जीवन में पहली बार नहाया हो। उसी भीगे कपड़ों में वह पागलों की तरह गंगा के किनारे घूमती रही, घूमती रही। जब घर पहुंची, तो तन के सारे कपड़े सूख गए थे–पर अंतस में जैसे सारा कुछ भीगा–भीगा था।

अगले दिन सुबह ही सुबह वह फुलवारी में जाने को हुई, पर उसे लग रहा था, उसके पैरों में किसीने बड़े वजनी–वजनी पत्थर बांध दिए हों। सिर पर असह्य भार था। यह क्या है, वह सोचने लगी, यह नीचे से ऊपर मेरे ऊपर लदा हुआ भार क्या है ? कौन है ? फरारी ने कहा, यह मेरा अहंकार है.....मेरी मुर्दा लाश है.....मेरा भूत है। नहीं, नहीं, मेरे पास अब कैसा अहंकार ! मैं मरी कहां हूं ? हां, हां–नहीं, नहीं..... ।

उसके पैर लड़खड़ाने लगे। सारी पृथ्वी घूमने लगी। लगा कोई उसके सिर पर हथौड़े से मार रहा है। वह किसी तरह अपने कमरे में लौटी और वहीं फर्श पर बेहोश गिर पड़ी। महावीर पलंग पर बैठा ब्रजरानी को निहारने लगा। महराजिन उसके हाथ–पैर को हथेलियों से रगड़ने लगी।

गंगा तभी वैद्य जी को लिवा ले आई।

करीब सवा घंटे बाद ब्रजरानी को होश हुआ। कई गिलास पानी पीने के बाद उसने एक लंबी सांस लेकर कहा, ''मैं अब यहां नहीं रह सकती।''

''कहां जाना चाहती हो ?'' महावीरने पूछा।

''पता नहीं।''

यह कहकर वह निःशब्द रोने लगी। महावीर हंसता हुआ कमरे से बाहर निकल गया। वैद्य जी आंख मूंदे न जाने कैसा मंत्र पढ़ने लगे और उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। ब्रजरानी ने अपना माथा वैद्य जी के अंक में टिका दिया और थोड़ी ही देर बाद उसे नींद आ गई।

शाम को चार बजे उसकी आंख खुली। पलंग से उठते हुए उसने देखा–वैद्य जी नीचे आसन लगाए वहीं उसी तरह मंत्र–जाप कर रहे हैं–निश्चल.....शांत।

ब्रजरानी उन्हें एकटक निहारने लगी।

एकाएक वह चिल्लाई, ''आंखें खोला..... ।''

वैद्य जी मुस्करा पड़े, ''तुम भी आंखें खोलो।''

''देख तो रही हूं।''

''कहां देख रही हो ?''

''कहां ?''

''हां, कहां ? वही जो तुम्हारा भूत है.....अतीत है.....तुम अपने वर्तमान को कहां देख रही हो ? तुम अपनी आदत में, प्रकृति में जकड़ी बैठी हो। इसे तोड़कर बाहर आओ.....निकल जाओ अपने से बाहर। तुम्हें पता नहीं, अपने झूठे दुखों को ही तुमने अपना साथी बना रखा है और तुम चाहती हो सुख–शांति। अपने से बाहर निकलकर स्वयं को देखो तो एक क्षण। अपना सारा दुख–सुख, विश्वास–अविश्वास सब कुछ छोड़कर उसके पास जाओ।''

''चुप रहो।''

ब्रजरानी एकाएक चीखी। वैद्य जी ठहाका मारकर हंस पड़े। वह जैसे उसी चीख में बोलने लगी, ''बकवास करते शरम नहीं आती ? कहना आसान है, जिसपर बीत्ती है, उससे पूछो। जो भोग रही हूं, वह मैं ही जानती हूं। यह कहकर ब्रजरानी चुप हो गई।

वैद्य जी वहीं बैठे–बैठे उसका मुंह तकते रहे। शाम गहरी हो गई। ब्रजरानी लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकल गई।

बाहर दरवाजे पर महावीर ने उसे पकड़ लिया।

''कहां चलीं ?''

''कौन हो तुम ?''

''अभी बताना होगा ?''

ब्रजरानी के भीतर की नफरत, विद्रोह, महावीर के उस विलासी पुरुष के अहंकार से टकराने लगा–जैसे बिजली के दो नंगे तार आपस में लड़ रहे हों। महावीर ने उसके मुंह पर एक झापड़ मारते हुए पूछा :

''तू कौन है ?''

''मैं और कुछ नहीं, तेरी बंदिनी हूं। तेरे अहंकार के कैदखाने में बंद.....।''

''अच्छा, तो अब यही सही।''

यह कहते हुए महावीर ने उसे घसीटकर मारना शुरू कर दिया और उसे एक कमरे में बंद कर दिया।

9

और उसी रात, ठीक तीन बजे, वह घटना घटी। डाकू आए और उस हवेली पर डाका पड़ा।

नौकर–चाकर सहित महावीर को दरवाजे के खंभों से बांध दिया गया। सारा घर लूटा जाने लगा। तभी डाकुओं के सरदार ने वह कमरा खोला। ब्रजरानी मिली।

उसके कपड़ों पर खून के धब्बे देखकर सरदार ने पूछा :

''कौन हो तुम ?''

ब्रजरानी चुप।

वह महावीर के पास लाई गई। पूछा गया :

''कौन है यह ?''

''मेरी–मेरी.....मेरी अपनी.....।''

''क्या ?''

''सब कुछ।''

ब्रजरानी से पूछा गया। उसने बताया :

''मैं इसकी कोई नहीं।''

''नहीं, यह झूठ बोलती है।'' महावीर ने गुस्से से कहा।

सरदार ने उसके मुंह पर एक जबरदस्त झापड़ मारते हुए कहा, ''साले, यह कौनहै ? इसकी यह हालत कैसे ?''

महावीर ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, ''मुझे छोड़ दो, मैं सब कुछ साफ–साफ बता दूंगा।''

महावीर मुक्त कर दिया गया। वह पानी पीने के बहाने बैठक में गया और हाथ में पिस्तौल ताने सामने खड़ा हो गया :

''खबरदार, मेरी इस औरत पर जो हाथ लगाया।''

''ओह ! यह तेरी औरत है ?.....कैसी औरत ?''

तभी महावीर के हाथ की पिस्तौल की गोली छूट गई। लक्ष्य थी वही ब्रजरानी। सरदार ने अपनी बाईं बांह पर गोली की चोट खाकर ब्रजरानी को बचा लिया। फिर महावीर और उस सरदार के बीच गोली चलने लगी।

महावीर को घायल–बेहोश करके, ब्रजरानी को संग लिए डाकू चले गए।

वह शाल वृक्षों का विशाल–घना जंगल था। कहीं–कहीं ऊंची–नीची पहाड़ियां, बड़े–बड़े खड्ढ, इधर–उधर गांव। उसी जंगल और खड्ढ में डाकुओं का निवास था।

न जाने कैसे कहां से एक डाक्टर ले आया गया था। उसीने सरदार की बांह की मरहम–पट्टी कीथी।

ब्रजरानी कीपूरी जीवन–गाथा सुनकर सरदार ने पूछा :

''तुम दिल्ली अपने घर जाना चाहती हो ?''

''वह अब कैसा मेरा घर ?''

''फिर कहां जाना चाहोगी ?''

''कहीं नहीं।''

'6हमारे साथ तुम कैसे रहोगी ?''

वह निरुत्तर रह गई।

बस, इसके बाद उन दोनों में आगे कोई सवाल–जवाब नहीं। कहीं कोई तर्क नहीं। गिरोह के किसी डाकू नेभी कभी कुछ नहीं पूछा।

ब्रजरानी सबके लिए उसी जंगल, बियाबान में भोजन बनाती। सबकी सेवा करती और सरदार के प्रति माया–ममता से अभिभूत रहती।

आषाढ़ की पहली वर्षा होने के बाद सरदार ने कहा, ''चलो, अब मैं तुम्हें अपने घर छोड़ आऊं।''

''तुम्हारा घर ? तुम्हारा भी घर–गांव ?''

''क्यों नहीं, हम सबके घर–गांव हैं।''

उसी अंधियारी रात में जब सरदार, ब्रजरानी को संग लिए अपने उस बड़े–से गांव में घुसा, तो ब्रजरानी थर–थर कांपने लगी थी। असंख्य भाव–तरंगें उसमें हिलोरें ले रही थीं। खपरैल के उस बड़े घर में घुसते ही सरदार ने धीरे से एक अजब तरह की आवाज निकाली। थोड़ी ही देर में घर का फाटक खोलकर एक स्त्री निकली, हाथ में लालटेन की रोशनी के साथ। सरदार ने परिचय कराया :

''यह मेरी पत्नी है, फुलगेंदा.....और यह है मेहमान–क्या नाम ? हां, ब्रजरानी..... ।''

सुबह चार बजे से कुछ पहले ही सरदार जाने लगा। उसके संगी–साथी आ गए थे। विदा लेते हुए सरदार ने बताया कि यहां उसे कोई चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। वर्षा के तीन महीने डाकुओं के लिए छुट्टी के दिन होते हैं। वह हर सप्ताह घर आएगा। उसे जिस किसी चीज़ की ज़रूरत होगी, वह पूरी कर दी जाएगी।

जब सुबह हुई तो ब्रजरानी ने देखा–सरदार के दो बच्चे हैं–एक लड़का, एक लड़की। लड़का आठ साल का है–नाम है चतुरभुज, और लड़की पांच साल की है–नाम है तुलसी। सरदार की बुढ़िया मां भी है–बीमार, चारपाई पर पड़ी हुई। दोनों पैरों में लकवा मार गया है–आंखों से अंधी। उसीने यह सवाल किया था :

''जे कौन है बहू, यहां कैसे आई ?''

ब्रजरानी ने उसे अपनी पूरी कैफियत दी। तब बुढ़िया बोली, ''अरे, तो का हुआ, यह बता, तेरी कोख में कोई बच्चा–बच्चा है कि नहीं ?''

इसका उत्तर फुलगेंदा ने दिया। बुढ़िया हंसने लगी।

''अरे, तो यह कोख काहे खाली रखती है ? इसे तो भरी रखना चाहिए.....हाय, यह कैसी तिरिया है.....इधर तो आ.....तेरी नाभि तो छूऊं।''

फुलगेंदा ने उसे खींचकर बुढ़िया के पास कर दिया। उसने अपने कांपते हुए हाथों से ब्रजरानी के पेट को छुआ. .....पेट से पेडू तक, फिर बोली, ''अरे, इसका फूल तो मुरझा गया है। क्यों रे, तैने अपनी फुलवारी को सूखने क्यों दिया ? अरे, जे तो ऐसा फूल का पेड़ है जामे रोज पानी डालने की ज़रूरत हैय।''

उस दिन तो ब्रजरानी उस बुढ़िया से घबड़ाकर भाग खड़ी हुइ थी, पर धीरे–धीरे उस गरीब, उपेक्षित, दुःखी बुढ़िया ने उसे अपने करीब खींच लिया।

ब्रजरानी उसकी सेवा करने लगी। उसे नहलाती, धोती, खिलाती–पिलाती। बुढ़िया उससे न जाने कहां–कहां की बातें करती रहती। उसीने एक दिन बताया कि किस तरह उसका यह छोटा बेटा सरदार डाकू बना। उसके बड़े भाई को चैत के गंगा मेले में गंगा पार के ठाकुरों ने जान से मार दिया। तब यह सरदार, छोटा भाई, कुल सोलह साल का था। विधवा बहू और इस सरदार को संग लिए वह मां पुलिस थाने गई थी। थाने पर वह ठाकुर थानेदार–उसने एक दिन विधवा बहू का हाथ पकड़ा था.....सरदार भाई ने थानेदार के सिर पर लाठी मारी थी। थाने के सिपाहियों ने सरदार को पेड़ से बांधकर पीटा था और बहू को खींचकर वे लोग एक कोठरी में ले गए थे। घर आकर बहू अपने कपड़े पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरी और सरदार न जाने कहां से एक बंदूक ले आया और थानेपर जाकर उसने तीनों सिपाहियों की हत्या कर दी और तभी से यह डाकू बन गया। यह बहुत दिनों पहले की बात है।

फुलगेंदा ने भी एक दिन अपनी शादी की बात बताई। तब सरदार फुलगेंदा के गांव में उसीके घर छिपा हुआ वर्षा के दिन काट रहा था। सरदार ने कहा–नहीं, वह शरणागत होकर विश्वासघात नहीं करगा। वह बाकायदा शादी करके ले जाएगा। पर मां–बाप कतई तैयार नहीं–डाकू के साथ कौन अपनी बेटी की शादी करे ? साल गुजरा, कई साल गुजरे, सरदार मां–बाप को राजी करने में लगा था। अंत में जबर्दस्ती यह शादी कर ली।

अपनी शादी की कहानी आज बताते–बताते फुलगेंदा हंसती हुई लोटपोट हो जाती है। बाप रे बाप, बंदूक लिए उतने डाकू ! बीच में मंडप के नीचे पंडित हमारी शादी करा रहा था.....हो हो हो, दइया रे दइया ! आगे–आगे दूल्हाराम घोड़े पर, दुल्हन सोलह कहार की पालकी पर.....।

उस घर में कितनी–कितनी कहानियां हैं !

वर्षा ऋतु में डाकू डाका नहीं डालते।

जंगल–बियाबान में वे कहां भीगते रहें !

सांप–बिच्छु से कैसे कोई बचे !

सरदार सच अब हर हफ्ते घर आता है। जब सुबह तक वर्षाहोती रहती है, तब वह दिन को भी घर रह जाता है।

तब भादों बीत रहा था।

कई दिनों से बूंदी नहीं टूटी थी। सरदार को घर छोड़कर जाना ही था–कहीं पुलिस को खबर न मिल जाए–दो दिनों से ज्यादा घर में रहना खतरनाक है।

''अरे रह जाओ न, मैं खपरैल पर बैठी रात–भर पहरा दूंगी, बस एक रात अपने इस मेहमान के लिए।''

यह कहती हुई फुलगेंदा अर्थपूर्ण ढंग से मुस्करा पड़ी। सरदार ने कहा :

''वह मेहमान नहीं, अब इस घर की है।''

तभी वहीं ब्रजरानी आ पहुंची थी।

फुलगेंदा ने मज़ाक किया, ''देखो न, यह इस तरह जाइ रहे हैं, तुम रोको तो रुक जाएंगे।''

इस घर में इतने ही महीने रहने–जीने का जो प्रभाव ब्रजरानी पर पड़ा था, उसकी झलक उसकी बात में थी। वह भी उसी मजाकिए ढंग से बोली, ''इन्हें क्या, इन्हें तो जंगल में ही मंगल है।''

''हां, हां, मुझे वहां कोई कष्ट नहीं है। तुम सब यहां आनन्द से रहो।''

''हां, क्यों नहीं, यहां घर में हम लोगों के साथ रहने से इनकी जाति जो चली जाएगी।''

ब्रजरानी की मुस्कान–भरी वह बात सरदार को कहीं छू गई। पर उसने अपने को सम्भाल लिया :

''मैं तो अब आए दिन यहां आता हूं, रात का भोजन करता हूं।''

''इस बारिश में कहां जाओगे ?'' ब्रजरानी ने अजब ममता से कहा।

''किसी और गांव में जाकर सो जाऊंगा।''

सहसा बीच में फुलगेंदा बोल उठी, ''आज अपने इसी घर को दूसरा कोई गांव समझकर सो जाओ न !''

सच, वह भादों की वर्षा दिन–भर न रुकी। शाम से और भी ज्यादा तेज हो गई। फुलगेंदा बंदूक लिए खपरैल पर जा बैठी–पहरा देने के लिए।

सरदार मां के पास बैठा, मां से आल्हा–ऊदल की कहानी सुन रहा था।

बगल के कमरे में ब्रजरानी ने अपना बिस्तर बिछाते समय शय्या के एक कोने पर बैठकर क्षण–भर के लिए आंखें मूंद लीं। उसी क्षण सरदार कमरे में आया।

''अच्छा, तो आंख मूंदकर अपने हृदय में स्वामी का मुख देख पाती हो !''

''हां, क्यों नहीं ?''

फिर एक सन्नाटा छा गया। खपरैल के ऊपर भादों की वर्षा की बूंदें चटक रही थीं। पूरी हवा में एक अजब शोर था बरसते पानी का.....झम झम झम झम। और उस बरसते पानी में ऊपर खपरैल परपहरा देती हुई वह फुलगेंदा।

''तुम मुझे चाहती हो ?''

यह कहते हुए सरदार ने ब्रजरानी को अंक में भर लिया। ब्रजरानी हाहाकार करती हुई उसके वक्ष को, उसके मुख को, होंठों को, आंखों को इस तरह चूमने लगी जैसे वह युगों की प्यासी नदी हो।

एकाएक रुककर बोली :

''पर क्या यह पाप नहीं है ?''

''कैसा पाप ?''

''अपवित्र प्रेम।''

''नहीं। पाप–पुण्य, पवित्र–अपवित्र, धर्म–अधर्म कमज़ोर–शक्तिहीन के लिए है। जहां शक्ति है वहां कोई पाप–अधर्म नहीं।''

''मेरी शक्ति क्या है ?'' ब्रजरानी ने पूछा।

''तुम्हारा दुख–दुर्भाग्य। नहीं–नहीं, सिर्फ तुम.....तुम..... ।''

ब्रजरानी उसे अंक में बांधे शय्या पर गिर पड़ी। जैसे कोई पहाड़ ज्वालामुखी की आग से पिघल जाए.....जैसे धरती को फाड़कर कोई धारा फूट निकले–ऐसा था वह अनंत क्षण–अधर्म पर पवित्र, अपवित्र पर मानवीय कल्याणकार..... सब कुछ विस्मृत कर देने वाला।

ब्रजरानी की जब आंख खुली तब आधी रात से ज्यादा हो चुकी थी। वर्षा उसी तरह हो रही थी। वह फाड़ बांधे घर से बाहर निकल आई। उसी वर्षा के पानी में भीगने लगी। आकाश की ओर मुख किए वह सीप की तरह जैसे सारा आकाश पी रही थी, आंख खुली, तो सामने से कोई आ रहा था।

''कौन ?''

''फलगेंदा।''

''पर तू कौन ? अब तो पेट भर गया न !''

''क्या ?''

''मैंने सब देखा है खपरैल के ऊपर से, बता कौन है तू ?''

''अब भी कुछ जानना बाकी है ?''

''तेरे मुंह से सुनना चाहती हूं।''

''मैं.....कौन हूं..... ? मैं.....नास्तिक.....अपवित्र.....मायाविनी.....कुलटा.....और बोलूं ?''

फुलगेंदा ने पूरी ताकत से ब्रजरानी के मुंह पर झापड़ मारा और स्वयं फफककर रो पड़ी।

वर्षा और तेज हो गई। ब्रजरानी बंदूक लिए खपरैल पर चढ़कर पहरा देने लगी। फुलगेंदा एकाएक खपरैल पर आकर बोली :

''मुझे छिमा करो बहन, उन्हें पता चला तो मुझे गोली मार देंगे।''

''बहन, छिमा करने का अधिकार सिर्फ तुम्हारे पास है।''

ब्रजरानी ने यह कहकर बंदूक फुलगेंदा के हाथ में थमा दी।

''लो, गोली चला दो मेरे सीने पर।''

''अब क्यों ?''

''बदला नहीं लोगी ?''

फुलगेंदा चुप रह गई। थोड़ी देर बाद सुबह होने को आई। वर्षा थम रही थी। दोनों नीचे उतर आईं। सरदार जाने की तैयारी कर रहा था। दोनों स्त्रियां सामने खड़ी थीं।

ब्रजरानी बोली, ''मैं यहां अब और रहूंगी तो मेरी छाती फट जाएगी।''

''बहन, मैं सब समझती हूं, मैं भी तो वही स्त्री हूं। यह घर तुम्हारा है। तुम अब कहां जाओगी ?''

''नहीं, अब तुम यहीं रहोगी।'' सरदार ने कदम बढ़ाते हुए कहा।

ब्रजरानी ने उसका हाथ पकड़कर कहा :

''कहां जाते हो ? इस चक्रव्यूह में घुसने की राह है, पर बाहर निकलने की राह कौन बताएगा ?''

''रास्ता खुद ढूंढना होता है रानी !''

''तुम्हें लाज नहीं आती, अपनी पत्नी के सामने मुझे रानी कहते हो ?''

''अब मैं फुलगेंदा को भी रानी ही कहूंगा।''

यह कहकर तेजी से सरदार बाहर निकल गया। उसके कंधे पर झूलती हुई रायफल बहुत दूर तक दिखती रही। कई दिन बीते और ब्रजरानी अनुभव करने लगी, फुलगेंदा उससे नफरत करने लगी है और वह स्वयं फुलगेंदा से ईर्ष्या करने लगी है।

बूढ़ी मां जैसे अंधी आंखों से सब कुछ देख रही थी.....देख रही है, सब कुछ सुन रही है।

एक दिन वह ब्रजरानी का हाथ पकड़कर बोली :

''अब तो तेरा फूल हरा–भरा हो गया रे। सुन, मेरे पूत के दान का दान तू मुझे देगी न।''

''क्या ?''

''इसी घर में एक पूत को जनम देकर..... ।''

ब्रजरानी के मुख से एक हूक निकली।

''रोती क्यों हे रे ! मेरो पूत बड़ो शक्तिशाली है, उसे तेरी जैसी ही बहू चाहिए थी।''

ब्रजरानी ने कहा, ''मैं अब और मां नहीं हो सकती। तभी एक दवा खा ली थी।''

''अरे, मैं दूसरी दवा देती हूं रे।''

अब ब्रजरानी हंस पड़ी।

''अरे, तू दिल्लगी समझती है !''

''हाय, कहीं ऐसा होता है बुढ़िया मां ?''

''क्यों नहीं ? इस दुनिया में स्त्री–पुरुष के ऐसे तमाम मिलन हुए हैं। उसीको तो लोग आज कहते हैं, प्रेम–कथा। पति–पत्नी की भी कहीं प्रेम–कथा है ?''

यह कहते–कहते बुढ़िया हो हो हो हो करके हंस पड़ी।

''अरे, बोलती क्येां नहीं ? क्या सोच रही है ?''

''सोच रही हूं मां, अपने ऊपर भी मनुष्य का एक अधिकार है।''

''हां रे, अधिकार के लिए शक्ति चाहिए।''

उस घर में आए दिन फुलगेंदा और ब्रजरानी में झगड़े होते। ब्रकजरानी सब चुपचाप सह लेती। दोनों बच्चों को मां की तरह प्रेम–ममता देती। उनसे वही भाव पाकर जीती। बुढ़िया मां की सेवा करके न जाने किस कृतज्ञता भाव से भर जाती।

आठ महीने से ऊपर हो गए उस घर में जीते–मरते। इस बीच क्या–क्या नहीं हुआ ? कितने भाव आए। दो बार तो पुलिस के छापे पड़े। गांव की औरतों के मुख से क्या–क्या नहीं सुनने को मिला। भूख–उपवास, उपेक्षा, आतिथ्य सब सहने पड़े। कुल मिलाकर यह ऐसा संपूर्ण जीवन–अनुभव था, जिसने ब्रजरानी को उसकी निजी सीमाओं से तोड़कर उससे थोड़ा अलग कर दिया।

वे चैत के दिन थे। ब्रजरानी को अब उस घर को छोड़कर चला जाना था। वह अब अपने से बाहर के संसार को बिना किसी भावुकता, लगाव के भी देखने लगी।

उसे लगा, उसे जो इस घर, गांव और उस मनुष्य से मिला है, वह उसके लिए अपूर्व ही नहीं अत्यन्त मूल्यवान है। इसे सम्भालकर अब चल देना है। इससे ज्यादा वह सम्भाल नहीं सकती।

उस रात सरदार के घर आने का दिन था। वह प्रतीक्षा में जगी बैठी थी। आधी रात के बाद सरदार आया। ब्रजरानी उसे अंक में भरकर बोली :

''अब मुझे विदा दो !''

''पर पहले मुझे विदा दो।''

सरदार ने इतने कोमल स्वर में कहा कि साफ–साफ सुनाई न पड़ा। सारे शब्द कांप गए।

''क्या कहते हो तुम ?''

''यहां से जाने के पहले मुझे विदा दो।''

''क्या ?''

''मैं कल सुबह, साथियों सहित पुलिस को आत्म–समर्पण करने जा रहा हूं।''

ब्रजरानी घबड़ा गई। इतनी कि कुछ न बोला गया।

सरदार कहता गया, ''कल आठ बजे कलक्टर और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस उसी जंगल से तेरह मील की दूरी पर बने डाक बंगले पर आएंगे.....।''

''पर यह हुआ कैसे ?''

''मैंने सीधे उनसे पत्र–व्यवहार किया।''

''पर कैसे ?''

''पत्र लाने और ले जाना वाला आदमी एक लकड़हारा है, उसीसे सब कुछ तय हुआ है।''

''पर यह सब क्या है.....तुम्हारा घर.....परिवार, बीवी, बच्चे, मां और तम ?''

ब्रजरानी की आंखें जलने लगीं। उसका सारा कंठ सूख गया। सरदार ने गंभीरता से कहा, ''मैंने अपने डाकू जीवन में किसीकी भी हत्या नहीं की है–जो की है, वह सब इससे पहले ही हुआ है। ये सब बातें अधिकारियों को मालूम हैं। आत्म–समर्पण के बाद मुझे तीन साल कैद की सजा भोगनी होगी। तब तक के लिए घर पर सारा इंतज़ाम है। खेतीबाड़ी का भी काम कोई न कोई सम्भाल लेगा। मुझे विश्वास है.....।''

बात काटते हुए ब्रजरानी ने कहा, ''अगर अफसर लोग धोखा दे जाएं और तुम्हें.....।''

सरदार हंस पड़ा, ''ऐसा कुछ नहीं होगा।''

''फर्ज़ करो, कहीं ऐसा हुआ तो ?''

''फिर तो वही रास्ता अपनाना होगा।''

''क्या ?''

''वह नहीं बता पाऊंगा।''

रात तारों से भरी थी। चैत का पछिंपाव धीरे–धीरे बह रहा था। दोनों बाहर दरवाजे पर चुपचाप बैठे थे।

''पर तुम कहां जाओगी ?''

''पता नहीं।''

पास के आम के पेड़ पर कोई चिड़िया बोली। आसमान से एक सितारा टूटा।

ब्रजरानी ने पूछा, ''एकाएक ऐसा फैसला क्यों किया ?''

सरदार ने माथा झुकाकर कहा, ''एकाएक मुझे तुम क्यों मिलीं ?''

''मेरे मिलने से क्या हो गया ?''

''भावुक मत बनो।''

''अब कुछ बनना शेष नहीं।''

सरदार के कंठ से जैसे असंख्य तार बज उठे हों, वह रुक–रुककर बोलने लगा :

''तुमसे जो मिला, वह इतना था, ऐसा कि अब मैं वह नहीं रहा, जो था।''

ब्रजरानी फफककर रो पड़ी। रुंधे कंठ से बोली :

''मैंने ऐसा क्या किया ? मैं इस योग्य कहां.....मैं.....।''

सरदार ने उसके तप्त मुंह को अपने अंक में गड़ा लिया।

''यही तो बात है–तुमने अनजाने में ही वह सब कुछ दिया, तभी तो.....।''

ब्रजरानी ने तड़पकर कहा :

''तुमसे बदला लेने के लिए अगर वह सब मैंने किया हो तो ?''

सरदार ठहाका मारकर हंस पड़ा। आम के पेड़ पर बोलती हुई चिड़िया उन दोनों के ऊपर से उड़ गई।

''अब तुम रानी, कुछ भी कहो.....मुझे तो मिल गया, बस.....बस, मुझे विदा दो !''

ब्रजरानी मूर्तिवत चुप।

सरदार बोला, ''तुमने मुझे स्वतंत्र किया.....मैं तुम्हें कैसे रोक सकूंगा।''

ब्रजरानी को आश्चर्यहोने लगा–यह वही सरदार है.....वही डाकुओं का सरदार.....वही.....वही पुरुष..... ? यह कौन है ? इन्सान में एकाएक इतना परिवर्तन हो सकता है ? हां, हां.....परिवर्तन मुझमें भी तो हुआ.....अब मैं वह कहां हूं, जो कल थी.....यह महज अपने से थोड़ा अलग हटकर देखना ही तो है। यह कौन है जो मुझसे इतना अलग हटकर मुझे देख रही है ? वह कौन है सरदार जो उसने इस कदर तटस्थ होकर उसे देख रहा है ?

सरदार बोला :

''मेरा सब कुछ तुम्हारा है। तुम बिल्कुल स्वतंत्र हो–इसे जब चाहो स्वीकार कर लो, जब चाहो छोड़ दो।''

ब्रजरानी उस अंधेरे में कुछ देखने लगी।

सहसा बोली, ''जानते हो मुझे इस घर से क्या मिला ?''

''दुख–तकलीफ–संघर्ष के अलावा तुम्हें क्या मिला ?''

ब्रजरानी उसका हाथ पकड़कर बोली :

''मैं बताती हूं, मुझे यहां क्या मिला–माया, ममता, काम, क्रोध, पाप, पुण्य, ईर्ष्या, अहंकार.....झूठ.....छल।''

''बस.....बस.....।''

सरदार ने उसके मुख पर हाथ रख दिया। ब्रजरानी उसके दोनों हाथों को चूमकर बोली :

''मुझे बिल्कुल पता नहीं था, अब पता चला–इनसे गुजरकर इन्हें जीकर ही कोई आदमी से मानव इन्सान होता है।''

रात थोड़ी रह गई थी। पूरब दिशा में चमकता हुआ शुक्र तारा उदित हुआ।

''अब मुझे आज्ञा दो।''

''जाओ, सुखी रहो।''

''यह क्या ? मुझे और सुख नहीं चाहिए.....।''

ब्रजरानी उसी पूरब दिशा में चली गई।

चलते–चलते जहां सुबह हुई, वहीं से उसने सुना और देखा औरत–मर्दों की भीड़ पैदल चली जा रही है। औरतें एक कंठ से गा रही हैं :

अंचरन सुरज मनैइबै
तबै गंगा माई के पइबै।

ब्रजरानी चलते–चलते उसी भीड़ के संग चलने लगी। दोपहर होते–होते वह एक छोटी–सी नदी के तट पर आई। थोड़ी ही दूर पर उस नदी के ऊपर पुल बनने का काम चल रहा था। सैकड़ों मज़दूर लगे थे। वहां मज़दूरों में अजब शोरगुल सुनकर, भीड़ से अलग अकेली चली आई।

उसने वहां अजब निर्मम दृश्य देखा। गरीब, नंग–धड़ंग, फटी हालत में उन स्त्री–पुरुष मज़दूरों से गुलाम की तरह जबरन काम लिया जा रहा था।

जगह–जगह ठेकेदार के आदमी बेंत, चाबुक और डंडा लिए तैनात थे। ज़रा भी कोई मज़दूर उस धूप में रुका नहीं कि उसपर मार पड़ने लगती। इसी मार से एक मज़दूर स्त्री बेहोश होकर गिर पड़ी थी और मज़दूर लोग इसी अन्याय पर चिल्ला रहे थे। पर उनका चिल्लाना भी जुल्म था।

अंग्रेज इंजीनियर दूर तंबू के छाये में आराम से बैठा था। ठेकेदार था एक जमींदार–और वे सैकड़ों मज़दूर गुलाम प्रजा के रूप में वहां मुफ्त काम करने को मजबूर किए गए थे।

वह दृश्य देखकर ब्रजरानी जैसे अपना सारा दुख–संकट भूल गई। बेहोश स्त्री को अपने अंक में लेकर उसे सम्भालने लगी। तभी उसके माथे पर वही चाबुक की चोट पड़ी। वह तिलमिला पड़ी :

''जानवर.....बेरहम !''

''कौन है तू ? ठेकेदार का आदमी गुस्से में बोला।

''आंखें फूटी हैं क्या ?''

यह कहकर ब्रजरानी एक स्त्री के सहारे उस बेहोश स्त्री को उठाकर उसी अंग्रेज के तम्बू में ले गई। सारे मज़दूर आश्चर्य और भय से उसे देखते रह गए।

''चलो, काम करो !''

ठेकेदार के आदमियों की आवाज गूंजी और मज़दूरों पर फिर मारें पड़ने लगीं।

तम्बू में थोड़ी देर बाद उस स्त्री को होश आ गया।

ब्रजरानी ने उस अंग्रेज इंजीनियर से पूछा :

''यह कैसा अन्याय है ?''

वह अपने कुत्ते को गोद में लिए बोला :

''यहां का आदमी काम नहीं करना मांगता–ठीकेदार को तो काम लेना ही है। यह पुल हिन्दुस्तानी जनता के फायदे के लिए बन रहा है।''

''मगर ये आदमी हैं, जानवर नहीं।

''टुम कौन है ? भाग जाओ यहां से नेहीं तो.....।''

''क्या करोगे ?''

ब्रजरानी अजब विश्वास के साथ उस अंग्रेज के सामने तन कर खड़ी हो गई। ठेकेदार के दो आदमी दौड़े, चपरासी आए।

'6इस औरत को दूर करो मेरी नजरों से।''

लोग ब्रजरानी को जबरन खींचने लगे उस तम्बू से बाहर। उसने मज़दूरों को आवाज दी। कोई उनकी ओर न बढ़ा।

दूर खींचकर एक आदमी ने कहा :

''इतनी खूबसूरत होकर यह क्या करती है रे ?''

दूसरे ने कहा :

''हमारे राजा जमींदार तुझे महल में रख लेंगे।''

तीसरे ने कहा :

''अगर वह न सही, तो मैं हाजिर हूं–सेवा करूंगा, हां।''

ब्रजरानी ने उन्हें ऐसी नजरों से देखा कि वे उसे छोड़कर चले गए। वहीं खड़ी–खड़ी वह उन गुलाम मज़दूरों की दशा देखती रही और उस पूरी स्थिति को भी समझती रही।

उसे उस फरारी की याद आई–जो जगह–जगह अंग्रेजों पर बम फेंकता है–रेलगाड़ी उलटता है–पिस्तौल और बंदूक चलाता है। वह गुलाम भारत को अंग्रेजों सेआजाद करना चाहता है। पर उसी गुलाम भारत को न, जहां के लोग अन्याय और जुल्म को सिर्फ भाग्य की बात मानकर चुपचाप सह लेते हैं ?

सामनेपुल बनने का वह दृश्य, पीछे गंगा के मेले में जाती हुई वह अपार भीड़। उस भीड़ के मनुष्यों से इन गुलाम मनुष्यों का कोई संबंध नहीं है क्या ?

वे लोग इन्हें बचाने क्यों नहीं आते ?

क्योंकि वे भी गुलाम हैं–धर्म के। भाग्य के।

दुख–अन्याय से लड़ने के लिए मनुष्य होने का गौरव भाव चाहिए।

और यह भाव यहां नहीं है। धर्म, गरीबी और हजारों सालों की पराजय ने उस भाव को खत्म कर दिया है।

उसे उस बहादुर मनुष्य–सरदार डाकू की याद आई और उसका मन श्रद्धा से भर गया।

यहां वास्तविक मनुष्य या तो फरारी हो सकता है या डाकू, वह सहज मानव नहीं रह सकता।

यह सोचती हुई ब्रजरानी पीछे मुड़ी और गंगा–यात्रियों में जा मिली।

गंगा मेला।

गंगा में स्नान करते हुए असंख्य लोग।

इस मेले में इतनी भीड़ क्यों आई है ? यहां लोग क्या लेने–देने आए हैं। मेले–भर ब्रजरानी घूमती रही, घूमती रही। सहसा उसकी मुलाकात पंचानन चोर से हुई।

देखे ही पंचानन ठहाका मारकर हंस पड़ा।

''आप यहां ?''

''तुम कैसे ?''

फिर पंचानन ने बताया। वह कनखल आया। और वहां ब्रजरानी को न पाकर उसे ढूंढता इधर मेले में चला आया। मेले में पिछले तीन दिनों में उसने काफी हाथ मारा है–सैकड़ों रुपये, गहने, जेवरात।

ब्रजरानी को हंसी आ गई।

पर पंचानन अब उदास हो गया।

''क्या बात है रे ?''

पंचानन ने बताया :

''महावीर पंडा मृत्यु–शय्या पर पड़ा है। डाकुओं की चलाई हुई गोली से उसके दायें हाथ और बाईं जांघ के घावों में नासूर हो गया है। उसे दो बार दिल के दौरे भी पड़ गए हैं। उसकी सांस, बस आपको एक बार देखने के लिए रुकी है।''

ब्रजरानी पंचानन के साथ सीधे कनखल आई।

चैत महीने का आखिरी दिन था। सुबह हवा में अजब उमस थी। नौकरानी ने बताया कि मालिक की तबियत पिछले दो–दिनों से ज्यादा खराब है। डाक्टर–वैद्य सब ने जवाब दे दिया है।

ब्रजरानी पंचानन के साथ उस कमरे में गई, जहां महावीर मृत्युशय्या पर पड़ा था। ब्रजरानी को देखकर महावीर के चेहरे पर न जाने क्यों अजब मुस्कान फैल गई। ब्रजरानी को उस कमरे में ऐसा लग रहा था, जैसे वह किसी दूर के एक सुनसान स्टेशन के ऐसे प्लेटफार्म पर अकेली खड़ी हो, जहां से दिन की सारी गाड़ियां गुजर चुकी हैं। शेष है वहां केवल एक सन्नाटा। महावीर पर बार–बार बेहोशी के दौरे पड़ रहे थे। कभी होश कभी बेहोश। पर होश और बेहोशी के अंतराल में झूलते हुए उस जीवन–धागे को जैसे उसने बड़ी मजबूती से पकड़ रखा था। एक बार होश आते ही महावीर ने ब्रजरानी को इशारे से बुलाया। सिरहाने के तकिए के नीचे से एक बंद लिफाफा ब्रजरानी के हाथ में पकड़ा दिया।

टूटते हुए स्वरों में बोला :

''तुम्हारी कोई गलती नहीं। उन डाकुओं की भी कोई गलती नहीं। डाकू मैं भी तो था। तुम्हें ही एक बार देखने के लिए न जाने क्यों ज़िन्दा था।''

ब्रजरानी चुपचाप खड़ी थी।

बढ़कर उसने कमरे की सारी खिड़कियां खोल दीं–जो इससे पहले कभी नहीं खुलती थीं–जब वे दोनों इस कमरे में होते थे–चाहे प्यार करते हुए, चाहे नफरत में जलते हुए।

खिड़की खुलते ही–लगा, बाहर अब हवा बहने लगी है। बाहर बहुत बड़ा अनंत संसार है–विराट प्रकृति है–मनुष्य के सुख–दुखों से तटस्थ, संबंधहीन।

''सिर्फ तुम्हें आखिरी बार देखने के लिए।''

महावीर के होंठ इसके आगे कंपकर चुप हो गए। कमरे में वही दर्दनाक सन्नाटा।

महावीर ने वह बचा हुआ हाथ उठाना चाहा। पर वह कंपकर बिस्तर पर स्थिर रह गया। न जाने कहां से फिर एक मुस्कान उसके चेहरे पर चमकी। कुछ कहना चाहा, पर एकाएक बेहोशी छा गई। फिर वह चेतना न लौटी। रात हो गई।

ब्रजरानी, गंगा, दो नौकर और पंचानन महावीर की लाश के पास रात–भर बैठे रहे। ब्रजरानी अविचल थी।

उसे लग रहाथा–हर दिशा से तरह–तरह के डाकू उस कोठी में धुस आए हैं और आपस में लड़ रहे हैं।

जैसे रात–भर बंदूकें चलती रहीं। लड़ाइयां होती रहीं।

सुबह की रोशनी में ब्रजरानी ने वह लिफाफा खोला। उसमें महावीर की वसीयत थी–ब्रजरानी के लिए। उसने सब कुछ ब्रजरानी के नाम लिख दिया था।

उसे पढ़कर ब्रजरानी के भीतर जैसे कोई पहाड़ टूटा हो। उसकी आंखों में आंसुओं की धारा फूट पड़ी, जैसे पहाड़ तोड़कर कोई चश्मा–सोता बह निकला हो।

10

विष्णुपद को एकाएक हवेली के सामने देखकर कपूरवाले हैरान रह गए। वह बिना किसी सूचना, कार्यक्रम के इंग्लैंड से अचानक इस तरह लौटा था।

सारा घर उसके आसपास घिर आया। एक–एक कर उसे यहां की खबरें दी गईं। अंत में जब वह अपनी खबरें–समाचार देने लगा तो लोग घबड़ाना शुरू हुए।

मसलन :

विष्णुपद को इंग्लैंड से निकाल दिया गया, क्योंकि वह वहां हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई के लिए तरह–तरह के कामों में सबसे आगे बढ़कर हिस्सा लेने लगा।

इंग्लैंड से यूरोप के अन्य देशो में घूम–घूमकर इस आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों के खिलाफ वह जनमत तैयार करने लगा।

वह समुद्र के रास्ते से कहां–कहां ठोकर खाता हुआ घर लौटा है।

जाड़े की रात थी। करीब सवा दस बजे चांदनी चौक के कोतवाल की जीपगाड़ी कपूर की कोठी के सामने रुकी। कोतवाल के संग चार सिपाही।

उन्हें बैठक में बिठाकर कोठी के दरबान ने मालिक हीराचन्द कपूर को सूचना दी। कोतवाल साहब ऊपर ही बुला लिए गए।

''क्या खबर है कोतवाल जी, कैसे तकलीफ की इस वक्त ?''

''बात यह है हुजूर, आपके भतीजे साहब जो इंग्लैंड से तशरीफ ले आए हैं, उनके नाम यह वारंट है।''

''क्या मतलब ?''

हीराचन्द जी ने वारंट ले लिया, उसे पढ़कर बोले, ''ठीक है, सुबह दस बजे तशरीफ ले आइए।''

कोतवाल के जाते ही हीराचन्द कपूर ने टेलीफोन मिलाने शुरू किए–पहले, डिप्टी–कमिश्नर मिस्टर मारिस को, दूसरे आई०जी० पुलिस राबर्ट को, तीसरे राजनीति विभाग के सैक्रेटरी मिस्टर हैनरी जानवुड को और आराम से सो गए।

सुबह वारंट की खबर मालिक ने विष्णुपद को दी और आगे बोले, ''वारंट रद्द कर दिया गया, पर यहां रहकर तुम ऐसा आगे कुछ नहीं करोगे, जो कपूरवालों की शान के खिलाफ हो।''

पचीस साल का नवयुवक विष्णुपद अपने पूरे तेज से बोला :

''ताऊ जी, क्या शान है कपूरवालों की ? शर्मनाक तवारीख है इस घराने की, देशद्रोही, अंग्रेजों के तलवे चाटने वाले, अंधविश्वासी खानदान.....मेरी मां को उस बेवकूफ पंडे के हाथ में दे देने वाले.....।''

विष्णुपद का सारा चेहरा तमतमा गया। उसके होंठ फड़कने लगे, जैसे उसके शरीर भर में आग लग गई हो। सामने खड़े मालिक का चेहरा जैसे खाक स्याह हो गया। उन्होंने अपमान को पीते हुए बेहद सख्त होकर कहा :

''कल के लौंडे, तुम्हें पता है, तुम किससे जबान लड़ा रहे हो ? तुम अब तक पुलिस–हवालात में होते।''

''पुलिस–हवालात मेरे लिए कहीं बेहतर है।''

''तुम्हें कोई शर्म–लिहाज नहीं।''

''सिर्फ वही है मेरे पास।''

बातें बढ़ती जा रही थीं, पिहानीवाली ताई जी दौड़कर बीच में आ खड़ी हुईं। विष्णुपद को अपने कमरे में खींच ले गई।

विष्णुपद बेहद दुःखी और अशांत था।

''कुंवर भाई कहां हैं ? इस घर में नहीं दिखे।''

पिहानीवाली ने बताया :

''कुंवर ने कनाट प्लेस में बिल्डिंग बनाने के बड़े–बड़े ठेके ले लिए हैं। उसने बाराखंबा रोड पर अपना बंगला बना लिया है।''

''मैं कुंवर से मिलना चाहता हूं।''

''कुंवर इलाहाबाद गया है–वहां उसकी शादी तै हो चुकी है–अगले महीने में उसकी शादी है। तेरी होने वाली वह भाभी बहुत पढ़ी–लिखी है। बहुत सुन्दर सुशील है–संगीत वाली है। उसके पिता जस्टिस ओंकारनाथ मेहरोत्रा ने बेटी को बड़े–बड़े उस्तादों से संगीत की तालीम दिवाई है.....।''

पिहानीवाली ये सब बातें विष्णुपद को इसलिए भी इतने विस्तार से बता रही थी कि उसका परेशान मन और दिमाग कुछ हल्का हो जाए।

''शादी करने की इत्ती जल्दी क्या पड़ी थी !''

''अरे, अब वह अपने नये बंगले में अकेला कैसे रहे। उसने बहुत धन और नाम कमाया है। उसका नाम देखते ही अंग्रेज अफसर उसे एक से एक बड़ा और जिम्मेदारी का काम देते हैं।''

''पर मैं तो अंग्रेजों का दुश्मन हूं।''

''यही इंग्लैंड से पढ़कर आया है ?''

''हां।''

तब तक उस कमरे में रामहल्ला आ गया था–नाश्ताऔर दूध का गिलास लिए हुए।

''भइया ने मालिक को ऐसा क्या कह दिया, वह बहुत ही परेशान हैं।''

''इसका खून गर्म है, इसे उतनी सख्त बातें नहीं कहनी थीं।''

''ताई जी, मैंने बिल्कुल सच बातें कहीं हैं–सारा मुल्क आजादी की लड़ाई लड़ रहा है इन अंग्रेजों के खिलाफ, और यह कपूर–घर उन्हीं अंग्रेजों की मदद करता रहा है–सन् सत्तावन के गदर से लेकर आज तक। इसी गुलामी का फल है कि मेरी निर्दोष मां उस तरह उस अधर्मी पंडे के हाथ दान कर दी गई।''

''बीती बातों को भूल जाओ बेटे।''

पिहानीवाली और रामहल्ला उसे तरह–तरह से समझाने लगे। पर विष्णुपद की अशान्ति किसी तरह से भी कम नहीं हो रही थी। नाश्ता खत्म करके वह बोला :

''मुझे मां से मिलने जाना है।''

रामहल्ला बोला, ''भइया, अब वह पंडा मर चुका है, मां अब आनंद से होंगी, अब उन्हें क्या देखने जाना। आपको देखकर वह दुखी ही होंगी, क्या फायदा। सब भाग्य के फेर हैं, बस।''

विष्णुपद खौल उठा, ''क्या मतलब है तुम सबका ? मैं अपनी मां को भूल जाऊं.....अपनी मातृभूमि को भूल जाऊं ? फिर क्या है और, जसके लिए मुझे ज़िन्दा रहना है ?''

यह कहकर विष्णुपद कमरे से बाहर चला गया। रात तक जब वह घर वापस नहीं आया, तो पिहानीवाली चिंता में डूब गईं।

रामहल्ला सबको विश्वास दिलाता रहा कि भइया निश्चय ही मां से मिलने कनखल गए, पर सच्चाई कुछ और ही थी।

नई दिल्ली की रीडिंग रोड पर अनेक अट्टालिकाओं और झरोखों से सुशोभित, लाल पत्थरों और संगमरमर से रचे हुए बिड़ला मंदिर के पास ही वह मामूली–सा वाल्मीकि मंदिर था। उससे दक्षिण–पश्चिम में ऊबड़–खाबड़ जमीन का विस्तार। यहीं थी नई दिल्ली के म्युनिसिपल मेहतरों की गंदी झोपड़ियों की बस्ती। गांधी जी उन दिनों इसी बस्ती में थे।

विष्णुपद उसी महात्मा गांधी जी से मिलने जा रहा था। रास्ता तंग और टेढ़ी–मेढ़ी गलियों में से होकर गुजरताथा। मई की चिलचिलातई धूप में गर्द–गुबार और बालू भरा अंधड़–घरों के सामने, खुली नालियों में भिनभिनाती मक्खियां–विष्णुपद की आंखें जलने लगीं। गांधी जी स्वयंसेवकों के साथ गंदी बस्ती की उस दिन की सफाई का कार्यक्रम अपने हाथों सेपूरा करके लौट रहे थे। उनके हाथ–पैर कीचड़ और गंदगी से सने थे।

विष्णुपद वहीं नीम के पेड़ के नीचे बिछी चौकी पर बैठ गया। वहीं से वह देखता रहा–चर्खों की कतार, संध्या सभा का वह चबूतरा।

शाम होते–होते सारा दृश्य बदलने लगा। तरह–तरह के लोग न जाने कैसे वहां पहुंचने लगे–जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद और सरोजिनी नायडू, विदेशों के कई राजनीतिज्ञ, अखबारों के प्रतिनिधि, जगत के भ्रमण करने वाले यात्री, करोड़पति, स्वयंसेवक और बड़े–बड़े अफसर।

उस दिन की प्रार्थना–सभा में एक भजन गाया गया :

हम ऐसे देश के वासी हैं,
जहां शोक नहीं और आह नहीं।
जहां मोह नहीं और ताप नहीं।
जहां भरम नहीं और चाह नहीं।
जहां प्रेम की गंगा बहती है

सब सृष्टि आनंदित रहती है
जहां स्वारथ के नाम निशान नहीं
कोईखास नहीं कोई आम नहीं
कोई राजा और गुलाम नहीं
जहां दीप्ति रहती पर दाह नहीं.....।

विष्णुपद को लगा, जैसे वह एक अंधेरे जेलखाने में लम्बे अर्से तक बंद रहने के बाद आज अचानक मुक्त होकर प्रकाश में आ खड़ा है।

उसने विश्वास से पूछा :

''जो भजन अभी स्वतंत्र भारत की मूर्ति खड़ी करने के लिए गाया है, क्या वह वास्तविकता के अनुसार है ?''

''कैसी वास्तविकता ?'' गांधी जी ने पूछा।

''यही कि जो भारत पिछले एक हजार वर्षों से गुलाम रहा है, उसमें क्या इतनी जान शेष है कि वह इस तरह..... .....।''

गांधी जी ने बात काट दी। बोले :

''इसके लिए हमें करना और मरना होगा।''

''यह कैसे सम्भव है यहां की परिस्थिति में ?''

''जिसने सब कुछ, करना–मरना तक ईश्वर को अर्पण कर दिया है, उसके लिएसब कुछ संभव है।''

विष्णुपद ने गांधी जी को अपना परिचय दिया और उनसे स्वतंत्रता–संग्राम में अपनी निजी भूमिका के लिए–कर्म के लिए मार्ग–दर्शन चाहा।

गांधी जी बोले :

''जो भी कुछ करो, अनासक्ति भाव से करो–और वही करो जो भीतर से तुम स्वयं अनुभव करो–मतलब जो तुम्हारा धर्म हो.....शक्ति हो, यह कर्म घर–परिवार के क्षेत्र में भी संभव है–उससे बाहर भी। ध्यान रहे, कर्म में फेल हो जाओ तो उसके लिए अपने सिवा किसी अन्य को जिम्मेदार न मानो–सोचो, मेरी कर्म–परीक्षा हुई और उसमें मैं पूरा नहीं उतरा।''

विष्णुपद को प्रकाश का अनुभव हो रहा था पर वह महात्मा जी की बातें नहीं समझ पा रहा था।

वह नित्य उस भंगी बस्ती में जाता यह जानने के लिए कि गांधी जी का यह रूप क्या है ? यह कैसा कर्म है–इससे आजादी की लड़ाई का क्या सम्बन्ध है ? यह मात्र दिखावा और आडम्बर तो नहीं है ?

अन्त में विष्णुपद ने अनुभव किया कि भंगी बस्ती में उस तरह रहने का गांधी जी का निर्णय केवल प्रतीक स्वरूप नहीं था।

दरअसल वह स्वराज्य की जिस इमारत की धैर्यपूर्वक रचना कर रहे थे, यह उसीका एक अंग था।

एक दिन प्रार्थना–सभा में उसने गांधी जी के मुख से सुना :

''मेरे मन में यह भ्रम नहीं है कि यहां ठहरकर मैं भंगी और हरिजनों के वास्तविक जीवन का भागीदार बन रहा हूं–मैं इनकी ज़िन्दगी के भीतर से अपने को ढूंढ रहा हूं।''

विष्णुपद को लगा–यह आदमी संत और राजनीतिज्ञ दोनों का साथ कैसे हैं ? क्या इसके रास्ते पर चलकर यह देश आजाद हो सकेगा ?

अजब आशा–निराशा के भाव को लेकर विष्णुपद अपने घर लौटा।

उसी दिन उसे मां के हाथ का भेजा हुआ एक पार्सल मिला। पार्सल खोलकर जो देखा, तो वह आश्चर्यचकित रह गया।

एक–एक हजार के दस नोट–पांच गज रेशम के कपड़े के भीतर रखे हुए। एक जोड़ी धोती, चार बनियानें और एक खत।

विष्णुपद के लिए सबसे ज्यादा मूल्यवान वही खत था, वह पढ़ने लगा :

''तुम विदेश से घर लौट आए हो, मुझे पता लगा। तुम कैसे हो, मुझे पता नहीं। मैं कैसे हूं, तुम्हें पतानहीं। न जाने क्यों मन में अब भी यह इच्छा बाकी है कि तुमसे एक बार भेंट हो जाती। तुम्हें देखकर अपने को शांत कर लेती। यहसच है कि तुम्हारे अलावा इस संसार में मेरा कोई और नहीं है, पर इससे भी बड़ा सच शायद यह है कि मेरा जीवन अब समाप्ति पर है। मैं इस उम्मीद पर ज़िन्दा हूं–कि तुमसे एक बार ज़रूर मेरी भेंट होगी और तुमसे अपना मन सदा के लिए हल्का कर लूंगी।''

अगले दिन ही विष्णुपद कनखल के लिए रवाना हो गया। वहां पहुंचकर देखता है–उस घर में मां नहीं हैं बाकी घर भरा हुआ है। वहां एक नौकर है, और वही एक गंगा नौकराइन है। चार अन्य अपरिचित लोग–डाकू सरदार की पत्नी, उसकी बूढ़ी मां और वही दो बच्चे।

नौकरों ने उनचार अपरिचितों की कहानी बताई। उस सरदार की कहानी–कैसे वहां डाका पड़ा, कैसे मां जी सरदार के साथ गई। सरदार ने सरकार के सामने आत्म–समर्पण किया।

''पर मेरी मां कहां है ?''

विष्णुपद के इस प्रश्न का उत्तर दिया उसी गंगा ने।

''मां जी कहीं गई हैं–आज तीन दिन हुए हैं, आज शाम तक वह ज़रूर लौट आएंगी।''

सच, शाम होते–होते उसीपंचानन चोर के संग ब्रजरानी मां लौटीं। विष्णुपद को वह तनिक भी न पहचान पाई–न अपनी उस मां को वह पहचान सका।

''कौन हो भइया, कहां से आए हो ?''

गंगा दौड़कर बहू से इशारे में बोली, ''आपके बेटे वही विष्णुपद।''

ब्रजरानी मूर्तिवत अपने पुत्र को निहारती रह गई। विष्णुपद ने मां का चरण–स्पर्श कर प्रणाम किाय, और एक अजब ठंडा सन्नाटा वहां खिंचा रह गया।

''मां।''

यह शब्द सुनते ही ब्रजरानी फफककर रो पड़ी। विष्णुपद ने उसे सम्भालना चाहा, पर उसकी हिम्मत न हुई।

ब्रजरानी ने बढ़कर विष्णुपद का दायां हाथ थाम लिया।

''आओ मेरे संग, चलें यहां से।''

पुत्र को संग लिए मां न जाने कहां उस अंधेरे में बढ़ने लगी।

''मां, कहां जा रही हो ?''

''वहां पहुंचकर देखोगे।''

''पर क्यों ?''

''मैं तुझे उस कनखल के घर में कैसे रहने देती। वह घर मेरा है पर तुम्हारा नहीं। तुम्हारे साथ रहने के लिए मैंने एक घर बनाया है–वह घर हम दोनों का है।''

थोड़ी देर बाद पूरब से चांद की रोशनी फैली। ब्रजरानी ने घूमकर देखा–पीछे–पीछे गंगा को संग लिए पंचानन आ रहा है।

''क्यों रे, क्या है ?''

''हम आपको छोड़ कहां जाएं ?'' गंगा बोली।

''हमें क्या आज्ञा है ?'' पंचानन ने पूछा।

ब्रजरानी ने झुककर दूब घास की एक लम्बी–सी लतर जमीन से उखाड़ ली, ''इधर आओ मेरे पास, मुझे दो अपने हाथ।''

चारों हाथ जैसे ही सामने बढ़े, ब्रजरानी ने उन्हें कमल की पांखुड़ी की तरह एक में जोड़कर उसे दूब की लातर से बांध दिया, ''लो, तुम हदोनों की शादी हो गई। वह घर और उसकी सारी संपत्ति तुम दोनों की है। सरदार जब तक जेल से छूटकर नहीं आजाता, तब तक उसके परिवार की उस घर में सेवा करना–जाओ आनंद से जियो, मुझे अब किसी और की ज़रूरत नहीं।''

यह कहकर ब्रजरानी मां आगे बढ़ गई। वे उसी तरह दूब की उस कोमल और पवित्र लतर से बंधे वहीं खड़े रह गए।

आधी रात होते–होते वे दोनों उस छोटे–से गांव के किनारे पहुंच गए, जहां एक पतली–सी नदी बह रही थी। बरगद के एक छतनार पेड़ के नीचे वह नई झोंपड़ी बनी थी। उसके चारों और फूल–पौधों की क्यारियां बनी थीं।

लालटेन जलाकर मां ने कहा, ''यही है हमारा घर।''

मां भोजन बनाने बैठी।

विष्णुपद को लग रहा था, वह जैसे कोई सपना देख रहा है। कनखल पहुंचने से लेकर यहां तक जो कुछ होते हुए देख रहा है, वह उसके लिए आश्चर्य है।

मां–बेटे जब भोजन करने बैठे, तब विष्णुपद के मुंह से फूटा :

''मां, यह सब क्या है ?''

''हां, बताओ न, यह सब क्या है ?''

''मैं तुमसे पूछना चाहता हूं.....।''

''हां, मैं तुमसे सब कुछ बताना चाहती हूं।''

''यह सब.....।''

''हां, यह सब।''

इसी तरह टुकड़े–टुकड़े में मां–बेटे कुछ संवाद करना चाह रहे थे, पर उनके मुंह से शब्द फूट नहीं रहे थे।

कार्तिक महीने का पछिपांव धीरे–धीरे बह रहा था। बरगद के पत्ते रह–रहकर खड़क उठते। मां–बेटे बाहर घास पर चद्दर बिछाकर सो रहे थे। किसीको एक पल भी नींद नहीं आ रही थी।

''मां, तुम्हें डर नहीं लगता ?''

''अब कैसा डर ?''

''मां।''

''हां।''

फिर वही सन्नाटा। वही सर्र सर्र करता हुआ पछिपांव, वही बरगद के पत्तों की खड़खड़ाहट–जैसे उन दोनें के भीतर बातों और भावनाओं का पछिपांव बह रहा है और शब्द कंठ में फंस–फंसकर पत्तों की तरह महज खड़खड़ाकर रह जाते हैं।

सुबह हुई। इसी तरह कई दिन बीतें, रातें बीतीं। वह पछिपांव एक क्षण के लिए भी नहीं रुक रहा था। मां और पुत्र के बीच अपरिचय का जैसे कोई पहाड़ खड़ा था। मां–बेटे दोनों जैसे उस अपरिचय के पहाड़ को तोड़ने में लगे थे, पर कहीं कोई आरपार नहीं।

विष्णुपद ने पूछा, ''मां, तुमने सब कुछ दे डाला।''

''काश, मैं सब कुछ किसीको दे पाती !''

''वह घर, वह संपत्ति, सरदार का वह परिवार.....वह पंचानन चोर.....।''

''घर–संपत्ति दे देना, क्या देना है। देना तो कुछ ही होता है।''

''पर उस चोर, उस डाकू को.....।''

''बेटे, तुम नहीं जानते–दरअस्ल कौन चोर है, कौन डाकू है।''

''वह महावीर पंडा चोर–डाकू नहीं था ?''

ब्रजरानी शून्य में देखती रही, धीरे से बोली :

''मैं भी पहले यही सोचती थी, पर जिस तरह वह मरा और मरने से पहले मुझे एक बार देखने के लिए वह मौत से उस तरह संघर्ष करता रहा, जिस तरह उसने.....।''

आगे शब्द थरथराकर कांप गए। बड़े प्रयत्न से सूत्र को फिर जोड़ते हुए कहा :

''पता नहीं, कौन क्या है, वह क्या से क्या निकल आता है, किसीको किसी एक हद में बांध देना बिल्कुल गलत है.....अन्याय है।''

मां–बेटे हर क्षण एक संग रहते। हर वक्त नहीं समझते। विष्णुपद अपनी यूरोप यात्रा और आजादी की लड़ाई की बातं करता तो मां केवल सुन कर रह जाती, उसके अनुभव का भागीदार नहीं बनती, और जैसे उन बातों के अर्थ ही समझ से बाहर हो जाते। इसीतरह मां पर जो–जो घटा हे, उसकी जो बातें हैं, दुख है, दर्द है और अब जो आनन्द है, वह पुत्र की समझ से बाहर है।

एक दिन मां ने हृदय को कठोर करके कहा :

''कोई भी संबंध, चाहे वह मां–बेटे का हो, चाहे पति–पत्नी का हो और चाहे प्रेमी–प्रेमिका का हो, उसे पूरी तरह जीकर ही प्राप्त किया जा सकता है, नहीं तो सारे बड़े से बड़े संबंध केवल झूठ हैं, छल हैं, धोखा हैं–बेमानी हैं।''

''तो मां, तुमने मुझे यहां क्यों बुलाया ?'' क्यों मुझसे मिलने के लिए इतनी बेताब थीं ?''

मां ने लम्बी सांस ली, ''मुझे नहीं पता था.....।''

''क्या ?''

''जीवन के संबंधों का रहस्य।''

उस दिन दोपहर में ही मां को नींद आ गई। झोंपड़ी में जमीन पर बिछी चटाई के ऊपर वह अस्तव्यस्त गहरी नींद में सोई पड़ी थी। बदन पर सिर्फ एक सफेद साड़ी और कुछ नहीं। विष्णुपद मां को निहारने लगा। उसके सिर के कहीं–कहीं सफेद बाल चमक रहे थे। उसके मुख का अप्रतिम सौंदर्य कहीं अब तक दमक रहा था। सहसा उसकी नजर मां की गोरी पीठ पर गई–जगह–जगह काले–काले धब्बे उभरे थे, कहीं–कहीं घावों के निशान थे। गोरी बांहों पर, पैरों में, गले और वक्ष पर चोटों के गहरे दाग।

उन दागों को छूकर विष्णुपद रो पड़ा। मां की आंखें खुल गईं। अपने तन–बदन को छिपाते हुए मां ने कहा, ''क्यों, क्या हुआ ?''

विष्णुपद निर्दोश, पर हताहत शिशु की तरह रोता रहा। तड़प कर बोला, ''बताओ, मुझे क्यों बुलाया था, नहीं तो मैं अपना सिर इसी फर्श पर पटक–पटककर तोड़ दूंगा।''

मां ने उसे अपने अंक में भर लिया।

''तुझे अपना सारा कुछ देने के लिए बुलाया था, पर वह देने से मजबूर हूं–मैं देना चाहती हूं, पर नहीं दे सकती।''

''वह क्या है ?''

''अहंकार.....उसे मैं अब किसीको नहीं दे सकती। सोचाथा, सिर्फ तुम्हें.....केवल तुम्हें दे डालूंगी और मुक्त हो जाऊंगी पर नहीं, नहीं।''

यह कहते–कहते ब्रजरानी बेहोश हो गई। विष्णुपद मां का सिर अपने अंक में लिए बैठा रहा और उसके घावों को रह–रहकर चूमता रहा।

मां को होश आया।

''मां, मेरे संग चलो।''

''नहीं, तुम जाओ।''

''क्यों मां ?''

''मेरा कोई नहीं इस संसार में।''

यह कहकर ब्रजरानी नदी की ओर चल पड़ी। सूरज के डूबने में थोड़ी–सी ही देर थी। बरगद के पेड़ पर उस समय बहुत सारे तरह–तरह के पक्षी बोल रहे थे।

मां नदी के जल में खड़ी होकर अपनी आंखों में जल के छींटे देने लगी। अंजुरी से जल पीकर बाहर आई और विष्णुपद का माथा चूमकर बोली :

''मैं यहीं नदी के तट पर अकेली चुपचाप मर जाऊंगी।''

''पर क्यों ?''

''हां, बताओ न, क्यों ?''

विष्णुपद का आवेश बढ़ता गया।

''दुःख, दर्द, यातना, पश्चात्ताप को तुम जीना चाहती हो.....इसे तुम आदर्श समझती हो, बेवकूफ रोमांटिक ईडियट।''

विष्णुपद गुस्से से थर–थर कांपने लगा।

ब्रजरानी ठहाका मारकर हंस पड़ी।

''बेटे, गुस्से से मत लड़ो, प्यार से लड़ो !.....जो मैं नहीं कर सकी। यह बात आज अंत में समझ आई।''

विष्णुपद शून्य में देखने लगा। मां की वह हंसी कान में गूंजती रही। और धीरे–धीरे उसका सारा क्रोध–आवेश शांत हो गाय। उसने मां की ओर फिर से देखा। उसके चेहरे पर अजब मुस्कान थी। विष्णुपद मां का हाथ पकड़े हुए उसे झोंपड़ी तक ले आया। भरे कंठ से बोला :

''मां, तुम अपना दुःख–दर्द, पाप–पुण्य मुझे क्यों नहीं दे देतीं ?''

''हां, यही देने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया था, पर.....।''

फिर एक सन्नाटा छा गया।

विष्णुपद ने कांपते स्वरों में कहा :

''मां, तुम्हारी सारी करुणा यही है कि तुम अपना सुख तो सब को दे देती हो, पर किसीको अपना दुख नहीं दे पातीं।''

ब्रजरानी को लगा, पुत्र ने जैसे मां के मर्म को छू लिया। ब्रजरानी मूर्तिवत चुप रह गई। पुत्र को अंक में लेकर बोली, ''मैंने चाहा था, अपने सारे पाप–पुण्य, पवित्र–अपवित्र तुम्हें दे दूं, पर पुण्य तो दे सकी, पाप नहीं दे सकती। वही अहंकार रास्ता रोके खड़ा है। सब कुछ दे देना ही तो देना होता है–अपने सारे रहस्य, सारी अनुभूतियां, पर यह इस जन्म में अब संभव नहीं है।''

रात घिर आई।

मां–बेटे ने चुपचाप भोजन किया। रात–भर दोनों जगते रहे–पर कोई खास बातचीत न हुई। सुबह होते ही मां ने कहा, ''बेटे, जाओ तुम यहां अपना समय और नष्ट मत करो।''

''तुम यहां अकेली रहोगी मां ?''

''बेटे, मैं सचमुच अकेली हूं, और अब यही मेरी शक्ति है, इसे मेरा अहंकार न मानना।''

विष्णुपद मां के कदमों में माथा झुकाकर तेजी से चला गया।

ब्रजरानी मां दूर तक उसे देखती खड़ी रह गई।

कनाट प्लेस

11

विष्णुपद चुपचाप दिल्ली के रास्ते पर था। तब से दो दिन हो गए। कहीं एक शब्द भी न बोला। लगता था जैसे किसीने उससे बोलने की सारी शक्ति छीन ली है। उसके दिल में न जाने कैसे–कैसे दर्द सवाल बनकर उठ रहे हैं। रास्ते में चारों ओर से जैसे सारे रंग उड़ गए। वह हवा, वे बादल न जाने कहां चले गए। वह सूर्य कहीं डूब गया, जो कल तक उसे अनंत रोशनी दे रहा था।

मां की उस अंतिम भेंट ने क्या कर दिया ! ज़िन्दगी की चमक, रोशनी और सौन्दर्य पर कैसा प्रश्न–चिह्न लगा दिया ? उसने आज तक धर्म–दर्शन, इतिहास, राजनीति, साहित्य आदि जो कुछ भी पढ़ा था, सब अर्थहीन लगने लगा। भारत की स्वतंत्रता के लिए उसमें जितनी चेतना थी, जितना उत्साह, वह सब जैसे बर्फ की तरह पिघलने लगा।

वह इस जलते हुए विचार से एक क्षण के लिए भी न छुट्टी पा रहा था कि वह किसी आजादी, किसी स्वतंत्रता के लिए इतना व्याकुल था ? भारत माता और उसकी माता में क्या अंतर है ? पहले मां, फिर भारत मां। उसकी मां का दुःख क्या था ? दुःख नहीं, यातना क्या थी ? वह स्वतन्त्र क्या नहीं थी अपने पुत्र के संग लौट आने के लिए ? फिर वह क्या था, जिसमें वह उस तरह जल रही थी ?

विष्णुपद को दिल्ली पहुंचते–पहुंचते एक बात यादआई–मुक्ति की बात। उसी मुक्ति शब्द को उसने अपने यहां के धर्म–ग्रन्थों में पढ़ा था। अब उसे उसका अर्थ याद आया। मां को आजादी थी, वह स्वन्त्रत भी थी, पर वह मुक्त नहीं थी। मुक्त अपने से, अपने संस्कारों से, अपने अतीत से और अपने चारों ओर के परिवेश से। उसी मुक्ति की तलाश में वह शायद सब कुछ छोड़कर उस झोंपड़ी में गई थी। वह वहां अकेली नदी–तट पर चुपचाप मर जाना चाहती है। क्यों ? इससे क्या फर्क पड़ेगा ? उसकी यातना, दर्द को कौन जानेगा ? और वह दुर्घटना क्या किसी और पर फिर नहीं घटेगी ? उसे रोकने वाला कौन है ? कहां है ?

विष्णुपद ने विदेश से भारत आकर सोचा कि वह और सक्रिय रूप से आजादी की लड़ाई लड़ेगा–महात्मा गांधी के अनुसार.....या आंतकवादियों–टेरेरिस्टों के साथ। पर आज उसे लगा, उसकी लड़ाई का यह प्रसंग अब गायब है। उसकी लड़ाई, उसका संघर्ष अब केवल उसी मुक्ति के लिए हो सकता है।

यही है उसका और उसकी मां का प्रसंग।

दिल्ली में अपने घर आकर वह कई दिनों तक मां के उसी वीरान, सन्नाटा–भरे कमरे में चुपचाप पड़ा रहा। एक दिन पिहानीवाली ताई ज़बरदस्ती उस कमरे में घुस गईं :

''क्यो, यह क्या कर रहा है ?''

''पता नहीं।''

''मैं भी इस घर में इस लायक नहीं कि तू मुझसे बात तो कर.....बता, मां से भेंट हुई ?''

''कौन मां ?''

''अरे वही ब्रजरानी.....तेरी मां..... ।''

''मां मर गई ताई जी।''

''क्या ?''

''हां, सच।''

पिहानीवाली रोने लगीं। विष्णुपद ने अजब ठंडे स्वर में कहा, ''रोकर मेरी उस मां का और अपमान ना करो ताई जी। वह बहादुर थी या नहीं, पर उसमें अकेले मर जाने का साहस तो था।''

मां के बारे में बताते–बताते विष्णुपद के मुंह से अचानक फूटा, ''अपने से बाहर की इन चीजों से मेरी मां मुक्त थी, पर उसे महज अपने से ही मुक्ति नहीं थी..... ।''

रामहल्ला के लड़के मनसुख ने जवान होकर कनाट प्लेस की एक मोटर कंपनी में छोटी–सी नौकरी कर ली थी। विष्णुपद उससे ही मिलने गया।

''मनसुख, मैं एक दैथ्नक समाचार पत्र निकालना चाहता हूं।''

''ज़रूर निकालो साहब, आपको कौन रोक सकता है ?''

''पर उसके लिए जगह ?''

''रुपये हैं क्या ?''

''हां, मां के दिए हुए रुपये हैं।''

''तो जगह की क्या कमी।''

कनाट प्लेस के पास, जंतर–मंतर के पीछे जैक्सन साहब के लंबे–चौड़े बंगले के एक 'गेराज' में वह छोटी–सी छपाई मशीन लगाई गई। मनसुख के साथ एक अनुभवी 'कम्पोजीटर' और एक मशीनमैन रखा गया। दैनिक समाचार पत्र का नाम रखा था 'नवभारत'।

चार पेजों का यह समाचार पत्र जिस दिन निकला उसी दिन कुंवर अपनी नवविवाहिता पत्नी शिवानी को लिए ढूंढते–ढूंढते उस गैराज के सामने आया।

विष्णुपद ने भाभी को प्रणाम करते हुए कहा, ''बधाई !''

और 'नवभारत' की पहली कापी पर उसने यह लिखकर 'मां की मुक्ति–कामना की स्मृति में भाभी को सादर' भेंट की।

पर उसी दिन शाम होते–होते एक अजब घटना घटी। जैक्सन साहब ने आर्डर किया 'नवभारत' उनके गैराज से नहीं निकलेगा।

जैक्सन साहब विलायती शराब के बहुत बड़े ठेकेदार थे और उस समय के 'होम सैक्रेटी' मिस्टर वैल्स के छोटे भाई थे। उन्हें नवभारत के उस पहले अंक में कुछ ऐसी जाग दिखी, जिसे वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उस अंक में विष्णुपद ने भारत में अंग्रेजी राज पर जो संपादकीय लिखा, वह पाठकों के दिल को हिला देने वाला था।

जब यह खबर कुंवर को मिली तो उसने विष्णुपद को यह सूचना भेजी कि उसे अखबार बंद कर देना चाहिए और उसके संग कारोबार में हाथ बंटाना चाहिए। अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो इसका बुरा असर कुंवर के कारोबार पर पड़ेगा।

विष्णुपद रातोंरात चुपचाप अपने प्रेस को उस गैराज से हटाकर दरियागंज ले आया–एक ऐसे मकान में, जिसे भुतहा समझकर उसके मालिक ने उसे छोड़ रखा था। पांच हजार में अगले दिन उसने वह मकान अपने नाम खरीदा और वहीं से अखबार निकालना शुरू हुआ।

विष्णुपद मनसुखा के साथ वहीं दिन–रात काम करता, वहीं खाता–पीता और वहीं रहने लगा। जब भी 'नवभारत' का कोई अंक ऐसा निकलता कि उसमें से शोले भड़कने लगते तो उसकी धमक एक ओर नीलकटरे की उस कपूर कोठी पर होती और दूसरी ओर बाराखंबा रोड पर बनी कुंवर की कोठी पर।

और जब यह आग दोनों ओर ज्यादा बढ़ी तो एक दिन मालिक हीराचन्द कपूर, कुंवर और विष्णु के बीच एक बैठक हुई। उसमें विष्णुपद ने यह लिखकर दे दिया कि उसका कपूरवालों से कोई संबंध नहीं है। वह स्वतन्त्र है और उसके हर कार्य तथा व्यवहार की जिम्मेदारी सिर्फ उसी पर है।

मुक्त होने की यह सारी कैफियत जिस दिन 'नवभारत' में छपी, उसके तीसरे दिन ही हीराचन्द कपूर को रायबहादुर का खिताब मिला। कपूर कोठी पर बहुत बड़ी दावत दी गई। दिल्ली, नई दिल्ली के सारे बड़े–बड़े लोग, अंग्रेज व्यापारी, अफसर, यहां तक कि वाइसराय के दफ्तर के सैक्रेटी लोग भी शरीक हुए।

दूसरे दिन सुबह नवभारत के अंक में हीराचन्द कपूर और कपूरवालों की तवारीख पर पूरे दो पेजों की सामग्री छपी।

कपूर कोठी में जैसे आग लग गई। हीराचन्द जी कुंवर को संग लिए दौड़े आए।

''यह क्या किया है तूने ?''

''जो आप लोगों ने किया है।''

''बोल, मैं 'नवभारत' अखबार, यह प्रेस, सब खरीद लेना चाहता हूं, तुझे मुंहमांगा दाम दूंगा।''

''आपके लिए हर चीज़ खरीद लेने का सौदा है, पर यह नवभारत नहीं है।''

''याद रख, मैं 'नवभारत' को जब्त करा दूंगा।''

''शौक से जो चाहिए कीजिए।''

अगले पांचवें दिन सचमुच 'नवभारत' के प्रकाशन पर अंगरेज हुकूमत ने पाबंदी लगा दी। फिर भी नवभारत का प्रकाशन न जाने किस पाताल लोक से बराबर होता रहा। न स्थान का पता, न छापने, बेचने वाले का पता, पर उसके अंक पाठकों के हाथों में आ जाते।

एक दिन वही पंचानन दिल्ली में विष्णुपद के सामने आ खड़ा हुआ।

''यहां कैसे ?''

''छोड़ दिया।''

''क्या ?''

''कनखल और वह सारी झंझट।''

विष्णुपद बड़े आश्चर्य से उसे देखता रहा और पंचानन खिस–खिस हंसता हुआ बताता रहा, ''साहब, मेरा धर्म तो है चोरी, मैं मालिक बनकर वहां क्या लड्डू फोड़ता ? और साहब मैंने अपनी उस गंगा से साफ–साफ बोल दिया–मैं कभी किसीसे शादी–वादी नहीं कर सकता। यह सब चक्कर है। और रही जमीन–जायदाद की बात, तो मुझे किस चीज़ की क्या कमी। अरे, सारी दुनिया तो मेरी है। सबका माल अपना। और हां साहेब, यह बात पक्की है कि गंगा मुझे अच्छी लगी, चलो मान लेता हूं कि एक मिनट के लिए उससे मेरा प्रेम हुआ। हुआ तो हुआ। उसे गठरी बांधकर क्या रखना। और जिससे परेम किया, उसीसे शादी.....राम राम राम।''

विष्णुपद ने हंसते हुए कहा, ''मतलब तुम सबको धोखा देकर भाग आए।''

''धोखा नहीं सरकार, हाथ जोड़कर विनती–''गंगा रानी, मस्त रहो.....मुझे छोड़ो।''

विष्णुपद के मुंह से एकाएक निकला, ''और मेरी मां ?''

''मां से मिला था वहां से हटने के पहले, भला यह भी कोई बात हुई, बिना मां को बताए वह कनखल का घर कैसे छोड़ता। मां ने कहा–'ठीक है, जाओ।' फिर आधी जायदाद गंगा के नाम और आधी डाकू सरदार के दोनों छोटे बच्चों के नाम.....।''

''और..... ?''

''मां.....वह ब्रजरानी मां.....वह गई, चली गई। हां, हम सब लोग दूर खड़े देख रहे थे। मां का आर्डर था कोई उनके पास न आए। वह चटपट चली गई, आधा तन नदी के पानी में आधा जमीन पर। हम लोग काफी देर बाद उनके पास गए। उनके होंठ अनंत में खुले थे.....आंखें सब कुछ देख रहीं थीं। मुंह पर अजब मुस्कान थी–जैसे वह कह रही थीं–'देखो, मैं ज़िन्दा हूं।' और साहेब, मैं क्या–क्या बताऊं.....।''

यह कहते–कहते पंचानन चुप हो गया। थरथराते होंठों को दांतों से दबाने लगा और आंसुओं की धार में जैसे वह बरबस बह गया।

थोड़ी देर बाद हंसने का प्रयत्न करने लगा। पर हार गया। तब विष्णुपद ने उसे सम्भालते हुए कहा :

''उस मां के लिए आंसू बहाना, उसका अपमान करना है।''

तभी एकाएक मनसुख भागा–भागा आया। इशारा किया–पुलिस आ रही है। पंचानन को पुलिस से क्या डर। वह झट सिर पर अंगोछा बांधकर इम्तीनान से बैठ गया।

पुलिस आई। इंस्पेक्टर कड़ककर बोला, ''बताओ, 'नवभारत' कहां से निकलता है ?''

''पता नहीं।''

''तो चलो हवालात में एक रात रहो, देखते हैं सुबह अखबार कैसे निकलता है ?''

''यही देखना है तो यहीं रहो मेरे साथ।''

''मेरी नौकरी लेना चाहते हो ?''

विष्णुपद को हंसी आ गई। वह बताने लगा, ''नवभारत निकलेगा, उसे कोई नहीं रोक सकता। यह एक विचार है, व्यक्ति नहीं।''

पुलिस बक–झककर चली गई।

अगले दिनों कहां–कहां पुलिस के छापे नहीं पड़े–कहां–कहां अंग्रेज सी०आई०डी० वाले नहीं गए, पर कहीं से उस गुप्त प्रकाशन और वितरण का पता नहीं चला।

यह रहस्यमयता 'नवभारत' को इतनी जबरदस्त लोकप्रियता देती चली गई कि दिल्ली हुकूमत को इसपर लगी पाबंदी हटा लेनी पड़ी।

सोलह जनवरी।

कुंवर और शिवानी की शादी की पहली सालगिरह।

बाराखंबा रोड का वह दोमंजिला आलीशान बंगला सजाया गया। बंगले के चारों तरफ लगे मौलश्री, इकलिप्टस, पाम, लीची, आड़ू, शहतूत, कपूर, अशोक, अमलतास, गुलमोहर के वृक्षों पर रंग–बिरंगी बत्तियों के झालर लटकाए गए।

बंगले के सामने दूब की लान के तीनों तरफ गुलाब के फूलों की क्यारियां, पोर्टिको से लेकर ऊपर की मंजिल के खम्भों तक फैली हुई चमेली, सोनजुही के फैलाव तक, पीछे आंगन की दीवारों से लेकर ऊपर खुली हुई छत तक झूमकलता, बेला और अल्मेण्डा की लतरों में भी रोशनी की एक सजावट डाली गई थी।

नीचे के बड़े ड्राइंग रूम में काकटेल का इंतज़ाम, बगल के बड़े कमरे में डांस के लिए हल्का–सा आरकेस्ट्रा। उसके पीछे डाइनिंग हाल।

अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मेहमानों से सारी जगहें गुलजार थीं। रात के करीब दस बजे विष्णुपद वहां पहुंचा। बरामदा पार कर गैलरी से बाईं ओर की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ ऊपर पहुंचा और जल्दी–जल्दी हर कमरे में झांकने लगा। कुंवर के 'बेडरूम' में देखा–लम्बी–चौड़ी शय्या की सजावट के साथ पूरे कमरे को सोहागरात जैसा स्वरूप दिया जा रहा था।

वहां नौकर–नौकरानियों के अलावा घ्ज्ञर–परिवार के किसी भी व्यक्ति को न देखकर विष्णुपद को आश्चर्य हुआ :

''पिहानीवाली ताई कहां हैं ?''

''वह नहीं आईं।''

''ताऊ जी कहां हैं ?''

''अब तक शायद आए नहीं।''

नौकरों की दो टूक बातें सुनकर वह और हैरान हुआ। नीचे आकर देखा, ताऊ हीराचन्द जी कपूर शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा पहने और सिर पर कीमती दुपल्ली टोपी लगाए और हाथ में सोने की मुठिया लगी छड़ी लिए किनारे वाले कमरे में सोफे पर चुपचाप बैठे हैं। वह कमरा आफिस और रिसेप्शनिस्ट का है। रिसेप्शनिस्ट टेलीफोन बोर्ड के सामने बैठी हुई आने और जाने वाले मेहमानों को लाइन देने–लेने में बेतरह फंसी हुई है।

''ताऊ जी, आप यहां क्यों बैठे हैं ?''

''तो कहां जाऊं ?''

ताऊ जी ने यह ऐसा उत्तर दिया कि विष्णु को समझने में देर नहीं लगी कि मालिक जी किस कदर नाराज हैं। वह इधर–उधर देखते हुए बोला :

''ताऊ जी, आइए मेरे साथ।''

''सुनो तो, इधर मेरा जाना ठीक नहीं है–उधर लोग 'थ्रीपीस सूट' पहनकर ही शरीक हो सकते हैं।''

''मगर आप इन बेहूदी बातों से.....।''

''तुम्हारा दिमाग खराब है, जाकर देखो अन्दर, वाइसराय का प्राइवेट सेक्रेट्री, सेकेण्ड सेक्रेट्री, होम सेक्रेट्री, फाइनेंस, इण्डस्ट्री.....।''

''हां, हां, देखा है, ये अंग्रेज अफसर और इनकी ये बीवियां इंग्लैंड के वे लोग हैं, जिन्हें कोई वहां दो टके में भी नहीं पूछता।.....आप कुंवर के पिता हैं, आखिर अंग्रेज मेहमान तो आपकी भी कोठी में आते थे।''

''तू समझता नहीं, मेरा वह जमाना कुछ और था.....मैं.....।''

ताऊ के कंठ में जैसे कुछ फंस गया। वह कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में चले आए।

''ताई जी वगैरह कहां हैं ? घर के सारे लोग कहां हैं ?''

''सोचने की बात है, यहां उन लोगों की क्या जरूरत। ना वे अंग्रेजी बोल सकती हैं, न शराब पी सकती हैं और न मर्दों के साथ नाच सकती हैं।''

''तो क्या आपको भी यहां नहीं आना था ?''

''क्यों नहीं। हो सकता है, दो–चार मेरे मिलने वाले भी यहां आ जाएं। मुझे कुंवर ने खास तौर पर बुलाया। वह बड़ा समझदार लड़का है। आखिर उसे एक पोजीशन बनानी है। उसने एक पोजीशन बनाई है। हमारे यहां पहले लेन–देन, जमीन–जायदाद का कारोबार होता था.....होता है, पर अब वह जमाना तेजी से बदल रहा है। इस बात को कुंवर समझता है, मुझे इस बात की खुशी है, उसका अपना नया 'बिज़नेस' है–कांटेक्ट और कांट्रेक्ट' का। हमारा बिज़नेस था गद्दी का, मुनीम और रोकड़ बही का, जबान का, एतवार और धर्म का.....कुंवर का सारा बिज़नेस नया है, अपने ढंग का है. .....। देखो न, उसके शानदार दफ्तर, स्टैनों, सेक्रेट्री, रिसेप्शनिस्ट, टेलीफोन, बैंक, चैक बुक.....। हमारी शादियां हमारे मां–बाप तै करते थे, कुंवर ने खुद अपनी पसन्द से शादी की.....क्योंकि पत्नी को अब जीवन–संगिनी की तरह पति के साथ रहना है.....मेरा मतलब.....।''

ताऊ जी अपना बायां हाथ शून्य में कंपाते हुए रह गए। उनकी निगाह गुलाब की क्यारियों में बिखरी हुई रंग–बिरंगी रोशनियों में भटकने लगी।

विष्णुपद ने बड़े आदर से कहा, ''ताऊ जी, अन्दर चलिए.....।''

ताऊ जी बस उफन पड़े, ''अन्दर क्या है ? जो–जो पार्टियां, जश्न मैंने किए हैं, तुम लोग सोच तक नहीं सकते। कैसे–कैसे मेहरबां अंग्रेज मेहमान, कैसे–कैसे दिलफरेब, शाहेतबीयत मेरे दोस्त, क्या–क्या खाने–पीने ! जाकर देखो अन्दर 'शैम्पेन' की कुल कितनी बोतलें हैं–मैं बताता हूं, चार–पांच के अलावा और ज्यादा नहीं मिलेंगी–वह भी मजबूरी है इसलिए, क्योंकि मेमें ऐसे वक्त सिर्फ शैम्पेन पीती हैं मुझसे समझो, हां। क्या मालूम है लोगों को। कुछ नहीं जानते.....न तहजीब न दयानतदारी। चार पैसे क्या कमा लिए.....उफ.....कमाल हो गया.....।''

यह कहकर ताऊ जी सीधे पोर्टिको में उतर आए। ड्राइवर तेजी से गाड़ी ले आया और ताऊ जी उसमें बैठकर चांदनी चौक चले गए।

तब तक ग्यारह बज चुके थे। खाना–पीना सब खत्म होकर अब कॉफी के दौर चल रहे थे। विष्णुपद सीधे गैलरी से भीतर आंगन की तरफ जा रहा था, तभी उसकी नजर कुंवर और शिवानी भाभी पर पड़ी। कुंवर शिवानी को संग लिए कुछ मेहमानों के बीच जा रहा था।

''हैलो विष्णु !''

''मुबारक हो भाभी जी !''

''आप कहां थे, कुछ खाया–पिया भी ?''

भाभी के इस सवाल का जब तक वह कुछ जवाब दे सके, उसके पहले ही कुंवर ने कहा, ''आओ, शिवानी अब गाना सुनाएगी।''

''इन्हें समझाइए, यह किस गाने की जिद कर रहे हैं।''

''गाना माने गाना–मेहमान अब जाने को हैं।''

''तो जाएं, मैं गाना नहीं जानती.....थोड़ा संगीत जानती हूं, बस।''

''अच्छा, थोड़ा–सा वही।''

''इन शराब पिये लोगों के लिए मेरा संगीत नहीं है।''

''क्या बेवकूफी करती हो ?''

यह कहते हुए कुंवर शिवानी के साथ मेहमान–भरे कमरे में चला गया। विष्णुपद भी कमरे में आकर खड़े–खड़े कॉफी पीने लगा।

''यस यस.....इंडियन म्यूजिक।''

चारों ओर से अंग्रेज–हिन्दुस्तानी मेहमानों की आवाजें उठने लगीं। शिवानी ने अंग्रेजी में कहा–''मैं गाना नहीं, संगीत जानती हूं।''–और कुंवर के आग्रह से वह तानपूरा लेकर शुद्ध कल्याण गाने लगी। कुछ ही क्षणों में तेजी से मेहमान जाने लगे और बाहर माइक से दरबान की आवाज गूंजने लगी :

''डी०यल०वी, व्यूक गाड़ी, डी०एल०सी० स्टूडीवेकर, डी०एल०पी० प्लाइमाउथ, डी०यल०ए० रोल्सराय, डी०..... यल०टी० फोर्ड.....।''

विलम्बित में अलाप लेकर जब वह सम पर आने लगी, एकाएक उसकी आंख खुल गई। देखा, कमरा बिल्कुल सूना है। कोई एक भी मेहमान नहीं। सिर्फ वही विष्णुपद मंत्रमुग्ध सामने बैठा था।

12

सुबह जब बुढ़िया नौकरानी तुलसी 'बेड टी' लेकर आई, तब तक शिवानी सो रही थी। तुलसी ने आवाद दी, ''बहूरानी.....।'' शिवानी की आंख खुली, पर उसके भीतर–बाहर एक अजीब–सी थकान थी। उसके पैरों में बेतरह दर्द था। वह पलंग से नीचे आकर दूर से उस उदास शय्या को निहारती रही। उसे सब कुछ मज़ाक–सा लग रहा था।

चाय पीते–पीते उसे अपनी इलाहाबाद वाली बचपन की बुढ़िया मंगला की याद आई। मंगला को कितने पुराने गाने याद थे–वह किस तरह भाव–विभोर होकर गाती थी। चौके में बिठाकर वह किस तरह शिवानी को तरह–तरह की कहानियां सुनाती थी। तब शिवानी 'जीजेस मेरी कान्वेन्ट' की आखिरी क्लास में पढ़ती थी। मंगला न जाने कहां से हिन्दी के सस्ते उपन्यास ला–लाकर देती थी। उन उपन्यासों का विषय होता था प्रेम, प्रेमी–प्रेमिकाओं के मधुर और उत्तेजनापूर्ण वर्णन। हर पेज पर चुम्बन, रुदन और आलिंगन, प्रेम के लिए किए गए कितने–कितने साहसिक कार्यों के ब्यौरे।

तब शिवानी कुल पन्द्रह वर्ष की थी। सुबह–शाम उस्ताद जी–जिन्हें वह मास्टर जी कहती थी–उसे संगीत–शिक्षा देने आते थे। अकेली जब वह सुबह ही सुबह रेयास करने बैठती थी–और जब सब कुछ भूलकर एकाएक स्वतन्त्र होकर गाने लगती थी, तब उसे अपने मानस–लोक में सुनहरे पंखों वाली छोटी–छोटी अप्सराएं और दिव्य सरोवर दिखाई पड़ते।

''और चाय ले आऊं बहूरानी, और गर्म चाय ?''

''कुंवर कहां हैं ?''

''साहब तो चले गए।''

''कहां ?''

''अपने काम पर।''

आठ बजे ही अपने काम पर। यह कौन–सा काम है ? शिवानी कंधे पर शाल रखकर पीछे बरामदे की धूप में आ बैठी। उस दिन के सारे अखबार देखने लगी। 'नवभारत' का अंक उलटते–उलटते उसे गत रात की वह घटना याद हो

आई। विष्णुपद अकेला उसका संगीत सुन रहा था। उसका वह उपहार–पीले गुलाब का एक पुष्प। उसे सहसा कान्वेन्ट के दिनों के नये साल के उपहार याद आने लगे। लड़कियां एक–दूसरे को उपहार के साथ अनेक तरह के चित्र बनाकर भी देती थीं। वे चित्र ऐसे होते थे, जो छिपाकर रखे जाते थे–उसमें कुछ चुम्बन के चित्र होते, कुछ आलिंगन के और कुछ में प्रेमिकाओं के विरह दशाओं के।

शिवानी को एकाएक किसी चिड़िया का अजब–सा संगीत सुनाई दिया। वह बरामदे–भर में इधर से उधर झांकती हुई बाहर पेड़ों में उसे ढूंढने लगी। दौड़ती हुई नीचे उतर आई। नौकर–दरबान सब पूछने लगे, उसे किस चीज़ की तलाश है। वह बाहर लान में घूमने लगी। गुलाब के फूल जैसे उससे हंस–हंसकर बातें करने लगे। उसे अचानक सब कुछ भूल गया–रात की वह घटना, रात–भर उसका जागते रह जाना, शरीर मन का सारा दर्द.....थकन.....बासीपन.....ऊब।

उसे लगा, जैसे वह अपने 'कान्वेन्ट' के गिरजाघर के लान पर घूम रही है। उसे गिरजाघर से प्रेम इसीलिए था कि उसे फूलों से प्यार था। संगीत उसे इसलिए प्रिय था कि वह सुर, ताल और राग के सहारे एक विचित्र लोक में पहुंच जाती थी। साहित्य उसे इसलिए प्रिय था कि उसमें उसकी इच्छाओं, स्वप्नों और संकल्पों को शब्द मिलते थे।

और वह दुःख–पश्चात्ताप से नफरत करती थी। तभी वह कभी गिरजाघर के अन्दर नहीं जाती थी।

''साहब का टेलीफोन आया है।'' दरबान आकर बड़े अदब से बोला।

''साहब, कौन साहब ?''

''मालिक.....।''

होंठों पर सहसा मुस्कराहट लिए शिवानी टेलीफोन के पास आई–बरामदे में।

''हैलो.....अच्छा.....तो.....नहीं तो.....अच्छा.....हां। अरे, रुको तो.....रुको ना.....।''

और हंसते हुए उसने फोन हवा में नचाकर रख दिया।

स्नान करने के बाद वह बरामदे में चुपचाप खड़ी पूजा करने लगी–ईश्वर ध्यान.....मौन प्रणाम। तानपूरा उठाया, पर मन ने जवाब दे दिया। जाकर पियानो पर अत्यन्त कोमलता से उंगलियां फेरने लगी–और सोचने लगी शादी की उस पहली रात से पूरे बीते हुए वर्ष की पिछली रात तक।

एकाएक उसे ममा की याद आई और पपा की याद। ममा कहती थीं शादी की ज़िन्दगी से बड़ी और क्या ज़िन्दगी हो सकती है। यही तो लक्ष्य है स्त्री का। पति–पत्नी को देखकर ऐसा लगे जैसे कोई दिव्य, अलौकिक चित्र देख रहे हैं।

शिवानी की उंगलियां सहसा गम्भीर और तेज चलने लगीं, पियानो पर। वह चुप मौन थी, पर जैसे उसकी नाचती हुई उंगलियां गाने लगी हों–हां, क्यों नहीं.....क्यों नहीं, मैं उस दिव्य और अलौकिक को अपने दाम्पत्य जीवन से ज़रूर प्राप्त करूंगी। जो मेरा है, वह मुझसे कौन दूर रख सकता है। कुंवर मेरा पति है, उसे समझाना, नया जीवन देना भी तो मेरा फर्ज़ है। हम दोनों लम्बी–लम्बी यात्राएं करेंगे.....समुद्र में नहाएंगे.....पहाड़ों में आवारागर्दी करेंगे.....घूमेंगे.....घूमेंगे.....नदी, नाले, जंगल, मैदान, वादियां, पठार। जो वृक्ष, जो पौधा आखिर जिस जलवायु का है, वह वहीं तो लगाया–उगाया जा सकता है। क्यों नहीं.....क्यों नहीं हम कन्या कुमारी पर खड़े होकर सूर्योदय देख सकते.....क्यों नहीं.....हम जगन्नाथपुरी के समुद्र–तट पर दौड़ते हुए लहरों के भीतर से शंख और सीपियां ज़रूर बटोर सकते हैं। खजुराहो में पूरी एक रात बिता सकते हैं। पुराने.....बहुत पुराने होटल की खिड़कियों से दोनों शहर को एक साथ देख सकते हैं। चलती हुई, नहीं–नहीं भागती हुई ट्रेन से रात के दो बजे एक साथ किसी दूर तारे को निहार सकते हैं। गांवों में जाकर उनके गीत–नाच में आनन्द ले सकते हैं.....आदिवासियों के बीच उनका रस पी सकते हैं.....।

सहसा तुलसी ने आकर कहा, ''मालिक ने फोन पर कहा है–वह लंच पर नहीं आ सकेंगे। उन्हें कहीं मीटिंग पर जाना है।''

''तो ?''

''चलो, लंच तैयार है।''

'और उसके बाद ?''

तुलसी चुपचाप चली गई। शिवानी का यह प्रश्न उसके आसपास घूमने लगा। वह प्रश्न लंच टेबुल पर उसके सामने दुम दबाए बैठा रहा।

कॉफी पीकर टाल्सटाय का वही आधा पढ़ा हुआ उपन्यास 'अनाकरेनिना' वह पढ़ने लगी। उसकी आंखें नींद से भारी होने लगीं। उसे नफरत थी दिन के वक्त सोने के लिए, पर वह वहीं सोफे पर ही सो गई।

अक्सर रात को भी कुंवर 'डिनर' पर नहीं आता था। अक्सर जब वह सो जाती, तो कुंवर धीरे से आकर पीछे से उसे अंक में बांधता हुआ उसे जगाने लगता। और जब वह जग जाती, तो और कोई बात नहीं, सिर्फ वही शरीर का खेल। कभी–कभी उसे वह शरीर का खेल व्यायाम जैसा महसूस होता, कभी वह केवल आदत।

इस तरह दिन, महीने बीत्ते चले गए। सर्दी से गरमी.....गरमी से वर्षा ऋतु और फिर वही चक्र। शिवानी को लगने लगा, वे दोनों जितना ही एक–दूसरे के करीब आ रहे हैं, उतने ही जैसे दोनों एक–दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं। नहीं–नहीं, ऐसा नहीं। दोनों के बीच एक गहरी खाई बढ़ती चली जा रही है।

एक दिन शिवानी ने मन ही मन सोचा–यह गलत है.....ऐसा नहीं होना चाहिए। यह गहरी खाई नहीं होनी चाहिए। यह अपराध है, यह अपमान है उन दोनों का।

फिर वह चाहती कि वह कुंवर से खुलकर बात करे। कुंवर से सवाल करे। दोनों एक–दूसरे से लड़ें। जैसे फूल या फूलों से लदा हुआ वृक्ष होता है और उसे पूरी तरह से झकझोरकर हिला देने से फूल और फल जमीन पर बरस पड़ते हैं, उसी तरह दोनों एक–दूसरे को झकझोरकर हिला दें। पर ऐसा कुछ नहीं होता।

कभी–कभी शिवानी संकल्प करती, कुंवर से अपने मन की बातें करने के लिए। वह उसके सामने अपने को प्रकट करने के लिए पूरी ताकत लगा देती–पर जैसे तेज हवा में बादल बिखर जाते, हवा में जैसे बनती हुई अदृश्य लहरें पकड़ में नहीं आतीं, उसी तरह शिवानी के सारे शब्द, सारे संकल्प, सारे विचार–भाव बिखर जाते।

एक बार उसने ममा को खत में लिखा–पुरुष में बहुत सारे गुण, विशेषताएं होनी चाहिएं–बड़े से बड़े मुश्किल कामों को हंसते हुए कर देना, पर उसका अहंकार न करना। उसमें प्रेम को उत्तेजित करने की कला होनी चाहिए। जीवन की सुन्दरताओं की समझ और अनुभूति होनी चाहिए। इतना ही नहीं, उसके व्यक्तिव में कहीं कोई रहस्यमयता ज़रूर होनी चाहिए। और सबसे बड़ी चीज़ या अनोखापन उसमें उदारता होनी चाहिए, जो स्त्री के लिए बहुत ही मूल्यवान है।

दूसरी बार उसने पपा को लिखा–उस पुरुष को स्त्री क्या करे जो उसे कुछ सिखा नहीं सकता। जो उससे कुछ सीख नहीं सकता। जो न उससे प्रभावित होता है, न उसे प्रभावित करता है। जो कुछ चाहता नहीं, न स्त्री में कोई चाह पैदा ही करता है। स्त्री उस पुरुष को क्या कहे, जो कभी आश्चर्यचकित नहीं होता। जो न कभी संतुष्ट होता है न असंतुष्ट। जिसमें क्रोध न हो, जो कभी कुछ भूले नहीं, याद न करे, उस पुरुष का क्या मतलब ?

दुर्गापूजन के दिन थे। पूरे बंगले में इधर–उधर सफेद फूलों की बहार आई थी। हरसिंगार के पेड़ से सुबह पुष्पों की जैसे वर्षा हो रही थी।

कुंवर को पकड़े हुए शिवानी उसके नीचे ले गई और पूछा, ''कैसा लग रहा है ?''

''क्या कैसा लग रहा है ?''

''देखते नहीं।''

यह कहकर उसने कुंवर को अपनी बांहों में बांध लेना चाहा। कुंवर छुड़ाते हुए बोला, ''क्या करती हो.....छोड़ो, मुझे कलकत्ते जाना है।''

''मुझे भी संग ले चलो !''

''बिज़नेस के सिलसिले में जा रहा हूं।''

''तो क्या हुआ, मुझे कलकत्ता के ग्रैण्ड होटल में छोड़ देना, तुम मजे से बिज़नेस करना।''

''तुम कुछ नहीं समझतीं, कित्ता 'काम्पटीशन' है मेरी 'बिज़नेस' में कितनी दौड़–धूप.....मिलना–जुलना।''

शिवानी हरसिंगार के नीचे से बाहर निकल आई और उसकी आंखों में देखकर बोली, ''वैसे हमारा यह घर, ग्रैंड होटल से किसी मानी में कम है क्या ?''

कुंवर कुछ भी नहीं समझ सका। शिवानी अपमानित होकर रह गई।

कुंवर को कलकत्ते गए कई दिन हो गए। शिवानी ने उसे कई पत्र लिखे। उन पत्रों में उसने तमाम ऐसी बातें लिखीं, जिन्हें वह कुंवर से आमने–सामने ही कहना चाहती थी। पर कुंवर की ओर से एक भी खत उसे नहीं मिला।

उन्हीं दिनों शिवानी नीलकटरे वाले ससुर के घर भी दो बार गई। वह जब भी उस कपूर हवेली में जाती, उसे महसूस होता, जैसे वह किसी किले में गई है। ऐसा किला, जिसका बाहरी फाटक सदा बंद रहता है।

उस घर में सबसे ज्यादा उसकी बातें उसकी सासु पिहानीवाली से हुई थीं। ससुर साहब से भी कुछ बातें हुई थीं और उसे लगा, कुंवर के मां–बाप भी उससे दूर हटाए गए हैं। पर इन बातों पर कुंवर ने कभी भी ध्यान नहीं दिया है।

पिहानीवाली से जब भ्झी उसकी बातें हुई हैं–धूमधाम कर उनके बीच वही ब्रजरानी की कथा और विष्णुपद का प्रसंग आया है। शिवानी ने न जाने कितने प्रश्न ब्रजरानी के बारे में किए हैं और जब भी पिहानीवाली ने उन प्रश्नों के जवाब देना चाहा है, वह थर–थर कांपती रह गई है।

यह कैसा घर है ?

ये कपूर लोग कैसे हैं ?

इनका प्रेम क्या है ?

किसे है ? कयों है ?

शिवानी जानना चाहती है।

एक दिन पिहानीवाली ने कहा, ''बहू, कोई भजन सुनाओ।''

शिवानी ने वही भजन गाया था–

''रघुवर तुमको मेरी लाज.....।'' भजन सुनने के लिए जैसे सारा कपूर परिवार घिर आया था उस आंगन में। ससुर साहब–मालिक हीराचंद कपूर भी चुपचाप वहां आ गए थे।

''कोई एक भजन और बहू।''

ससुर साहब की फरमाइश पर तब शिवानी ने न जाने किस भक्ति–भाव से गाया था–श्री रामचन्द्र कृपाल भजुमन, हरण भव भय दारुनम.....।

उस रात शिवानी को सासु–ससुर ने यहीं घर में ही रोक रखा था, जब कुंवर कलकत्ते से लौटा था।

बाराखंबा रोड से उसने टेलीफोन किया था–शिवानी के झट घर वापस आने के लिए।

खासकर ससुर साहब को बहुत बुरा लगा था कुंवर का सारा बर्ताव। वह मुट्ठियां भींचकर बोले थे :

''बड़ा लाट साहब बना है। आर्डर करता है, बहू फौरन यहां से वहां पहुंचे। खुद नहीं आ सकता लेने। मुंह पर कालिख लगी है।'' पिहानीवाली ने जलती आग में जैसे तेल छिड़का था यह कहकर, ''तुम्हींने तो ऐसा सपूत चाहा था–सोने की ईंट खड़ी करने वाला, सो चीखते क्या हो। लो, सिरहाने रखो अपना सोना।''

ससुर जी तड़पे थे, ''मैंने यह कभी नहीं चाहा।''

''कसम खाओगे ?''

''बहू के सामने तो चुप रहो।''

''बहू यहां नहीं है।''

फिर सास–ससुर में कुंवर को लेकर बड़ी बातें हुई थीं। शिवानी ने सब कुछ चुपचाप सुना था।

कुंवर का ड्राइवर कोठी के दरवाजे पर उस रात के ग्यारह बजे बार–बार हार्न बजा रहा था। ससुर साहब तड़पे थे :

''पकड़ लाओ उस बदतमीज ड्राइवर को !''

शिवानी ने तब उन्हें समझाकर शांत किया था।

उस रात जब शिवानी बाराखंबा रोड के अपने घर पहुंची, तब तक कुंवर सो चुका था। शिवानी तिलमिला कर रह गई। उसका मन हुआ कि वह कुंवर को झकझोरकर उठा दे और पूछे कि मुझे क्यों बुलाया था।

पर वह साहसहीन होकर चुपचाप पलंग पर जा बैठी। क्योंकि शिवानी को मालूम है, जैसे ही वह पलंग पर लेटेगी, कुंवर की नींद खुल जाएगी और वह अर्ध निद्रा में उसे लपेट लेगा। आधा सोया, आधा जागा, आधा होश, आधा बेहोश शरीर उसके साथ अपना सहज अधिकार, अपनी प्रकृति पूरी करना चाहेगा। इसीलिए वह पलंग पर बैठी रह गई।

थोड़ी देर बाद वह बगल के कमरे में सोफे पर लेटकर काव्य की एक पुस्तक पढ़ने लगी। सुबह चार बजे वह कुछ लिखने लगी।

हरसिंगार और सोनजुही के फूलों की खुशबू के अलग–अलग झोंके उस कमरे में आने लगे–शायद दस्तक देकर यह बताने के लिए कि सुबह हो गई।

वह पीछे बरामदे में खड़ी न जाने क्या उस उगती हुई सुबह में निहार रही थी। नौकर–चाकर सब जगने लगे थे।

पीछे से कुंवर की आवाज आई :

''अरे, तुम कहां हो ?''

शिवानी मुस्करा पड़ी।

''तुम कहां थीं, कब आईं ?''

''तुम्हें पता नहीं ?''

''भई, मैं बहुत थक गया था, बिस्तर पर जाते ही.....।''

''कलकत्ते की यात्रा कैसी रही ?''

'दो बार बिस्तर पर तुम्हें टटोला, तुम मिलीं ही नहीं।''

''दो बार–हिसाब जोड़ रखा है।''

चाय आई। दोनों पीने बैठ गए। नौकर अखबार ले आया। कुंवर अखबारों में खो गया। शिवानी उठकर जाने लगी।

''रुको, रुको, अपनी चिट्ठियों तो देखो।''

''कैसी चिट्ठियां ?''

''अरे, वही जो लिख भेजी थीं मुझे।''

कुंवर जाकर वे सारे खत ले आया और देने लगा।

''इन्हें मैं क्या करूं ?''

''देखो तो जरा।''

शिवानी अपने पत्रों को देखने लगी। इधर–उधर हाशिये पर अजीबो–गरीब रिमार्क दिए गए थे–

''वैरी रोमांटिक, फिल्मी, टू मच, लोगों के पास इतनी फुर्सत कैसे है ?.....इसका मतलब ? यह वाक्य गलत है.... ..माइंड योर ग्रामर.....'' आदि आदि।

शिवानी जैसे–जैसे अपने खत देखती गई, वैसे ही वैसे उसके भीतर कोई चीज़ मरने लगी। अंत में उसने उन खतों को फाड़ना शुरू किया।

''यह क्या करती हो ?''

शिवानी दौड़ती हुई छत पर गई और वहीं से कागजों के उन चिट्ठियों को हवा में बिखेर दिया। हवा में उड़ते हुए कागज़ के वे नन्हे–नन्हे बादल इधर–उधर कांपते हुए गिरने लगे। उसे लगा, कहीं बर्फ गिर रही है और मारे ठंड के वह कांपने लगी हो।

नीचे से कुंवर की पुकार आई, ''इधर आओ।''

''क्या है ?''

''देखो, तुम्हारे लिए मैं जापानी साड़ियां ले आया हूं।''

''मैं विदेशी कपड़े नहीं पहनती !''

''अच्छा, यह जड़ाऊ हार ले आया हूं।''

''किसके लिए ?''

''तुम्हारे लिए।''

''मुझे गहनों का शौक नहीं।''

''तो केवल प्रेमपत्र लिखने का शौक है ?''

''नहीं, अब वह भी नहीं।''

''तो फिर ?''

''कुछ नहीं।''

शिवानी भागकर अपने कमरे में चली गई। भीतर से दरवाजा बंद कर लिया।

लंच पर वह आई। उसका मुख सुर्ख था। आंखें फूली हुई, जैसे वह न जाने कितनी रातों की जगी हो। कुंवर ने कहा, ''देखो,आज मैं अपने दफ्तर भी न जा सका। जानती हो मेरा कितना नुकसान हुआ ?''

''क्यों नहीं गए ?''

''क्योंकि तुम.....।''

''क्योंकि मैं ?''

''पता नहीं तुम.....।''

शिवानी लंच टेबुल से एकाएक उठ गई। कुंवर ने उसका पीछा किया और उसके कमरे में आकर उसे आलिंगन में बांध लिया।

''आई लव यू.....आई लव यू।''

शिवानी को अंक में पीसते हुए वह वहीं पलंग पर पसर गया। उसका विश्वास था, उसे खुश करने के लिए वही एक उपाय था। शिवानी नफरत से कांपने लगी। कुंवर को यकीन था, वह प्रेम–विह्वल होकर कांप रही है। उस अपमानजनक व्यापार से वह एक बार चीखी, पर उसे लगा वह चीख भोग के आनंद की थी।

अंत में वह शिथिल होकर जड़वत चुप हो गई, तब कुंवर को गर्व का अनुभव हुआ। उसके कानों में वह कुछ फुसफुसाया। शिवानी बाथरूम में थूकने गई और वहीं बेहोश होकर गिर गई।

13

नई दिल्ली और कनाट सर्कस बिल्कुल बनकर न जाने कब तैयार हो गया था। शिवानी एक दिन अकेली घर से निकल आई थी। उसे लगा, जैसे वह आज नींद से जग आई है। अजमेरी और दिल्ली दरवाजे के बाहर से लगाकर कुतुब मीनार तक सारा नक्शा ही बदल गया है। जहां खेत, पहाड़ियां और जंगल हुआ करते थे, वहां इत्ती बड़ी–बड़ी इमारतें खड़ी हैं।

यह अंग्रेजों की दूसरी दिल्ली है–नई दिल्ली। उनकी पहली दिल्ली सिविल लाइन्स में थी–सोलहवीं दिल्ली, यह है सत्रहवीं दिल्ली। कुंवर ने बताया था–सर एडविन लिटन और हरबर्ट बेकर जैसे विख्यात टाउन योजनाकारों ने इस नई

दिल्ली को बनाया है। ये हैं मशहूर इमारतें–वाइसरीगल इस्टेट और भवन, इसके साथ सेक्रेटेरिएट के उत्तरी–दक्षिणी भाग, असेम्बली (आज का पार्लियामेंट) की विशाल गोलाकार इमारत। क्वींजवे (राजपथ) और उसके दोनों बाजू की नहरें, खुले मैदान, विशाल विजय चौक, इंडिया गेट.....।

आगे मिलिट्री बैरक्स.....द्वितीय महायुद्ध की जैसे छावनी शुरू होती है–इतने बड़े–बड़े कैम्प्स।..... गोदाम–गोला, बंदूक, तोप, टैंक्स और मिलिट्री रसद। रसद के गोदाम। लोहा.....लक्कड़, तार। भरी हुई पेट्रोल टंकियां जमीन में छिपाई जारही हैं। अंग्रेज अफसरों की जीप गाड़ियां चारों तरफ दौड़ रही हैं। फौज कवायद कर रही है। सिपाहियों की गाड़ियां भरी हुई फ्रन्ट पर जा रही हैं। घायल सिपाहियों को लादे फैजी मोटरगाड़ियां पालम की ओर से आ रही हैं.....सब अबाध गति से चल रहा है। एक ओर अंग्रेज यहां के कुछ लोगों की मदद से भारत की आजादी की लड़ाई से लोहा ले रहा है, दूसरी ओर जापान से लेकर जर्मनी और इटली तक लड़ रहा है।

शिवानी को एक दिन पता चला, वह मां बनने वाली है। उसने यह भी अनुभव किया कि कुंवर का प्रेम अब नित्य कर्म–सा नियमित हो गया है। और अब कुछ निश्चित समय पर ही उसे आलिंगन में बांधता है–विशेषकर भोजन के बाद ही ऐसा अवसर आता है।

एक दिन शाम को शिवानी जब लान में अकेली टहल रही थी, तब सहसा उसके मुंह से निकला, ''हे भगवान, मैंने शादी ही क्यों की ?''

वह धीरे–धीरे अपने से ही प्रश्न करने लगी कि क्या किसी दूसरे पुरुष से संबंध जोड़ना अधर्म है ? वह उस विचित्र, अलग, बिल्कुल अलग जीवन और उस अज्ञात पति की कल्पना करने लगी। वह विश्वास करने लगी, वह अज्ञात व्यक्ति कुंवर जैसा नहीं होगा। वह वास्तव में सुंदर, बुद्धिमान, उदार और जीवनमय होगा। वह सोचने लगी–कान्वेन्ट की उसकी सखियों ने वैसे ही पुरुषों से शादियां की होंगी–और वे जीवन के आनन्द ले रही होंगी।

ज्यों–ज्यों शिवानी का प्रसव–काल समीप आ रहा था, न जाने कहां से यह भय उसमें समाने लगा कि वह प्रसव–पीड़ा में मर जाएगी। अगर बच भी गई तो बेहद मोटी और कुरूप हो जाएगी।

बंगले में उसके साथ रहने के लिए सासु जी–पिहानीवाली आ गई थीं। विष्णुपद भी अब अक्सर आने–जाने लगा था।

एक दिन उसीने कहा, ''भाभी,, तुम कितनी सुंदर हो !''

शिवानी तब से बार–बार आइने में अपने को देखती है और अपने से पूछती है–कहां है वह मेरी सुंदरता ?

वह बोला, ''जैसे पहाड़ से एकाएक कोई झरना फूटता है न, तुम वही हो।''

शिवानी जब विष्णुपद को देखती है, तब न जाने कैसी चंचलता उसमें भर आती है। लगता है अभी उसकी शादी नहीं हुई है–वह सीनियर केम्ब्रिज में पढ़ रही है–स्कर्ट पहने कहीं दौड़ रही है।

एक दिन शिवानी ने उससे कहा, ''देखो, मैं जल्द ही मां बनने वाली हूं।''

विष्णुपद के मुंह से निकला, ''नहीं, तुम 'वर्जिन स्प्रिंग' हो।''

''क्या मतलब ?''

''पता नहीं।''

उधर कुंवर उसपर ज़रूरत से ज्यादा ध्यान देने लगा। हर तीसरे दिन लेडी डाक्टर आती 'चेक–अप' के लिए। कुंवर की इच्छा होती थी कि वह हमेशा उसके पास रहे।

एक दिन पिहानीवाली ने हंसकर कहा था :

''यह रक्त का संबंध है, तभी तो.....।''

कुंवर जब दूर से शिवानी का कंचन जैसा मुख और शिथिल शरीर देखता और जब वह चलते–चलते सहसा आराम कुर्सी या सोफे पर थककर पड़ जाती, वह दौड़कर उसे गले से लगा लेता। उसके सिर, मुंह और फूले हुए वक्ष पर धीरे–धीरे हाथ फेरने लगता और उसे बहलाने के लिए तमाम उपाय करता।

शिवानी को यह सब देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता था, और वह अकेली हंसकर रह जाती थी।

पिहानीवाली होने वाले बच्चे के लिए सारी ज़रूरी चीज़ें अपने हाथ से तैयार कर रही थीं। सिल्क के पर्दों वाला पालना बनाने के लिए जामा मस्जिद का मशहूर कारीगर आया था।

शिवानी अपनी होने वाली संतान की कल्पना करती थी–वह पुत्र होगा–पुरुष। पुरुष आजाद तो होता है, वह अपनी इच्छानुसार जहां चाहे जा सकता है। वह जीवन के ज्यादा से ज्यादा आनन्दों का भागीदार हो सकता है। पर लड़की.....स्त्री की स्वभावगत दुर्बलता और सामाजिक दासता उसे कुछ भी नहीं करने देती। उसकी इच्छाएं कच्चे धागे से बंधी रहती हैं।

इकत्तीस जनवरी के ठीक रात के बारह बजे शिवानी ने पुत्र को जन्म दिया। बच्चे को देखा, फिर न जाने क्यों बेहोश हो गई। नर्सिंग होम के डाक्टरों ने बताया–यह कमजोरी के कारण हुआ है। थोड़ी देर बाद जब उसे होश हुआ, तो आइने में वह अपना चेहरा देखती रही।

नर्सिंग होम से पूरा स्वस्थ होकर जब वह अपने घर लौटी, तो वहां उस रात बहुत बड़ी दावत दी गई। कपूर हवेली में भी ससुर साहब ने बड़ी खुशियां मनाईं। पूजा–पाठ हुए, नौकर–चाकरों को इनाम बांटे गए।

तभी उधर विष्णुपद के गिरफ्तार होने की खबर फैली। वह अपने प्रेस में आतंकवादियों का साहित्य छापते पकड़ा गया था। उस पर दूसरा अभियोग यह भी था कि उसने अपने अखबार में लिखा था–अंग्रेजों से भीख मांग कर, शांति वार्ता करके, अहिंसा और सत्याग्रह करके भारत का आजाद होना खोखला और झूठा होगा।

इन दोनों अभियोगों की वजह से उसे एक साल की कड़ी सजा मिली थी।

शिवानी ने एक दिन कुंवर से कहा, ''मैं नवभारत प्रेस जाना चाहती हूं।''

''क्यों ?''

''अखबार बंद नहीं होना चाहिए।''

''वह अखबार नहीं बकवास है।''

''मैं चाहती हूं, वह अखबार बंद न हो।''

''पागलपने की बात मत करो।''

''अच्छा, चलो, जेल में विष्णु को देख आएं।''

''मेरे पास वक्त नहीं।''

''अच्छा, मैं अकेली चली जाऊंगी।''

''क्या बकती हो !''

शिवानी को ऐसी बातों से बेहद तकलीफ होती। उसे बड़ा अपमान लगता–उसका पति कितना स्वार्थी और अनुदार है।

एक दिन सुबह ही सुबह मनसुख आया–नवभारत का ताजा अंक लिए। शिवानी को देकर बोला, ''बाबू (विष्णुपद) ने कहा है, कुछ लिखने के लिए।''

''मुझसे ? मैं लिखूं ? यह कैसे संभव है ? मैं तो बिल्कुल बेकार औरत हूं।''

मनसुख हंसकर बोला, ''आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए।''

''मगर यह सच है–मैं यह अनुभव करती हूं।''

''आप तो इतना अच्छा गाती हैं, बाबू कहते थे.....।''

''बाबू कुछ नहीं जानते.....आज डेढ़ साल से ज्यादा हो गए, मैंने कभी एक बार गुनगुनाया भी नहीं।''

''तो इससे क्या ?''

''मेरे भीतर जो था, वह मर गया।''

यह कहकर शिवानी नीचे पोर्टिको की छत पर फैली हुई सोनजुही के पुष्पों के विस्तार को देखने लगी। बुलबुल का एक जोड़ा उड़ते हुए वहां आकर बैठ गया।

वे गाने लगे।

शिवानी अगले दिन मनसुख को संग लिए हुए बाबू को दखने जेल के फाटक पर गई। अपने हाथ से 'कटलेट', 'पुडिंग' बनाकर ले गई थी–साथ ही ताजे फूलों का एक गुलदस्ता भी।

विष्णुपद को देखते ही शिवानी जैसे गद्‌गद हो गई, ''बाबू, हाउ फाइन.....वंडरफुल !''

''कितना अच्छा हुआ, तुम यहां आईं।''

''लो, यह सब मेरे सामने खाओ।''

''नहीं, वक्त क्यों बरबाद करें.....कुल सात मिलनट ही तो हैं।''

''अच्छा, बोलो क्या बात करें ?''

मनसुख एक तरफ हट गया।

शिवानी बोली, ''कैसे वक्त काटते हो ?''

''पढ़ता हूं, वक्त का पता नहीं चलता।''

''अखबार की चिंता नहीं रहती ?''

''उसकी चिंता तुम पर छोड़ दी है।''

''भला बताओ, मैं किस लायक हूं।''

यह कहकर शिवानी अजब ढंग से हंसने लगी, और उस हंसी के साथ वह सात मिनट का वक्त सहसा खत्म हो गा।

अलग होने से पहले शिवानी के दोनों हाथ हवा में कांपे, विष्णुपद ने उन्हें थामकर चूम लिया।

उस तरह जेलखाने जाकर 'बाबू' से मिलना, नवभारत के लिए कार्ल मार्क्स और लेनिन के विचारों को अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके संपादकीय पृष्ठ पर देना–कुंवर को बहुत ही बुरा लगा।

शिवानी चाहती थी–कुंवर इस घटना को लेकर उससे झगड़े–गुस्सा प्रकट करे, पर उसका मन ही मन सुलगकर रह जाना, शिवानी को असह्य लगा।

वह उस बंगले में अब और चुप रहने लगी। उसे लगता, बाबू उसके सामने खड़ा है। उसके संग–संग चलता है। यद्यपि बाबू जेल की दीवारों में बंद है और शिवानी यहां कहने के लिए मुक्त है, पर उसे दिन–रात लगता, बंगले की दीवारों–छतों पर बाबू की परछाई नाच रही है। इस बंगले में वह जब भी आकर जहां खड़ा हुआ था, बैठा था, वह वहां अब भी उपस्थित है। उसे महसूस होता, बाबू उसके सामने बैठा प्रेम की कविताएं गाकर सुना रहा है। वह उसे आलिंगन में बांधकर जैसे कह रही हो–मैं हूं–तुम्हारी हूं–केवल तुम्हारी–यह कितना गलत है–पर कितना दिव्य और पवित्र है।

शिवानी अब एक अजब तरह की मानसिक यातना से गुजरने लगी। वह चंचल होकर कनाट प्लेस के 'कोरीडोरों' में निरुद्देश्य घूमती और न जाने क्या अनाप–शनाप चीज़ें खरीद लेती।

एक दिन वह 'शैम्पेन' की चार बोतलों को बाथरूम के 'टब' में उंड़ेलकर उसमें नहाती रही–नहाती रही। बदल पर एक झीना गाउन डालकर अपने सोने के कमरे में नाचती रही।

एक दिन कुंवर बोला, ''लगता है, तुम्हारी तबियत खराब है।''

''क्यों मैं मोटी और भद्दी दिखती हूं।''

''नहीं, यह बात नहीं। तुम हमेशा जैसे कुछ सोचती रहती हो।''

''ओह, इसे तुम बीमारी मानते हो ?''

''और क्या, तुम जैसी स्त्री को इतने सोच–विचार से क्या मतलब। तुम्हें यहां किसी चीज़ की तकलीफ नहीं।''

''अगर कहूं, तकलीफ है ?''

''वही 'रोमांटिक ईडियट्स' की तकलीफ..... ?''

''नहीं, अब मैं रोमांटिक नहीं रही.....अब मैं केवल एक स्त्री हूं, और मेरी तकलीफ सिर्फ एक स्त्री की है।''

''मैं जानता हूं, मैं तुम्हें उतना वक्त नहीं दे पाता। मैं इतना व्यस्त हूं.....।''

''तुम मेरी तकलीफ का अनुमान नहीं लगा सकते।''

''मैं सब जानता हूं।''

''तुम कुछ नहीं जानते।''

जिस ऊंचे स्वर से शिवानी ने कहा, उससे दुगने ऊंचे और कड़े स्वर में कुंवर कहने लगा, ''मैं बड़ी से बड़ी इमारतें बनाता हूं–पुल और दफ्तर खड़ा करता हूं। इतना बड़ा नाम–धन कमाया। जिस किसी चीज़ में हाथ लगाया, हमेशा सफल रहा.....।''

शिवानी ने बात काटते हुए कहा, ''जब आदमी एक जगह सफल हो जाता है, फिर वह अपने–आपको दुनिया की सारी समस्याओं के हल का अधिकारी मानने लगता है–दिस इज आवर सोशल ट्रेजिडी।''

कुंवर ने आवेश में कहा, ''तुम्हारा सारा ज्ञान महज किताबी है, तुम्हें कोई अनुभव नहीं।''

''तुम्हें है वह अनुभव ?''

''क्यों ?''

''कोई एक अनुभव.....बताओ ?''

''तुम्हारी बातें भी वही किताबी हैं।''

''अच्छा बताओ, मुझे अनुभव क्यों नहीं है ? बोलो, तुमने मुझे कभी कोई अनुभव करने का मौका दिया ?''

''किस चीज़ की कमी रही है तुम्हें ?''

''सिर्फ उसी अनुभव की।''

''बकवास.....।''

शिवानी अजब तरह से हंस पड़ी, रुक–रुककर जैसे अपने–आपसे कहने लगी, ''जैसे ही चलने–फिरने–बोलने लायक हुई, स्कूल में भेज दी गई, स्कूल सेकालेज, यूनिवर्सिटी.....वही किताबें, वही शिक्षा–अच्छे नम्बरों से पास हो, सेहत का ख्याल रखो, गलत रास्ते पर पैर न रखो–ऐसे चलो.....ऐसे सोचो.....ऐसे रहो.....फिर शादी.....फिर वही पति..... उसका जीवन.....जन्म से लेकर मौत तक वही गुलामी, इसमें अनुभव की गुंजाइश कब है ? कहां है ?''

कुंवर बीच ही में एक सिगरेट दागकर वहां से उठ खड़ा हुआ था। शिवानी ने दौड़कर उसके सामने जाकर रास्ता रोक लिया।

''देखा न, हम बात भी नहीं कर सकते।''

''मेरे पास इत्ता वक्त नहीं।''

''तुम्हारे पास है ही क्या ?''

''हजारों काम हैं।''

''क्या काम ?.....बताओ क्या काम करते हो ?''

''करता हूं।''

''क्या करते हो ?''

''जिम्मेदारी.....फर्ज़.....रैस्पोंसिबिलिटी।''

''किसके प्रति ?''

''पूरे समाज..... ।''

''क्या देते हैं हम उसे ?''

''देते हैं उसे हम अपना कर्म।''

''करम महज करने की चीज़ है, देने की नहीं। सोचो, देना क्या होता है ?''

''मुझे अब यकीन हो गया, तुम्हारी तबियत खराब है, तुम्हें डाक्टर..... ।''

शिवानी ने कुंवर के मुंह पर हाथ रखकर अत्यन्त कोमल स्वरों में कहा, ''देना वही 'एक्सपीरियन्स'.....वही अनुभव होता है–अपना अत्यन्त निजी, दुःख–सुख, पाप–पुण्य..... ।''

कुंवर वहीं खड़ा रह गया। शिवानी बच्चे को अंक में लेकर बाहर धूप में चली गई।

अगले दिन शिवानी को देखने दो लेडी डाक्टर और दो डाक्टर आए। एक दिन एक अंग्रेज 'साइकियाट्रिस्ट' भी आया।

सब लोग उससे बातें करके, छू–छाकर चले गए।

एक दिन शिवानी ने कुंवर से पूछा, ''तुम्हारे डाक्टरों ने क्या बताया तुम्हें ?''

''उन्होंने आपस में मशविरा करके ये दवाइयां दी हैं।''

शिवानी ने मेज पर फैली हुई सारी दवाइयां देखीं। हंसकर कहा, ''सिर्फ पत्नियों को ही पति लोग डाक्टरों को क्यों दिखाते हैं, अपने–आपको पहले क्यों नहीं दिखाते।

''बेकार लोगों को ही डाक्टरों की ज़रूरत होती है।''

''तुम क्या बेकार नहीं हो, तुम जो इतने काम करते हो, इतने व्यस्त रहते हो, वह भी कोई काम है–वह सिर्फ अहंकार है, जो सब पर प्रकट करना चाहते हो.....पिता पर, मां पर, पत्नी पर, नौकरों पर, दोस्तों और आसपास के सभी लोगों और मिलने–जुलने वालों पर।''

एक दिन, एक मजेदार बात हुई। बंगले के आफिस की रिसेप्शनिस्ट उस दिन नहीं आई, पर शिवानी जाकर उसकी कुर्सी पर बैठ गई। टेबुल की एक ड्रार खींचकर उसने देखा–अंग्रेजी की एक किताब 'सेक्स एंड रोमांस'। तभी टेलीफोन की घंटी बजी।

''हैलो।''

''जी।''

''कुंवर को बोलना, रेनू शम को ठीक छः बजे कैनिंग रोड के उनके दफ्तर के गेस्ट रूम में पहुंच रही है। हैलो, कुंवर साहब इस वक्त कहां होंगे ?'' शिवानी ने अनुमान से कुंवर के दो टेलीफोन नम्बर दे दिए और वह चुपचाप न जाने क्या–क्या सोचने लगी।

उस शाम उसने अपने–आपको बहुत रोका, समझाया, पर उसके पैर कैनिंग रोड की तरफ बढ़ गए।

वह ठीक सवा छः बजे वहां पहुंची। पोर्टिको में कुंवर की गाड़ी खड़ी मिली। उसने आसपास देखा–चारों ओर सुनसान था। दफ्तर के ऊपर वाले गेस्ट रूम में हल्की–सी रोशनी दिख रही थी।

शिवानी पास ही एक नीम के पेड़ के पीछे खड़ी हो गई। धीरे–धीरे अंधेरा गहरा होता गया। एकाएक चौकीदार ने बरामदे और पोर्टिको की रोशनी जला दी। कुंवर उस लड़की के साथ बरामदे में उतरकर कुछ बातें करने लगा, फिर अकेले गाड़ी में बैठकर चला गया।

लड़की बाहर सड़क पर चलने लगी। शिवानी उसके पीछे–पीछे चल रही थी। एक बिन्दु पर आकर दोनों संग–संग चलने लगीं।

''हैलो.....।''

''हैलो।''

''आपको कहां जाना है ?''

''आपको ?''

''मैं यहीं पास में रहती हूं।''

यह कहकर शिवानी एकटक उस लड़की को देखने लगी।

लड़की बोली, ''मुझे गोल डाकखाने के पास जाना है।''

''बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर।''

''मुझे भी।''

दोनों चुपचाप चलने लगीं।

एकाएक शिवानी के मुंह से निकला, ''वह आदमी मजेदार है न ?''

लड़की बिल्कुल घबड़ा गई। वह फटी–फटी आंखों से देखती हुई बोली, ''आप कौन हैं ?''

''मैं भी उसकी एक.....।''

''किसकी ?''

''उसी कुंवर की।''

''ओह, हाउ वंडरफुल एंड सैड !''

लड़की ने इतमीनान से लंबी सांस ली। अपने चेहरे पर हाथ फेरकर कहा, ''चलिए कहीं चाय पीएं।''

दोनों कलाट प्लेस आकर 'गेलार्ड' में बैठ गईं। चाय आई। दोनों पीने लगीं।

''आपका नाम ?''

''रेनू मुकर्जी।''

''आपका ?''

''कमल।''

''अरे यह तो पुरुष नाम है ?''

शिवानी ने सच कहा, ''यह मेरे बचपन का नाम है। मेरे पपा–ममी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं।''

''ओह, हाउ नाइस !''

दोनों चुपचाप चाय पीती जा रही थींऔर एक–दूसरे की नजर बचाकर दोनों एक–दूसरे के चेहरे को बड़े गौर से निहार रही थीं।

रेनू के मुंह से निकला, ''आप तो कितनी सुंदर है.....कितनी स्मार्ट है.....। आपको पाकर फिर भी कुंवर.....।''

''जो पा जाता है, आदमी की दिलचस्पी उसमें खत्म हो जाती है।''

शिवानी की यह बात सुनकर रेनू चुपचाप उसे देखती रह गई। चाय खत्म कर रेनू ने कहा, ''मगर.....कुंवर ने कभी आपकी चर्चा नहीं की.....।''

''क्या वह औरों से इस तरह की चर्चा भी करते हैं ?''

''हां, ही इज वेरी आनेस्ट.....वह सबके बारे में सही–सही बता देते हैं.....ही इज वेरी वेरी इटेरेस्टिंग एंड जनरस।''

रेनू की बातें शिवानी के माथे पर जैसे हथौड़े की चोट की तरह लग रही थीं।

''आपको, आपसे पिछली औरतों के बारे में बिल्कुल नहीं बताया ?''

''यही बताया, वह शादीशुदा है।''

''ओह, तो आप उनकी वह पहली हैं।''

शिवानी का माथा झुक गया। उसके दिल–दिमाग पर जैसे कोई आग बरसाता जा रहा हो।

शिवानी ने अपने को किसी तरह सम्भालकर पूछा, ''उन्होंने अपनी पत्नी के बारे में आपसे क्या कहा ?''

''कभी कोई बुरी बात नहीं की, अक्सर उसकी तारीफ करते हैं.....उसकी खूबसूरती की, पढ़ाई–लिखाई की, उसके संगीत की.....।''

''फिर ?''

''फिर क्या ? ओह 'दैट्स द प्वाइन्ट' फिर ऐसा क्यों करते हैं ?''

यह कहकर रेनू खुलकर हंस पड़ी। शिवानी को लगा, वह बेहोश होकर वहीं गिर जाएगी।

जब वह बंगले पर लौटी, तो रात के साढ़े नौ बज चुके थे। कुंवर स्नानघर में था। बच्चा आया की गोद में खेल रहा था। शिवानी को घर में आकर महसूस हो रहा था, उससे कोई पाप हुआ है। उसे वहां, उतनी दूर तक नहीं जाना चाहिए।

उसे पपा की एक बात अचानक याद आई–इन्सानको सच की तलाश बहुत दूर तक नहीं करनी चाहिए, वरना उसे लगेगा–वह सारा जीवन अर्थहीन है। कभी–कभी वह तलाशी हुई सच्चाई खतरनाक भी हो सकती है।

कुंवर कपड़े बदलकर सामने आ खड़ा हुआ, ''कहां गई थीं ?''

''क्या बताना ज़रूरी है ?''

''बड़ी उदास लग रही हो ?''

''नहीं तो।''

शिवानी प्रसन्नता का अभिनय करने लगी। हंसकर बोली, ''मैं कल रात की गाड़ी से इलाहाबाद जा रही हूं।''

''अच्छा, एकाएक यह प्रोग्राम कैसे बन गया !''

''ऐसे तो होता है।''

''क्या ?''

''मेरी तबियत ठीक नहीं है, मैं पपा–ममी के साथ.....।''

शिवानी आगे होंठ भींचकर रह गई।

''तुम चली जाओगी तो विष्णु का वह अखबार कैसे चलेगा ?''

''अगर उसे चलना है, तो चलेगा, मैं क्या हूं उसके लिए ?''

शिवानी सामने से हट गई।

अगले दिन दोनों में कोई विशेष बातचीत न हुई। कुंवर ने उससे बात करने की कई बार कोशिश की, पर वह हां हूं.....ओह.....हां.....तो.....ऐसे.....ही कहकर रह गई।

रात को शिवानी बिल्कुल अकेली जाकर ट्रेन में बैठ गई–न 'बेबी' को संग लिया और न कोई नौकर–नौकरानी साथ गई।

यह सब अचानक ही हुआ।

इलाहाबाद में पपा–ममी उस वक्त जार्जटाउन के उस बड़े बंगले के लान पर रंगीन छाते के नीचे ग्यारह बजे वाली कॉफी पी रहे थे।

''अरे, कमल !''

ममा–पपा दोनों ने दौड़कर उसे अंक में भर लिया। शिकायतों की बौछार करने लगे–कित्ते दिन हुए न खत न खबर, हमारी चिट्ठियों के जवाब तक नहीं.....कहीं ऐसे एकाएक आया जाता है–शुक्र है, हम घर पर ही मिले.....बेबी को अपने संग क्यों नहीं लाईं ? देखो कमल, इन्सान के कुछ बुनियादी फर्ज़ होते हैं.....। सोचो कमल, अगर कर्त्तव्य का भाव.. .....।''

शिवानी ने पपा के हाथ को बिल्कुल बच्चों की तरह भींचकर कहा, ''हमेशा वही कर्त्तव्य की बातें.....क्या जीवन का आनन्द लेना, सुन्दरता की पूजा करना, रूढ़ियों और अन्यायों के विरूद्ध विद्रोह करना भी इन्सान का फर्ज़ नहीं ?''

शिवानी की इस बात ने पपा–ममी को बेतरह चौंका दिया। पिछले दो बार जब वह इलाहाबाद आई थी तो इतना ज़ाहिर था कि शिवानी और कुंवर में ज़रूर कोई अन्तर है, पर उन्हें यकीन था कि वह अन्तर धीरे–धीरे मिट जाता है.....और पति–पत्नी में एक आपसी समझ, ममता, आकर्षण ज़रूर पैदा हो जाता है.....और जब एक बच्चा अंक में आ जाता है, तब तो छोटी–मोटी समस्याएं यूं ही खत्म हो जाती हैं।

अपने उस घर में हर रोज उसके मुंह से कोई न कोई ऐसी बात सहज ही फूट पड़ती कि जिसे सुनकर पपा–ममी सहसा गम्भीर हो जाते। उन बातों के लिए कोई खास वक्त नहीं होता। वे बातें कभी भी फूट पड़तीं, चाहे वह क्षण कॉफी पीने का हो, चाहे डिनर का, चाहे बागवानी का समय हो, चाहे ममी के साथ पूजा करने या घर सजाने या पापा के संग लान पर चहलकदमी करने का हो।

शिवानी की वे बातें जैसे बंगले भर में नाचा करतीं :

''लड़की में कोई विशेषता या उसका निजी व्यक्तिव नहीं होना चाहिए।''

''संगीत, इतनी शिक्षा उसके किस काम की ? ब्याह के बाद सब कुछ तो मर जाता है–सिर्फ बाकी रह जाता है किसीतरह दिन काटने का अहसास।''

''जहां सब कुछ पुरुष के अधीन है, वहां स्त्री के अस्तिव का क्या मतलब ?''

''शादी के लिए महज एक साधारण स्त्री चाहिए, सुन्दर, मेहनती, सुशील, विनम्र और व्यक्तिवहीन.....।''

''शादी महज एक कर्मकाण्ड है–झूठ, छल, प्रपंच, धोखा।''

''दाम्पत्य जीवन में बाहर से जितना ही अच्छा, सुन्दर और आदर्शमय दिखता है, भीतर से वहां उतना ही कुरूप, बदशक्ल और पापमय, अन्यायपूर्ण होता है।''

''एक दिन दो जने बातें करते हुए जा रहे थे–स्त्री कह रही थी, अगर वह मेरा पति न होता तो मैं उसे हर सुबह–शाम आलिंगन में बांध लेती। और पुरुष कह रहा था–अगर वह मेरी पत्नी न होती तो मैं उसे जब पाता पूरी ताकत से चूम लेता।''

रात को शिवानी जब सो जाती तब ममा–पपा अपने 'बेड रूम' में जगकर कमल के बारे में बातें करने लगते। एक रात शिवानी के कानों में उनकी बातें टकराई थीं। पपा कह रहे थे–''मैंने यह नहीं समझा था कि ये व्यापारी परिवार वाले इतने असभ्य और नासमझ होते हैं। ये लोग सिर्फ धन, पैसा कमाना जानते हैं, ये क्या जानें जीवन क्या होता है–स्त्री क्या होती है.....घर–गृहस्थी के छोटे–छोटे आनन्द क्या होते हैं ?''

ममा बोली थी, ''वहां कमल की शादी करके हमने कितनी गलती की ! हमें कमल के लिए कितने अच्छे लड़के मिल रहे थे। पर सब भाग्य का खेल है।''

पपा बोले थे, ''कोई बात नहीं, कमल की इच्छा होगी तो दिल्ली जाएगी, नहीं तो वह यहीं रहेगी हमारे पास। जो होगा मैं देख लूंगा। अगर कपूरवालों के पास धन–दौलत है तो मेरे पास इज्जत है, अपना स्वाभिमान है।''

उस रात तकिये में मुंह गाड़कर शिवानी न जाने कब तक रोई थी। सुबह उठकर उसने पूजा–घर में जाकर संकल्प किया था–अब वह ऐसी कोई बात न करेगी, जिससे ममा–पपा को ज़रा भी कष्ट हो।

एक दिन शाम को कुछ मेहमान आए थे–दो नये जज, दो बैरिस्टर और कुछ अन्य लोगा–सब के साथ उनकी पत्नियां थीं। चाय–पान के बाद स्त्रियां एक तरफ बातों में लग गईं, पुरुष लोग दूसरी तरफ। देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई से लेकर अपनी–अपनी नौकरियों और दूसरों की आलोचना तक बात फैल गई। शिवानी ने पपा–ममा के कानों में जाकर कहा :

''देख लो, यही होता है–पुरुष अलग, स्त्रियां अलग।''

वे दोनों हंस पड़े। ममा ने कहा, ''कमल, चलो बेटी आज एक गीत गा दो।''

''किसके लिए ?''

''मेहमानों के लिए।''

''नहीं।''

''अच्छा, हमारे लिए।''

उस रात हारमोनियम पर शिवानी ने गाया–पीलू खम्माज, विलंबित लय, कहरवा ताल :

तुम कुछ दे जाओ
मेरे प्राणों में गोपन में.....।

गाते–गाते 'मेरे' पर म और ग को एक बार ऐसा छुआ, पपा वाह–वाह कर उठे। ममी की आंखें भर आईं आनन्द से।

शेष मेहमान यूं ही तारीफ करने लगे–कोई उसके नाम की, कोई उसके रूप की, कोई भाग्य और संगीत–शिक्षा की।

उस रात शिवानी तीन–चार साल की कमल की तरह ममा–पपा के साथ ही सो गई।

14

अंत में कुंवर खुद आया शिवानी को ले जाने के लिए। कुल बाईस दिनों वह यहां रह पाई थी।

पपा–ममा कुंवर से कुछ बातें करने का उचित अवसर ढूंढते रहते, पर कुंवर जैसे इतमीनान से कभी उनके सामने बैठना ही नहीं चाहता। हर वक्त अपनी व्यस्त्ता, अपने कामों और अपने ही बारे में चर्चा करता रहता।

चलते समय ममी के सामने पपा ने एकांत में कहा, ''याद रखना कमल, कभी अपने बारे में अगर बुरा सोचोगी, तो हमारा यहां ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाएगा।''

''पपा, ऐसा नहीं होगा.....। पर ममा, अगर मैं स्वाभाविक मृत्यु से, मतलब बीमार होकर मर गई तो..... ?''

''हट, पागल कहीं की !''

गाल पर ममा की वह हल्की–सी चपत दिल्ली तक हरी–भरी बनी रही। वहां पहुंचते ही पता चला, बाबू (विष्णुपद) जेल से बाहर आ गया है। 'नवभारत' के कई अंकों में लगातार खत्री समाज की विधवाओं पर सचित्र लेख निकाले हैं। चांदनी चौक की वेश्याओं से व्यापारी समाज के सम्बन्धों पर भी उसने तथ्य और उदाहरण देकर बड़ी तेज–तर्रार सामग्री छापी है। उस सब की गर्म चर्चाएं अब तक वहां मौजूद थीं।

बाबू से मिलते ही शिवानी ने उस शर्मनाक घटना बताया, जिसका कुचल देने वाला बोझ, अब तक उसके सिर पर थ्झा। बाबू को तनिक भी आश्चर्य न हुआ। वह बताने लगा, ''यह तो इस समाज की आम बात है। इनकी ज़िन्दगी में हर चीज़ चाहे वह स्त्री हो या पत्नी, या व्यापारहो–सब इनके लिए केवल माल है, सौदा है !''

''मेरा कितना बड़ा अपमान है।''

''यही इस घर की परम्परा है। मेरी मां को सोचो.....।''

मां का प्रसंग हाते ही विष्णुपद में न जाने कैसी बेचैनी छा जाती है। शिवानी ने ध्यान बंटाते हुए पूछा :

''अखबार में कितना घाटा हो रहा है ?''

''तुम्हारे लेखों के बारे में अक्सर पत्र आते हैं।''

''झूठ मत बोलो, बाबू।''

वे दोनों नीचे ड्राइंग रूम में बैठे थे। शिवानी ने उसके बायें कंधे पर अपना मुंह रोपकर धीरे से पूछा :

''कुंवर की यह आदत पहले से थी या शादी के बाद ? बोलो, तुम्हें मेरी कसम, सच–सच बताना पड़ेगा।''

विष्णुपद ने उसके मुख को छूकर कहा, ''मुझे कुछ नहीं पता, भूल जाओ कमल।''

''कमल.....। मेरा नाम शिवानी है.....तुम्हें मेरा यह नाम कैसे पता चला।''

''तुमने अपने सब लेखों और अनुवादों के नीचे यही कमल नाम लिखकर काट दिया था।''

उसकी, आंखें भर आईं।

''तो तुम्हें नहींपता.....कुछ भी नहीं ?''

''विदेश से आते ही मां को ढूंढने चला गया, लौटा तो देखा, कुंवर तुम्हारापति बना बैठा है।''

''तुम क्यों नहीं आए इलाहाबाद..... ?''

''कब..... ?''

''कभी भी.....।''

एक चुप्पी छा गई।

''आओ, तुम्हें एक गीत सुनाऊं।''

दौड़कर वह पियानो बजाने लगी और एक अजब जादू भरे गीत की धुन उसमें से जन्म लेकर बढ़ने लगी।

मार्च के दिन शुरू हुए थे। वह संध्या के पाच बजे का वक्त था।

आया सामने लान में बेबी को खेला रही थी। वह अब करीब डेढ़ साल का हो रहा था और चलने लगा था।

सहसा पियानो पर उंगलियां रोककर वह विमुक्त होकर गा पड़ी–बागेश्रीबहार–विलंबित मध्यलय में। उसकी आंखें नजाने किस लोक में मुंदी थीं। विष्णुपद मंत्रवत खिंचा हुआ उसके पास आ गया और उसके कंधों, बांहों को चूमने लगा।

गाते–गाते शिवानी के मुख से जैसे एक चीख निकली और उसने तड़पकर विष्णुपद को अपनी बांहों में भर लिया। उसके मुख, उसकी आंखों को पूरे मुंह से चूमने लगी।

विष्णुपद घबड़ा गया :

''भाभी.....कमल !''

''तुम पहले क्यों नहीं मिले ?''

''सुनो.....कमल !''

''तुम्हारे बिना मैं अब तक ज़िन्दा कैसे थी ?''

''मेरी कमल !''

विष्णुपद के अंक से लगकर जैसे वह चुपचाप सो गई हो। दोनों की सांसें मिलकर एक साथ चल रही थीं। यौवन–भरे उसके पवित्र सुन्दर शरीर से जैसे वही बागेश्रीबहार उमड़ रहा है।

विष्णुपद जब जाने लगा तो शिवानी ने उसका दायां हाथ पकड़कर कहा, ''मुझे यह जानना ही होगा कि कुंवर ने वह सब कब से शुरू किया।''

''सीधे पूछ क्यों नहीं लेती ?''

''इतना साहस कहां !''

''अच्छा मैं पूछ लूंगा।''

''तुममें इतना साहस.....।''

''तुम्हींने दिया है।''

''कुंवर क्या बता देगा ?''

''कोशिश करूंगा।''

पर खुद शिवानी में न जाने कहां से साहस उभरा। उसने एक दिन कुंवर से पूछा :

''एक खूबसूरत स्त्री जब बिना किसी प्रयत्न के पति को मिल जाती है, तब वह उसके प्रति इतना निश्चिंत क्यों हो जाता है ?''

''शादी के यही तो लाभ हैं।''

''क्या ?''

कुंवर के मुंह से निकला, ''पति–पत्नी एक–दूसरे के इतने करीब आ जाते हैं कि उन्हें प्रेम के अभिनय की भी ज़रूरत कभी नहीं महसूस होती।''

''करीब नहीं.....दूर..... ।''

''जो भी हो।''

कुंवर ने यह बात इतने हल्के ढंग से कही कि शिवानी उसे देखती रह गई। अपने को सम्भालकर बोली :

''तुम इतने व्यस्त क्यों रहते हो ?''

''व्यस्त, यह क्या शब्द है ?''

''बिजी।''

''ओह हो ! बिज़नेस में.....अपने कामों में।''

''मेरा काम क्या है ?''

''इसे तुम जानो।''

''यही तो मैं जान रही हूं, मुझे कोई काम ही नहीं है।''

''क्यों, नवभारत में लिखना छोड़ दिया ?''

वह एकाएक बोली, ''क्या पति–पत्नी मिलकर काम नहीं कर सकते ?''

''मतलब बिज़नेस ?''

''हां।''

''नहीं, वह पत्नी का काम नहीं।''

शिवानी के मुंह से एकाएक निकला, ''क्या पति–पत्नी प्रेम नहीं कर सकते ?''

''प्रेम के लिए फिजूल का वक्त होना चाहिए।''

''मतलब प्रेम फिजूल है ?''

कुंवर उठ खड़ा हुआ। पर शिवानी ने उसे जाने नहीं दिया। उसका हाथ पकड़कर बोली :

''मैंने तुम्हें अपना सर्वस्व दे दिया, पर तुम मुझसे संतुष्ट नहीं लगते।''

''ऐसा तुम्हें क्यों लगता है ?''

''लगता है, तुम घर से, मुझसे इतना बाहर रहते हो।''

''वह ज़रूरी है।''

''यह ज़रूरत शादी से पहले भी थी ?''

''तुम कहना क्या चाहती हो ?''

''जो कहना चाहती हूं, उसके लिए न साहस है, न शब्द है.....वह शायद तुम में भी नहीं है। शादी के बाद वह साहस क्यों मार जाता है ?''

''पता नहीं।''

कुंवर चला गया। शिवानी कांपकर रह गई।

अगले दिन वह बार–बार शाम के अंधेरे में कैनिंग रोड के उस दफ्तर के अहाते में गई। और एक दिन ठीक उसी तरह उसकी मुलाकात उसी रेनू मुखर्जी से हुई।

शिवानी ने कहा, ''तुम्हारा बड़ा अहसान होगा मुझ पर, तुम कुंवर से पूछकर बताओ कि यह काम उसने शादी के बाद शुरू किया है या उससे पहले..... ।''

रेनू ने कहा, ''कुंवर इस मामले में बड़ा ईमानदार है। वह साफ कहता है–इसकी ज़रूरत उसे शादी के बाद ही शुरू हुई है।''

''क्यों ?''

''क्योंकि सेक्स की जो भूख पत्नी जगाती है, उसेवह संतुष्ट नहीं कर पाती।''

''क्यों ?''

''पत्नी में अधिकार भाव होता है.....इससे भी ज्यादा कुंवर की पत्नी में अपने रूप, सौन्दर्य और अन्य विशेषताओं का अहंकार है।''

''ऐसा उसने कहा है ?''

''हां, बार–बार, कई तरह से।''

शिवानी मूर्तिवत चुप रह गई। वह सड़क से दूर, बहुत दूर एक गहन अंधकार को देखने लगी। रेनू ने पूछा, ''पर यह सब तुम क्यों जानना चाहती हो ?''

शिवानी पीछे मुड़कर भागती–भागती चली गई और रेनू की आंखों से ओझल होकर एक पेड़ को पकड़कर रोने लगी।

वह सीधे विष्णुपद के पास गई। सब कुछ बताने के बाद बोली, ''अब मैं कुंवर से साफ–साफ बातें करूंगी।''

''पर वह कह सकता है कि यह सब झूठ है।''

''नहीं, वह ऐसानहीं कह सकता।''

''पर क्या तुम थोड़े दिन और शांत नहीं रह सकतीं ?''

''नहीं, अब एक क्षण भी नहीं रह सकती।''

''मैं तुम्हारे साथ चलूं ?''

''तुम मेरे साथ हो न ?''

''यह भी कहने की बात है ?''

रात के साढ़े दस बजे तक कुंवर बंगले पर नहीं लौटा। शिवानी उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी। वह ठीक ग्यारह बजकर बीस मिनट पर आया।

''तुम अब तक सोई नहीं ?''

''नहीं।''

''डिनर ले लिया ?''

''नहीं, तुम ?''

''मैंने कर लिया है।''

''तुम्हें बताना चाहिए.....आखिर मैं..... !''

''हर चीज़ कहां तक कैसे बताई जाए डियर, तुम तो खामखा छोटी–छोटी चीजों के लिए बुरा मान जाती हो।''

''छोटी–छोटी चीज़ें तो ज़िन्दगी हैं।''

''तुम बहुत गुस्से में हो, बात क्या है ?''

''तुमने मुझसे शादी क्यों की ?''

अचानक ऐसे प्रश्न के लिए कुंवर कतई तैयार नहीं था। शिवानी वही प्रश्न दुहराती रही।

''तुम मुझे अच्छी लगीं, मुझे तुम्हारी ज़रूरत थी।''

''और शादी के बाद वह अच्छाई, वह ज़रूरत खत्म हो गई ?''

''नहीं तो।''

''फिर वे लड़कियां क्या हैं जो दफ्तर के गेस्ट रूम में.....।''

यह कहते–कहते शिवानी का चेहरा खाक स्याह हो गया। उसे लगा किसीने उसके मुंह पर सैकड़ों तमाचे मारे हैं। और अब उसने कुंवर के मुंह से यह सुना :

''यह झूठी है। यह तुम्हारे दिमाग का वहम है।''

तो उसे लगा वह अचानक किसी मुर्दा घर में घुस आई है–बर्फ पर रखी हुई असंख्य लाशें, जिनके बीच वह घूम रही है।

अगले कई दिनों तक न उसे भूख लगी, न नींद आई। उसे लगता–पति से उसके प्रेम का स्वप्न अब नीचे से सूखता जा रहा है। जिस प्रकार किसी स्रोत का पानी उसकी नालियों में सूखने लगता है और उसका धरातल दिखाई पड़ने लगताहै, उसी प्रकार वह अपने दाम्पत्य जीवन की कठोर सच्चाई खुली आंखों से देखने लगी है।

अब शिवानी को विश्वास नहीं हो पा रहा था कि यह वही कुंवर है, जिसे संतुष्ट रखने के लिए वह सब कुछ कर देने के लिए तैयार रही है और वह वही कुंवर है जिसने.....। जागते–सोते न जाने कहां–कहां के लोग उसके कानों में कहते–कमल.....शिवानी.....बहूरानी.....मिसेज कुंवर कितनी अच्छी जोड़ी है.....कितने सुखी हैं.....कितना प्रेम है दोनों में.....।

शिवानी यह समझ नहीं पा रही थी कि वह कुंवर को आत्म–समर्पण कर देने पर पश्चात्ताप कर रही है या नहीं। पर यह निश्चित था कि वह बेहद अपमानित अनुभव कर रही थी। उसे साफ हो गया, वह प्रेम नहीं केवल वासना की माया थी।

पर हो ही क्या सकता था और ?

धीरे–धीरे उनके जीवन ने घरेलू रूप ले लिया। जैसे आम घरों में होता है–पति–पत्नी के जीवन में कोई अदृश्य संघर्ष चल रहा है–दोनों के भीतरी रिश्ते टूट चुके हैं.....दोनों में कोई विष घुल रहा है, फिर भी दोनों अपनी–अपनी जिम्मेदारियां निभा रहे हैं–जीवन का यही घरेलू रूप, दोनों जीने लगे।

पर इसमें एक अच्छाई ज़रूर थी–अब उन्हें ज्यादा दिखावा नहीं करना पड़ता था। और छः महीने बाद वसंत ऋतु का आगमन हुआ तो उन दोनों का आचरण बिल्कुल आम पति–पत्नी–सा हो गया।

यह स्थिति कुंवर के लिए ज्यादा अनुकूल सिद्ध होने लगी–जैसे पतियों को मनोनुकूल होती ही है।

पर शिवानी के लिए यह स्थिति बड़ी ही महंगी पड़ती जा रही थी। उसके भीतर हर क्षण कुछ मरता जा रहा था–जिसकी करुण आह वह चुपचाप सुनती रहती।

काफी दिनों बाद कुंवर के कुछ दोस्तों ने मिलकर एक क्लब में 'फेमिली पार्टी' की। जिस समय सब डिनर खा रहे थे और इधर–उधर की बातों में जब पत्नियां डूबी हुई थीं, उस समय एकाएक शिवानी के मुख से निकला–'हिपोक्रेसी।''

और उसका सारा मुख इतनी कड़वाहट से भर गया कि वह दौड़कर 'टॉयलेट' में कै करने लगी। लौटकर आई तो वह सोफे पर बैठ गई।

कुंवर ने आकर कहा, ''ऐसा नहीं करना चाहिए, लोग क्या सोचेंगे ?''

''लोग क्या सोचते भी हैं ?''

''कहेंगे तो।''

''कहने से क्या होता है ?''

''तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।''

''मैं अब घर जाऊंगी।''

यह कहकर वह उठी और गाड़ी में बैठकर घर चली आई। कुंवर के दोस्तों ने, खासकर उनकी पत्नियों ने कहना शुरू किया :

''मिसेज कपूर को क्या हुआ ?''

कुंवर जब अकेले घर लौटा तो उस समय शिवानी किताब पढ़ रही थी। पास जाकर देखा तो वे सारी पुस्तकें धर्म–विरोधी थीं। कुछ तो ऐसी थीं, जिन्हें शादीशुदा स्त्रियों को, खासकर इतने बड़े घर की स्त्रियों को, तो कतई नहीं पढ़ना चाहिए। कुंवर के मन का गुस्सा एकाएक और बढ़ गया।

''पता नहीं, तुम क्या चाहती हो ?''

शिवानी ने सिर उठाकर उसे निहारा और बेहद ठंडे स्वर में बोली :

''पता नहीं तुम क्या चाहते हो ?''

''सिर्फ इतना कि हम शांति से रहें।''

''यह शांति किसने भंग की ?''

''तुमने।''

''मैंने ?''

शिवानी की आंखें कुंवर पर टिक गईं। कुंवर बोला :

''पता नहीं, तुम अपने–आपको क्या समझती हो ?''

''मुझे पता है, मैंने तुम्हें क्या समझा था। सोचाता था, कम से कम तुम झूठ नहीं बोलोगे। बताओ, कोई स्त्री किसी झूठे पुरुष के साथ.....।''

''अगर मैं कहूं कि तुम झूठी हो तो ?''

''तो कहो न, और बताओ साफ–साफ मेरा झूठ। यही तो जानने के लिए मैं तड़प रही हूं।''

''तुम हर वक्त अपने–आपको मुझे बड़ा समझती हो।''

''बड़ा समझती तो उस तरह सब कुछ तुम्हें देती क्यों ? कैसे ?''

''तुमने नहीं दिया।''

''तुमने दिया ?''

''देने का काम तुम्हारा था।''

''ओह, यह नहीं पता था.....पुरुष–पति केवल पाने के लिए बनाहै।''

''जब पत्नी देती है, तो पुरुष–पति भी देता है।''

शिवानी का कंठ भर आया, ''शुक्र है, तुम आज छः वर्षों बाद बता रहे हो, अब मैं तुम्हें सब कुछ देकर भी कुछ न दे सकी। मैं सोचती थी कि कम सेकम पति–पत्नी के बीच लेन–देन की रोकड़बही तो नहीं होती होगी, पर आज पता चला तुम्हारा दफ्तर, तुम्हारी व्यापार बुद्धि यहां भी काम कर रही है।''

एक सन्नाटा छा गया।

शिवानी रोती हुई बोली, ''काश, उस दिन तुम झूठ न बोले होते, तो शायद मैं बच जाती !''

''ऐसे में सच बोलने का साहस कहां बच रहता है ?''

''तुम इसे मानते हो ? बोलो, यह तुम्हारा अनुभव है ? या सिर्फ मेरी बात दुहरा रहे हो.....सच बोलो, मैं तुम्हें माफ कर दूंगी।''

शिवानी कुंवर के अंक से लगकर उसके वक्ष पर हाथ फेरने लगी। कुंवर ने उसे हटाते हुए कहा, ''मुझे तुम्हारी माफी की दरकार नहीं। यह चली है मुझे माफ करने। तुम नहीं जानती, क्या हूं मैं ? मेरी ताकत और पहुंच कितनी है। तुम जैसी.....।''

शिवानी ने चीखकर उसके मुंह पर हाथ रख दिया :

''बस.....बस.....बस !''

सुबह होते ही शिवानी के मन में बचपन की सारी स्मृतियां सजग हो उठीं। इतने में उसने अपने बच्चे विजय को चिल्लाते, तेज दौड़ते और हंसते हुएसुना। वह लान में किसी लड़के के संग मस्त खेल रहा था।

''तुलसी.....आया.....विजय को मेरे पास ले आओ।''

विजय पास आया।

शिवानी ने उसे अंक से जकड़ लिया। सामने करके देखा, उसके कानों के पीछे मैल की पर्त जमी है। हाथ के नाखून गंदे हैं.....।

उसे अपने हाथों से उस दिन खूब मलमल कर नहलाया। गर्म पानी में तौलिये भिगो–भिगोकर उसे पोंछती रही। यूडीकोलन और पाउडर लगाकर उसे चूमती हुई बोली :

''बेटे, तू कितना सुंदर है, है न ?''

फिर उसे नये कपड़े, नये मोजे, नये जूते पहनाए। नौकर–नौकरानियों को उसके स्वास्थ्य के बारे में तमाम हिदायें तदी। ऐसा लग रहा था, जैसे किसी लंबी यात्रा से बहुत दिनों बाद लौटकर अपने बच्चे को प्यार कर रही है।

काफी दिन बीत गए, उससे कुछ भी नहीं किया जाता। कुंवर उसके साथ अधिकार के नाम पर अथवा विश्वास पर जो करता–चाहे वह दिन हो अथवा रात, चाहे वह पलंग हो अथवा गद्देदार दीवान या लंबा–चौड़ा सोफा, शिवानी को लगता जैसे कोई 'सर्जिकल ऑपरेशन' हो रहा है।

अब विष्णुपद से मिलने में उसे अपार कष्ट होता। उसकी जैसे सारी रुचियां ही खत्म हो गई। उसकी दिलचस्पी न तो भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में रह गई न उन सारी घटनाओं में, जो उन दिनों दिल्ली शहर में घट रही थीं।

वह अखबार उठाती और उसकी नजरें पेजों से फिसलकर न जाने किस शून्य पर अटक जातीं। लगता वे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक घटनाओं और ब्यौरों से छपे अखबर के पेज न होकर निरे कोरे कागज़ हैं।

विष्णुपद के आग्रह से जब वह 'नवभारत' के लिए कुछ लिखने लगती तो उसे लगता, वे सारे शब्द, वाक्य महज स्याही के धब्बे हैं। वह कुछ अनुवाद करने लगती, तो उसे लगता, वह बिल्कुल निरक्षर अपढ़ है।

यह वह नहीं है, जो थी। जोथी, यह वह नहीं है।

विष्णुपद के लिए शिवानी की वह दशा बिल्कुल असह्य हो गई। बाहर से जहां कुछ भी नहीं दीखता, कुछ भी कोई नहीं जान सकता, वहां केवल विष्णुपद जैसे सब कुछ देख रहा है–जान रहा है।

एक दिन उसकी बातें कुंवर से सीधी हुई। उसने सब कुछ उससे साफ–साफ कह दिया कि भाभी ने क्या–क्या देखा है, और उसके कितने–कितने विश्वास टूटे हैं। इसपर कुंवर ने कहा :

''मेरा अपना जीवन है.....मेरे अपने काम हैं।''

''और भाभी का जीवन ?''

''उसकी जिम्मेदार वह खुद है।''

''आज यह कहना सरासर अन्याय है।''

''चाहे जो हो, मेरे पास इन फिजूल बातों के लिए वक्त नहीं।''

कुंवर से विष्णुपद की बातें तेजी पकड़ती जा रही थीं, तभी शिवानी बीच में आ खड़ी हुई।

सहज स्वर में बोली, ''प्लीज़, फारगेट मी।''

''भाभी, यह अन्याय है।''

''प्लीज़ !''

''मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम इस तरह चुपचाप आत्महत्या करो।''

''तुम कौन हो यह कहने वाले ?''

''भाभी !.....कमल !''

उस दिन शाम तक विष्णुपद वहीं ड्राइंग रूम में बैठा इधर–उधर की मैग्जीनें उलटता रहा। शिवानी ऊपर के कमरे से नीचे नहीं उतरी।

जब वह जाने लगा, तब कुंवर ने धीरे से कहा :

''इस औरत का दिमाग खराब है।''

''अच्छा.....।''

''मामूली जज की लड़की.....हमारे घर–परिवार, धन–दौलत, ठाठ–बाट को देखकर इसका माथा चकरा गया। इन नौकरीपेशा घर की लड़कियों को चाहिए कोई अफसर या क्लर्क पति.....।''

''फिर इनसे शादी क्यों की ?''

''की, लड़की निहायत खूबसूरत और स्मार्ट थी।''

यह कहकर कुंवर ने होंठ भींच लिए। आंखें चमकाने लगा। फिर सिगरेट दागकर पीने लगा।

विष्णुपद ने लंबी सांस लेकर कहा :

''शादी करने के पीछे आपका यह भी ख्याल रहा होगा कि लड़की बिज़नेस और हायर सर्किल में आने–जाने में मददगार होगी ?''

''जी नहीं, ऐसा मैंने कतई नहीं सोचा, यह मेरे उसूल के खिलाफ है और विश्वास के भी कि औरत पति के कामों में कोई मदद भी दे सकती है।''

''यह उसूल और विश्वास आपका नहीं, उसी कपूर परिवार का है–उसी सूरज के घर का जहां मेरी मां ब्याही गई थी। आपका न अपना कोई निजी विश्वास है न उसूल।''

यह कहते–कहते विष्णुपद उठ पड़ा और बंगले से बाहर चला गया। इसके बाद काफी दिनों तक विष्णुपद कुंवर के यहां नहीं गया। वह अक्सर शिवानी से फोन पर बातें करता और उसे समझाता–यह ज़िन्दगी इन्सान को बस एक ही बार मिलती है, इसे इस तरह व्यक्तिगत दुःख और निराशा में गंवा देना अपने प्रति सबसे बड़ा अन्याय है। चाहे अति दुःखों में जलाकर अपने को नष्ट कर दे, चाहे वह पूरा समाज, पूरा देश नष्ट हो जाए, प्रकृति को इससे कोई सरोकार नहीं। प्रकृति तो किसी न किसी तरह मानव नस्ल को ज़िंदा ही रखेगी और अगर यह नस्ल भी किसी दुर्घटनावश समाप्त हो जाए, तो वह दूसरी नस्ल तैयार कर लेगी। इस बार बन्दर से न सही तो भैंस या कुत्ते से ही सही–मेंढक से सही।

इस बात का उत्तर शिवानी टेलीफोन पर यह देती कि इस जीवन को जब आखिर समाप्त ही हो जाना है तो इसका मूल्य–महत्त्व ही क्या है ?

''तभी तो महत्त्व है, क्योंकि इसे समाप्त हो जाना है।''

''कैसा महत्त्व तब ?''

'6इसके एक–एक क्षण का महत्त्व।''

शिवानी अपने अतीत को जीने लगी–शादी से पहले और शादी के एक वर्ष तक के जीवन की स्मृतियां उसे ज़िंदा रखने के लिए काफी थीं।

कई बार पपा–ममी आए उसे अपने यहां लिवा ले जाने के लिए, पर शिवानी ने हमेशा उनसे यह कहकर क्षमा मांग ली कि शादी कर देने के बाद मां–बाप की जिम्मेदारी संतान के प्रति, खासकर लड़की के प्रति, खत्म हो जाती है। अब वह खुद जिम्मेदार है अपने प्रति, और उसे यहां ऐसी कोई तकलीफ नहीं है, जिसे कुंवारी लड़कियां तकलीफ कहती हैं।

बहुत दिनों बाद विष्णुपद बंगले पर आया शिवानी को अपने यहां ले गया। उसे अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाया। संगीत के कुछ नए रिकार्ड्स ले आया था और सुनाने और उससे संगीत समझने के लिए लिए।

अलाउद्दीन खां के दो सरोद के रिकार्ड्स बजाकर जब वह बड़े गुलाम अली की एक ठुमरी बजाने लगा, तब शिवानी ने कहा :

''बंद करो, मुझे यह सब बिल्कुल पसंद नहीं।''

''यह संगीत !''

''हां, संगीत, मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानती।''

''भाभी !''

''तुम्हारी ऐसी कोई भाभी थी क्या ?''

''थी नहीं, है।''

यह कहकर उसने शिवानी के मुख को अपने हाथों में थाम लिया और उसकी आंखों में निहारने लगा। उनमें अब आंसू भी न थे, यह सोचकर वह डर गया।

एकाएक शिवानी उससे अलग हटकर चीखी :

''नहीं, नहीं, अब मैं तुमसे भी प्रेम नहीं कर सकती।''

''क्यों ?''

कई घंटों तक शिवानी चुपचाप बैठी रही। विष्णुपद उस बीच अपने अखबार के लिए संपादकीय लिखता रहा। संपादकीय का मैटर लेकर मनसुख नीचे प्रेस में गया और फौरन वापस लौटा :

''बाबू, आपने इस मैटर को पढ़ा भी है ?''

''क्या है ?''

''आपको गांधी और जिन्ना की भेंट पर लिखना था। आपने बहूरानी पर लिख डाला है।''

''ले जाओ, मेरे लिएयही सबसे ज्यादा सच है, क्योंकि यही मेरे लिए महत्त्वपूर्ण है।''

यह सुनते ही शिवानी जैसे जग गई। उसने वह संपादकीय लेकर पढ़ना शुरू किया। फिर हंसने लगी।

''मैं इसके अलावा और कुछ नहीं लिख सकता।''

विष्णुपद की यह आवाज उसके कानों में गूंजी। वह चुपचाप संपादन विभाग में गई। वहां सिर्फ दो 'सब–एडीटर' बैठे काम कर रहे थे। मनसुख विष्णुपद को ढूंढ रहा था। वह न जाने कहां चले गए थे। शिवानी ने कहा :

''रिपोर्ट्स और वार्ता–सामग्री मुझे दो.....।''

शिवानी कल के अखबार के लिए सम्पादकीय लिखने लगी।

रात के साढ़े नौ बज चुके थे। जून के दिन थे। सारा मकान अब तक गर्मी और लू के मारे जल रहा था। नीचे प्रेस में संपादकीय के साथ अखबार छपने लगा था, तब न जाने विष्णुपद कहां से लौटा।

''जो मैंने लिखा था वह कहां है ?''

''उसे फाड़ डाला।''

''क्यों ?''

''मैं किसीसे अब कोई संबंध नहीं रखना चाहती।''

''मुझसे भी नहीं ? ऐसा क्या अपराध किया मैंने ?''

''तुमने मुझसे प्रेम किया।''

''यह अपराध है ?''

''तुम्हारे लिए नहीं, मेरे लिए।''

''क्यों ?''

''मेरे लिए अब किसीसे प्रेम करने का मतलब होगा, मेरे मरे हुए प्रेम का प्रायश्चित्त करना।''

''मैं समझा नहीं।''

''कोई ज़रूरत भी नहीं।''

''नहीं, मुझे ज़रूरत है–तुम्हें बताना होगा।''

''सुनो, तुमसे मेरा अब प्रेम करने का मतलब है, केवल उस अभाव की पूर्ति। यह उस प्रेम का अपमान है जो मेरे भीतर पैदा हुआ था.....।''

यह कहते–कहते शिवानी चुप हो गई। उसकी बड़ी–बड़ी निर्दोष आंखों में आंसू बरसने लगे।

15

विष्णुपद अपने अखबार और उससे ज्यादा अपनी राजनीतिक चेतना के कारण उससमय भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम की गतिविधियों में मानसिक रूप से बहुत ही गहराई से जुड़ गया था।

उसका विश्लेषण था कि जापान द्वारा पर्ल हार्बर पर आक्रमण, भारतीय युद्ध, नाटक का बिल्कुल नया अंक था। उधर हिटलर की सेना का रूस पर आक्रमण और लेनिनग्राड, मास्को की ओर तेजी से बढ़ते जाना इस नाटक का वह संघर्ष–बिन्दु था, जिसपर 'नवभारत' की सबसे ज्यादा दिलचस्पी थी।

विष्णुपद ने अपने संपादकीय में रूस की लड़ाई को 'पीपुल्स वार' की संज्ञा दी थी और जर्मनी, जापान, इटली की ताकतों को उसने घिनौना 'फासिस्ट' कहा था।

दिल्ली के अन्य अखबारों में 'नवभारत' का संघर्ष शुरू था, पर विष्णुपद खुश था कि यहां लोगों में फासिस्ट–विरोधी भावना ने ज़ोर पकड़ा है।

वह वह समय था जब नेहरू राजनीतिक मंच पर बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे थे और युद्ध तथा अहिंसा के प्रश्न पर गांधी से अलग हो रहे थे।

इधर तो कांग्रेस द्वितीय महायुद्ध और स्वतंत्रता–संग्राम के प्रति अपने रवैये का पुनर्निरीक्षण कर रही थी और उधर खतरे के बादल भारत पर घिरते आ रहे थे। जापानी सेनाओं ने बड़ी तेजी से हांगकांग, फिलीपीन और मलाया को

रौंद डाला और पन्द्रह फरवरी उन्नीस सौ बयालीस को सिंगापुर का मजबूत दुर्ग अंग्रेजों के हाथ से निकल गया। ब्रह्मा देश में भी ब्रिटिश फौजे पीछे हट रही थीं और भारत का पूर्वी सिंहद्वार हमलावरों के लिए खुल गया था।

इस खलबली के बीच चांगकाई शेक थोड़ी देर के लिए भारत के राजनीतिक मंच पर प्रकट हुआ। उन्होंने घोषणा की कि भारतवासियों को वास्तविक राजनीतिक शक्ति तुरंत हस्तांतरित हो जानी चाहिए जिससे कि भारतवासी आक्रमणकारी के विरूद्ध समुचित रूप से संगठित होकर युद्ध कर सकें।

विष्णुपद ने अपने अखबार में खुले शब्दों में कहा कि आजादी हस्तांतरित नहीं होती, लड़कर ली जाती है और इस लड़ाई में जनता का शामिल होना ज़रूरी है, केवल यह कुछ गिने–चुने राजनीतिज्ञों से नहीं लड़ी जाती।

मोड़ का समय मार्च उन्नीस सौ बयालीस के आरंभ में आया, जब जापानियों ने रंगून पर कब्जा कर लिया और अब उनका खतरा भारत के एकदम सिर पर आ गया।

तभी सर स्टैफर्ड क्रिप्स दिल्ली आए थे। वे वसंत के दिन थे। उनके खिलाफ दिल्ली की जनता काले झंडे दिखा रही थी, तभी विष्णुपद ने अपने अखबार में वह सामग्री छापी थी, जिसपर कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने उसका प्रेस घेर लिया था और उसके खिलाफ पोस्टर्स छापे गए थे।

विष्णुपद ने जवाब दिया था :

''इस वक्त हमें अंग्रेजों की बात स्वीकार करनी चाहिए और जर्मनी के खिलाफ उनके हाथ मजबूत करने चाहिए। रूस के जनयुद्ध में हमारा सहयोग होना चाहिए।''

पर उस समय दूसरी ओर कांग्रेसी नेता और अन्य अखबार के लोगों का विश्वास कुछ और ही था। सब सोचते थे–इस युद्ध में रूस की हार होगी। जर्मनी आगे बढ़ेगा, उधर जापान चढ़ा आ रहा है, इस सूरत में अंग्रेज खुद अपनी जान लेकर यहां से भागेंगे और भारत आजाद हो जाएगा।

दिल्ली में केवल 'नवभारत' इस विश्वास और विश्लेषण के खिलाफ था, इसलिए उसके यहां सत्याग्रही लोग आते, अखबार छापने से रोकते और उसकी प्रतियों को दिल्ली की सड़कों पर जलाते। जिस दिन 'नवभारत' के मुख पृष्ठ पर छपा कि 'इस युद्ध में रूस की विजय होगी–रूसी जनशक्ति जिन्दाबाद !' उस दिन लोग विष्णुपद को जान से मार डालने के लिए ढूंढते रहे।

अपनी हिफाजत के लिए बहुत दिनों बाद विष्णुपद शिवानी के घर गया। दोपहर का समय था। शिवानी अकेली लंच टेबुल पर बैठी थी।

''तुम इस तरह अकेली, बेबी,.....विजय कहां है ?''

''विजय अब बेबी नहीं रहा, वह अब आठ साल का हो गया और अब उसे 'दून पब्लिक स्कूल' में पढ़ने–रहने भेज दिया गया।''

''इतनी जल्दी क्या थी ?''

''पता नहीं।''

''ऐसे पब्लिक स्कूल में पढ़ाकर कुंवर उसे अपनी ही तरह साहब बनाना चाहता है।''

विष्णुपद उसके संग भोजन करने लगा।

''क्या करती रही हो इन दिनों ?''

''कुछ नहीं।''

''अखबार तो पढ़ती हो ?''

''हां, कभी–कभी।''

''हिन्दोस्तान में जो कुछ इस वक्त हो रहा है, उसमें दिलचस्पी नहीं ?''

''क्या फायदा ?''

दोनों बड़ी देर तक चुप रह गए। विष्णुपद ने पूछा :

''कुंवर कहां है ?''

''उन्हें पूरे उत्तर भारत में बागों–जंगलों में ऐसी इमारतें बनाने का डेढ़ करोड़ का कांट्रैक्ट मिला है, जहां यह अंग्रेज हुकूमत हवाई हमले से अपने को सुरक्षित रख सके।''

''ओह.....आश्चर्य !''

''कुंवर अपने पूरे स्टाफ को लेकर वहीं काम पूरा करने में लगे हैं।''

''वह घर नहीं आते ?''

''तीसरे–चौथे दिन एक रात के लिए.....।''

''तुम क्या करती हो ?''

''पति–सेवा–यही तो हिन्दू धर्म है न ?''

''मज़ाक बंद करो।''

शिवानी हंस पड़ी। और हंसते–हंसते उसका चेहरा अजब करुण हो गया। थोड़ी देर बाद बोली :

''यहां ऐसा ही होता है। मर जाने के बाद भी यहां स्त्रियों को ज़िन्दा रहना पड़ता है। तभी तो यहां घरों में इतनी शांति है.....।''

''नहीं कमल, तुम्हें कोई नहीं मार सकता, तुम कुछ भी कहो।''

''मैं अब भावना में नहीं जीती।''

''फिर कहां जीती हो ?''

''कुंवर के संसार में–जहां सब कुछ रुपयों से खरीद लिया जा सकता है।''

''यह गलत है–झूठ है।''

''यही सच है, मैं यही तो अपनी आंखों से देख रही हूं।''

विष्णुपद उदास हो गया। शिवानी उसके मनोरंजन के लिए एक प्रसंग बताने लगी :

''कुंवर का एक ड्राइवर था–मनोहर जैन। दफ्तर से दो हजार रुपये लेकर चपत हो गया। रद्दी–पुरानी चीज़ें खरीदने लगा। उन्हें ठीक–ठाक करके बेचने लगा। फायदा हुआ। उसकी हिम्मत बढ़ी। हिन्दुस्तानियों को छोड़कर अंग्रेज घर–परिवारों में जाने लगा। उनकी पुरानी चीज़ें खरीदकर हिन्दुस्तानियों के हाथ चौगुनी कीमतों पर बेचने लगा। जो चीज़ बिलकुल पुरानी होने के नाते जब कहीं न बिकती तब वह किसी बड़े अंगरेज के घर जाता और उसे भारत की प्राचीन वस्तु साबित करके सोने के भाव बेच आता। पिछले दिनों वही मनोहर सेठ, सेठ लाला मनोहर जैन जी के नाम से लंबी–चौड़ी गाड़ी में बैठकर यहां आया। कुंवर को पांच हजार देकर बोला : 'सब आपका आशीर्वाद है मालिक। आपके दो हजार लेकर भागा था, पांच हजार दे रहा हूं–सूद दर सूद के साथ मूल धन।'

''कुंवर उसे ड्राइंग रूम में ले आया और गद्‌गद स्वर में बोला, 'आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।'

''मनोहर बोला, 'मालिक, बड़ी इज्जत है मेरी, मयुनिसिपल कमिश्नर बावेल साहब मुझे म्युनिसिपल कमेटी का मेम्बर बना रहा है। अंगरेज लोग कित्ते समझदार होते हैं।'

''कुंवर के मुंह से निकला, 'हां भाई, पैसा ही तो सब कुछ है, सब कुछ इसीके अधीन है।'

''मनोहर संस्कृत में बोला, 'सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ति।'''

शिवानी कहते–कहते हंसने लगी। विष्णुपद को भी हंसी आ गई।

'6मैं इसे अखबार में छापूंगा।''

''इजाजत नहीं है।''

''किसकी ?''

शिवानी ने बात बदल दी, ''राजनीतिक खबरों के आगे इन घटनाओं को पढ़ेगा भी कौन ?''

तभी विष्णुपद की तलाश में वहां मनसुखआ पहुंचा।

''बाबू, फौरन चलिए प्रेस।''

''क्या हुआ ?''

''प्रेस को जनता घेरती चली जा रही है।''

विष्णुपद मनसुख के साथ बंगले से बाहर दौड़ा। शिवानीभी संग चल पड़ी।

दरियागंज के चौराहे से जब वे लोग दाईं ओर प्रेस की तरफ मुड़े, तभी सुनाई पड़ने लगा :

''नवभारत मुर्दाबाद ! विष्णुपद मुर्दाबाद.....संपादक जनता से माफी मांगे।'' विष्णुपद जैसे ही जन–समूह के सामने हाजिर हुआ, उनके प्रतिनिधि या लीडर ने भाषण देना शुरू किया, ''जर्मन लोग आर्यवंश के हैं। वे संसार में आर्यधर्म को फैलाना चाहते हैं.....जर्मन श्रेष्ठ लोग हैं। उनकी विजय होगी। नवभारत का यह पक्ष कि रूस महान देश है, वहां की जनता आत्तायी जर्मनों को हराएगी–झूठ है। नवभारत को यह सच्चाई छापनी होगी कि विजय जर्मनी की होगी और वही लोग भारत को आजाद कराएंगे अंगरेजों से.....।''

विष्णुपद चुप रह गया।

धीरे–धीरे लोग अपनी भावना प्रकट करके चले गए।

शिवानी आश्चर्यचकित होकर बोली, ''कितने जाहिल हैं लोग !''

''सोचो, अगर, इस मुल्क को यूं ही दान में आजादी मिल गई तो क्या होगा ?''

''क्या आजादी मिल सकती है ?''

''यही होगा, इस महायुद्ध में जर्मनी नष्ट होगा और अंगरेज इस मुल्क को आजादी के नाम पर कुछ लोगों को 'पावर ट्रांसफर' करके चले जाएंगे और हम अपनी गुलामी छिपाने के लिए न जाने कितने सालों तक बड़े–बड़े शब्द बोलेंगे, बड़े–बड़े मकान बनाएंगे और काला धन इकट्‌ठा करते रहेंगे।''

''इसकी परम्परा तो अभी से कायम है।''

''इसीका आगे विकास होगा।''

शिवानी शाम होते–होते बंगले पर लौट आई। सोचती रही, हमारा ऐसा समाज है तभी ऐसे व्यक्ति हैं। कपूरवालों का घर, उनकी सारी तवारीख उसके सामने घूम गई। कुंवर जैसे पुरुष ऐसे ही समाज में होंगे–यह बात उसके सामने स्पष्ट होने लगी। सोचते–सोचते उसे लगा कि उस महावीर पंडे और इस कुंवर में क्या अन्तर है ?.....उस ब्रजरानी और शिवानी में क्या अन्तर है ? उसे अनुभव हुआ–मुख्य है व्यवस्था, वही असलियत है और इन्सान खामखा भावुक होकर मर मिटता है व्यक्तिगत सम्बन्धों की सूली पर।

शिवानी में जैसे–जैसे यह समझ बढ़ती गई, बिलकुल एक नये ढंग से उसकी दिलचस्पी समाज और मुल्क में घटने वाली घटनाओं के प्रति बढ़ने लगी।

उसे बाबू की वह बात याद आई–ज्ञान में दुःख और सुख दोनों हैं, पर अज्ञान में केवल दुःख है–क्योंकि अज्ञान मनुष्य को केवल भावुक बनाकर छोड़ देता है।

शिवानी नित्य प्रति 'नवभारत' कार्यालय में जाकर बैठने लगी। उसके सामने उन दिनों भारत में अबाध गति से बहने वाली घटना–धारा दिखाई देने लगी। उसे अनुभव होने लगा, दुनिया केवल बाराखंबा रोड या कपूर हवेली तक ही सीमित नहीं है–वह इतनी अनंत, इतनी विशाल है कि उसमें उसके निजी दुःख, निराशा यहां तक कि जीवन–मृत्यु का भी कोई महत्त्व नहीं।

'भारत छोड़ो' 'क्विट इंडिया' का नारा। नौ अगस्त उन्नसी सौ ब्यालीस को गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के समस्त सदस्यों की गिरफ्तारी.....और वह 'फोर्टी टू मूवमेंट' अहमदाबाद, बंबई, दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता, मद्रास, जबलपुर, बंगलौर और अमृतसर.....पूरे हिन्दुस्तान में सारा काम ठप्प। चारों ओर अंगरेजी हुकूमत के खिलाफ प्रदर्शन–आंदोलन। वह स्वयं दिल्ली–भर घूमती हुई देखने लगी–विद्यार्थी, मज़दूर, दुकानदार, स्त्रियां–दल के दल राष्ट्रगीत गाते हुएसड़कों पर निकल पड़े हैं। विरोध सभाएं, पुलिस की गोलियां और गिरफ्तारी।

विद्यार्थी इस आंदोलन के सफरमैना–अगुआ थे। वे विश्वविद्यालयों से निकलकर पूरे देश में फैल गए और उन्होंने तोड़–फोड़ की कार्यवाही शुरू कर दी। जनता को उकसाया, उनमें आजादी की आग जलाई। रेल की पटरियों को उखाड़ फेंकना, यातायात के साधनों को तोड़ना, थाना, रेलवे स्टेशन, सरकारी इमारतों को जलाना शुरू हो गया। किसानों को जगाया, लगान–मालगुजारी देना बंद करो। बाद को आगजनी और बम फेंकने की घटनाएं रोजमर्रा की घटनाएं हो गईं। हिंसा ने हिंसा को जन्म दिया और पूरा देश अंगरेजी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह की आग में आ गया।

सबसे बड़ी घटनाएं बलिया, मिर्जापुर और बंगाल के मिदनापुर जिले में हुई। कई तहसीलों को आजाद करके वहां स्वतन्त्र शासन चला।

पर अंगरेजी हुकूमत ने इस सबका अत्यन्त कठोरता से दमन किया। पुलिसशाही और मार्शल ला लागू हो गया। भारत के उस समय सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के अनुसार नौ अगस्त से तीस नवम्बर तक एक हजार तीस व्यक्ति मरे और दस लाख राष्ट्रवादी बंदी बनाए गए।

शिवानी ने अनुभव किया कि हिन्दुस्तान में कितनी जीवन–शक्ति है ! इन गरीब, पिछड़े लोगों में बलिदान की कितनी शक्ति है–इतना सारा कुछ घटा, पर उसने देखा, केवल दो स्थानों पर कुछ भी न घटा–एक बाराखंबा रोड के उस बंगले में और दूसरे चांदनी चौक की उस कपूर हवेली में। इन दोनों जगहों पर इन स्थितियों से परे व्यापार होता रहा।

कुंवर ने डेढ़ करोड़ का वह ठेका पूरा कर लिया और उसके पिता हीराचन्द कपूर दमनकारी अंगरेजी हुकूमत के और सच्चे दोस्त साबित हुए।

शिवानी को तब अठारह सौ सत्तावन की वह सुनी–सुनाई कपूरवालों की तवारीख याद आई, जब उन्होंने उस समय विद्रोहियों के खिलाफ फिरंगी हुकूमत की उतनी मदद की थी। वह नफरत से भर गई–वह क्यों ऐसे परिवार में बहू बनकर आई ?

पर उसी परिवार में विष्णुपद भी तो था–शिवानी के लिए एकमात्र प्रेरणा यही सच्चाई थी कि उसके सामने विष्णुपद है।

वह दिन–रात देश में घटने वाली उन घटनाओं से अनन्त उत्साह के साथ जुड़ीथी। वह पूरे दिन 'नवभारत' कार्यालय में बैठकर समाचार बनाने और संपादकीय तैयार करने में लगी रही–शाम को जब वह अपने बंगले पर लौटती तो अक्सर कुंवर उसपर कड़ी बातों से प्रहार करता, वह अब सहज मुस्कराकर रह जाती।

उसे अब अनुभव हो गया था कि मनुष्य के सारे व्यवहार की बुनियाद क्या है.....यह समाज किन शक्तियों तथा प्रेरणाओं से चलता है।

अब वह अतीत से बाहर निकलकर केवल वर्तमान में जीने लगी और उसे अपने जीवन का एक विशेष अर्थ हाथ लगने लगा। उसे लगा, उसका जो कुछ मर गया, उसमें फिर जीवन लौटने लगा है।

उसने पपा को उन दिनों लिखा था :

''पपा, इस दुनिाय में कहीं कुछ भी नहीं मरता, सिर्फ होता यह है कि मनुष्य जब जीवन–स्रोत से अलग हो उठता है और मात्र अपने निजी जगत्, निजी दुःख–सुख, आशा–निराशा में फंस जाता है तब उसे लगता है, वह मर गया। पर जैसे ही उसकी निजी सीमा टूटती है वह फिर जीवंत जगत् का, जीवन का हिस्सा हो जाता है और उसका सब कुछ फिर जीवित हो उठता है।''

उसने उन्हीं दिनों ममा को भी लिखा था :

''ममा, जंगल में आग लगती है, तो लोग सोचते हैं कि कहीं बाहर से आग लगी है; पर जंगल में आग खुद जंगल से ही लगती है। जंगल खड़ा ही है अपने भीतर के दावानल पर। उस आग में तब सारे हरे–भरे वृक्ष जैसे स्वयं जलने लगते हैं। पर जंगल की उस आग को बुझाता कौन है ? जंगल खुद बुझाता है.....जब उसे एकाएक एक हरे वृक्ष से सामना होता है–ऐसा वृक्ष जो कह देता है–'रुको, मैं सूर्यवृक्ष हूं।' विष्णुपद मेरे लिए वही सूर्यवृक्ष है, जिसने मेरे दावानल को मेरे सामने रखकर कहा–'चाहो तो इसमें भस्म हो जाओ, चाहो तो इसकी रोशनी में नहा लो.....आंखों में रोशनी जला लो.....सब कुछ तुम्हारे ही हाथों में है।'

शिवानी के अदम्य उत्साह और नई जीवन–आशा को देखकर एक दिन विष्णुपद ने पूछा :

''अब मुझे आश्चर्य होता है कमल, तुम ज़िंदा कैसे रह गईं ?''

शिवानी ने भरी आंखों से कहा, ''वही प्रेम–भाव.....उसीने मुझे ज़िंदा रखा।''

''वह कैसे ज़िन्दा रहा ?''

''यह पता नहीं।''

''बताओ, तुम्हें पता है।''

''कैसे ?''

''जिस दिन तुम्हें उस रात उस तरह गाते हुए देखा था–मुझे लगा, तुम 'वर्जिन स्प्रिंग' हो, जो ऊपर से अदृश्य हो सकती है पर भीतर से कभी नहीं सूखती.....वह कहीं भी, युगों बाद एकाएक धरती–पहाड़ तोड़कर बह निकलेगी।''

''शायद तुम्हारे इसी 'शब्द' ने मुझे ज़िन्दा रखा।''

''तुम्हें उन लगातार छः वर्षों में देखकर मुझे लगा–तुम मेरी वही मां हो.....पंडे के हाथ निर्वासित.....दान दे दी हुई वही ब्रजरानी मां।''

वे वर्षा ऋतु के दिन थे। कई दिनों से लगातार बारिश हो रही थी। दोनों सबसे छिपकर, सबसे झूठ बोलकर, तरह–तरह के बहाने बनाकर सूनी सड़कों, दिल्ली से दूर रास्तों, मैदानों में घूमने चले जाते। भीगते हुए चलते रहते और चलते–चलते सूख जाते।

शिवानी उस दिन उस हरे–भरे मैदान में थर–थर कांपने लगी। विष्णुपद उसे अंक में बांधे एक वृक्ष की छाया तले चला गया। वृक्ष के आर–पार वर्षा की तेज बूंदे उनके ऊपर गिर रही थीं। धीरे–धीरे बारिश इतनी तेज हो गई कि दोपहर के वक्त रात जैसा अंधेरा छा गया।

दोनों एक–दूसरे के अंक में बंधे चुपचाप कांप रहे थे। दोनों मंत्रमुग्ध चुम्बन में खो जाते, फिर एक–दूसरे को देखकर ऐसे लजा जाते जैसे दोनों परस्पर कोई अजनबी हों; महज पहली बार मिल रहे हों।

शिवानी को लगा, जैसे वह जीवन में पहली बार किसी पुरुष को अपने आपमें अनुभव कर रही हो। इससे पहले किसीने उसे छुआ तक नहीं है। बाबू का वह 'वर्जिन' शब्द उसे याद आने लगा।

विष्णुपद के हाथ कुछ छूने के लिए तड़पते पर वह लाज से भर जाती।

शिवानी आंख बंद कर बोली, ''एक बात कहूं ?''

''कहो।''

''कब से कहना चाह रही हूं, पर कैसे कहूं ?''

''अच्छा, लिखकर दे दो।''

''जो कहना ही इतना मुश्किल है, उसे लिखकर कहना तो असंभव है।''

''जाने दो, कहना ही क्या ज़रूरी है ?''

''पता नहीं, उसे कहना ही चाहती हूं, वरना तुम कभी नहीं जान पाओगे। मैं खुद इससे पहले कभी नहीं जाना था। ना कहीं पढ़ा था, न किसीसे कभी सुना था.....।''

''क्या है ?''

शिवानी सारी शक्ति बटोरकर जैसे ही कहने चली, एकाएक वे शब्द भाप बनकर उड़ गए। वह अपनी पराजय छिपाने के लिए कुछ और ही बात कह पड़ी :

''उपन्यासों, काव्य–संग्रहों, साहित्य के तमाम पृष्ठों में से पढ़ा था जब चरित्रों या नायक–नायिकाओं में प्रेम हो जाता है, अथवा जब उनमें प्रेम की शुरूआत होती है, तब पहले अकेले हो जाते हैं, फिर मिलकर दो हो जाते हैं। प्रेम करते हैं, फिर उसका किसी न किसी तरह से अंत हो जाता है, क्योंकि पुस्तक का कहीं न कहीं अन्त करना होता है। यह प्रेम कहीं आनन्द देता है कहीं दुःख और करुणा पैदा करता है–कहीं संयोग, कहीं वियोग.....।''

यह बेमतलब की बात करते–करते शिवानी सहसा चुप हो गई और सूनी नजर से जमीन पर गिरती हुई वर्षा को निहारती रही।

''बाबू, तुम इतना लजाते क्यों हो ? जो तुम छूना चाहते हो, चूमना चाहते हो, करते क्यों नहीं ?''

''वह इतना पवित्र है, दिव्य है, मुझे भय लगता है, कहीं.....।''

शिवानी के मुख से एक आह निकली। उसने बाबू का दायां हाथ पकड़कर अपने वक्ष पर दबा लिया.....उसे दबाती चली गई। फिर एकाएक बोली :

''जब तुम्हें देखती हूं, तुम्हें याद करती हूं, इसमें अजीब तरह का तेज दर्द उठने लगता है। यही मैं तुमसे कहना चाह रही हूं।''

''यही ?''

''हां।''

''कमल !''

''और.....और.....और।''

शिवानी कराहती हुई उसके अंक में जैसे सो गई। उसके कांपते हुए हाथों को वह अपने हाथों से उस चरम बिन्दु पर रोक लेती, ताकि उसके हाथ कहीं खिसकें नहीं, कहीं वे ढीले न पड़ जाएं।

''और.....और.....।''

'बस.....बस.....कमल !.....कमल !''

''नहीं.....और.....और.....''

वर्षा में बेतरह भीगे हुए वे दोनों थरथर कांपने लगे। अंधेरा धीरे–धीरे छंटने लगा। बारिश कम होने लगी।

''अब चलें.....उठो।''

''नहीं.....अभी नहीं।''

यह कहकर शिवानी भूखे शिशु की तरह विष्णुपद के दोनों वक्षस्थल अपने मुंह से चूमने लगी। उन्हें दातों से धीरे–धीरे काटने लगी। अपनी जिह्वा की नोक से उनसे खेलने लगी।

''लो, इसी तरह.....इसी तरह।''

''नहीं.....नहीं.....।''

''चलो.....।''

यह कहती हुई वह मारे दर्द के कराहने लगी। विष्णुपद उसी तरह करने लगा और उसे अनुभूति होने लगी–कमल मां है.....मां.....प्रिया.....और उसकी पीड़ा वह महान् पवित्र पीड़ा है जिसका नाम है सृजन.....।

उसके वे अंग पवित्र वीणा हैं जिनके ताये उसकी आत्मा के सुर सधे हैं। उन्हें छूते ही एक स्वर्गिक संगीत बजने लगता है। इस वीणा को आज तक किसीने नहीं जाना था। उस संगीत को किसी और ने नहीं सुना था।

कुंवर के लिए वे महज वासना के अंग थे–जिनपर हाथ रखते ही वे तार या तो ढीले पड़ जाते थे, या वे तार कसाव में आकर टूट जाते थे।

शिवानी वहां से चलती हुई बोली :

''ऐसा पहले कभी नहीं हुआ.....उनके साथ कभी नहीं !''

''उनसे कभी कहा नहीं ?''

''मुझे इसका पहले स्वयं कभी पता ही नहीं था।''

''किसका ?''

''इसी दर्द का।''

''यह दर्द नहीं, संगीत है.....तुम सृजन हो कमल।''

''कमल !.....कौन कमल ? यह कौनहै ?''

''तुम.....।''

दोनों संग–संग मैदान से सड़क पर आ गए। कार में। कार दिल्ली की ओर बढ़ी, तब शिवानी ने कहा :

''मैं वह नहीं हूं जो थी.....वह बिल्कुल कोई नई स्त्री है.....मैंने इसे पहली बार देखा.....यह अद्‌भुत साहस वाली..... ।''

''मैं भी वह नहीं हूं.....तुमने मेरे भीतर से बिल्कुल एक नये पुरुष को जन्म दिया।''

कार चलने को हुई कि दोनों ने बैठे–बैठे एक–दूसरे को फिर आलिंगन में बांध लिया। कार चल पड़ी।

''धीरे–धीरे चलाओ, नहीं तो घर जल्दी आ जाएगा।''

''पर कमल,.....यह कितना 'रांग' है !''

'''रांग' ही नहीं पापा भी है.....पर यह कितना 'सबलाइम', दिव्य और पवित्र है।''

फिर दोनों बड़ी देर तक चुप रहे। एकाएक शिवानी हंस पड़ी और उसी हंसी की धार में बहती हुई बोली :

''ऐसा मेरे सात पुरखों में किसीने नहीं किया होगा, अगर ममा–पपा को पता चलेगा, तो पता नहीं उनपर क्या बीतेगी.....''

''ऐसा हमारे कपूर परिवार में भी कभी नहीं हुआ।''

''पर क्यों नहीं हुआ ?''

दोनों फिर चुप हो गए। शाम घिरती आ रही थी। दोनों के कपड़े अब तक मसमस थे और दोनों के शरीर से अजब खुशबू निकल रही थी।

शिवानी बोली, ''यह पता नहीं किस जन्म का संस्कार था। मैं जब कान्वेन्ट में पढ़ रही थी तब कल्पना करती थी एक ऐसे अज्ञात पुरुष की, जो मुझसे ही प्रेम करे। पर वह कल्पना एक पति पुरुष की थी। कहो, तम मेरे वही पति हो ?''

''हां, मैं तुम्हारा वही पति पुरुष हूं.....कहो, तुम मेरी वही पत्नी हो ?''

''मैं तुम्हारी वही पत्नी हूं।''

''पर यह कितना गलत है !''

''पर यह कितना दिव्य है.....कितना सत्य है !''

''इसका अंत कया होगा ?''

''वर्तमान का अंत नहीं होता। बोलो, तुमने इससे पहले कभी किसीसे प्रेम किया था ?''

''आज तक कभी सोचा तक नहीं था।''

''क्यों ?''

''सोचता था, हिन्दुस्तान की जो सामाजिक सच्चाई है, उसमें ऐसा प्रेम संभव ही नहीं है।''

''क्यों ?''

''यहां शादी से पहले लड़की–लड़के का एक–दूसरे के सामने आना ही नहीं होता। दोनों के जीवन बिल्कुल अलग–अलग होते हैं–घर–परिवार के किले में, पंरपरा के संस्कारों में सुरक्षित और कैद। और सहसा दोनों पति–पत्नी के रूप में, पहली बार आमने–सामने होते हैं। दो अपरिचित.....काल्पनिक परिचय की चरम सीमा पर मिलते हैं और दोनों में केवल एक ही भाव काम करता है–यह मेरी है, यह मेरा है। पर वे हैं क्या.....इसकी तलाश कभी नहीं हो पाती। एक अनन्त अपरिचय का अनंत परिचय धर्म बनकर उनके गले में लटक जाता है और उसीमें केवल शरीर–धर्म, अधिकार–धर्म अंधे की तरह काम करने लगता है। यहां घर–परिवारों में न कोई स्त्री है न कोई पुरुष, सब पति–पत्नियां हैं.....सब केवल मां–बाप हैं.....भाई–बहन हें और सब अपने–अपने अधिकारों, जिम्मेदारियों की परिधि में घूमते हैं.....घूमते रहते हैं।''

यह कहते–कहते विष्णुपद ने देखा, गाड़ी सड़क के बिल्कुल बीचोंबीच खड़ी है और शिवानी आंख मूंदे न जाने किस लोक में खो गई है।

''कमल !''

''चुप क्यों हो गए ?''

''आओ, अब तुम गाड़ी चलाओ।''

''क्यों ?''

''अब प्रश्न मत करो।''

शिवानी गाड़ी चलाने लगी। कुतुबमीनार के पास से जब सड़क दिल्ली की ओर घूमी, तो उसे लगा वह स्वयं कार नहीं चला रही है, कार और सड़क उसे चला रही हैं।

''हम कहां जा रहे हैं बाबू ?''

''घर।''

''कैसा ? कौन–सा घर ?''

दोनों फिर चुप हो गए।

''कुछ बात करो कमल। ताकि मैं तुम्हें हर क्षण महसूस करता रहूं।''

''ऐसी बातें कहां हैं मेरे पास। मेरे पास तो वही बातें हैं, जो मैं नहीं हूं। और जो हूं, उसकी तो अभी शुरूआत हुई है। मैं अब 'पास्ट' की बातें नहीं करना चाहती।''

''मेरी प्रिया !''

यह कहकर विष्णुपद ने उसका चरण छू लिया।

''यह क्या करते हो ?''

''पता नहीं।''

''पता किसीको कुछ नहीं रहता–और एकाएक जब अपना पता चल जाता है तो विश्वास नहीं होता कि वह मैं हूं। तुमने मेरे भीतर जिस स्त्री को जन्म दिया, उसे अब कौन सम्भालेगा। उसका नाम क्या होगा ? उसका धर्म क्या होगा ? मैं पपा–ममी की एक कमल थी। कुंवर की धर्मपत्नी थी, विजय की मां थी.....यह स्त्री क्या है ? कौन है ?''

''यही तुम थीं।''

''मैं थी वह ? नहीं–नहीं.....। मैं यह नहीं थी। मैं तो एक निश्चित स्त्री थी, जिसका सब कुछ पहले से ही तै था। अब मैं वह नहीं हूं।''

''मैं भी वह नहीं हूं।''

''इस नये को कौन स्वीकार करेगा ?''

''सिर्फ हम.....केवल हम.....।''

ठीक साढ़े सात बजे उनकी कार बाराखंबा रोड के करीब आ पहुंची। शिवानी ने शिशुवत् पूछा :

''बोलो, अब कहां जाना होगा ?''

''घर.....।''

''किसके ?''

यह प्रश्न करके शिवानी कार के स्टीयरिंग पर माथा रखकर गाने लगी। अचानक पास ही एक भयानक धमाका हुआ। किसीकी दौड़ती हुई कार पर बम फेंका गया था। जलती हुई कार के भीतर से विष्णुपद ने उस अंगरेज को खींचकर बाहर निकाल लिया, और उसे कार में रख विलिंगडन अस्पताल की ओर भागा।

16

सुबह सारे अखबार में छपा–''इंस्पेक्टर–जनरल पुलिस जॉन मैकेंजी की कार पर बम फेंका गया। घायल जॉन मैकेंजी अस्पताल में।''

''विष्णुपद पुलिस हिरासत में।''

''बताओ वह बम फेंकने वाला कौन था ?''

''मैंने उसे नहीं देखा।''

''तुम्हारे साथऔर कौन था ?''

''मेरी भाभी.....मिसेज कुंवर कपूर।''

''यह कुंवर कपूर कौन है ?''

''कांट्रैक्टर.....।''

सवाल करने वाला वह अंगरेज एस०पी० कुंवर कपूर का इतना परिचय सुनते ही बोला :

''सो यू आर जैण्टिलमैंन। माफ कीजिए, पुलिस ने आपको हिरासत में रखा।''

''मैं हैरान हूं, आपकी पुलिस को इतनी भी अक्ल नहीं कि मैंने जॉन मैकेंजी की जान बचा ली और उल्टे मुझे हिरासत में रखा गया।''

''वी आर एक्स्ट्रीमली सॉरी, हमें आप माफ कीजिए। और आपसे हमारी विनती है कि इस बात को आप आई०जी० साहब से मत बताइए, वरना हम बर्खास्त हो जाएगा। किसीको पता नहीं था, आप कुंवर कपूर के भाई और 'नवभारत' के एडीटर साहब हैं।''

''अच्छा, अगर मैं कोई आम आदमी होता तो मेरे साथ क्या सलूक होता ?''

''यह कहना मुश्किल है.....मगर होता.....बहुत कुछ होता।''

''मसलन ?''

''यही कि दिल्ली में जन लोगों पर हमें सुबहा है, हम उस आदमी से उनके नाम निकलवाकर उन्हें झट से गिरफ्तार कर लेते और जेल में डालकर उन्हें गोली से उड़ा देते–कह देते कि ये लोग जेल की दीवार लांघकर भागने की कोशिश कर रहे थे।''

''ओह, इतना झूठ.....इतना अन्याय !''

''देखिए मिस्टर विष्णुपद, यह सब तो हमें करना ही पड़ता है। और इस वक्त भी हमें कुछ न कुछ ऐसा करना ही पड़ेगा–आखिर हमारे आई०जी० पुलिस पर बम फेंका जाना कोई मामूली वारदात तो नहीं। हमें हुकूमत ही नहीं चलानी है, बल्कि आजादी की इस बेबुनियाद लड़ाई–इस 'फ्रीडम स्ट्रगल' को, इस 'सोकाल्ड रिवोल्यूशन' को हमेशा के लिए कुचल देना है।''

विष्णुपद को उस अंगरेज पुलिस अफसर की बातें, और खास कर उसकी बातें करने के ढंग पर आश्चर्य हो रहा था।

''आप तो राष्ट्रवादी नहीं हैं ? अफसर ने पूछा।

''बिल्कुल हूं और मेरा पक्का यकीन है, यह मुल्क अब आजाद होकर रहेगा।''

अफसर को हंसी आ गई। सिगार दागते हुए बोला :

''अगर हम आजादी देगा, तभी यह मुल्क आजाद हो सकता है, वरना कभी नहीं। आप बताइए, यहां कभी 'रिवोल्यूशन' हो सकता है ? 'इम्पासिबुल'। यहां की आबोहवा, यहां का 'नेचर', यहां के लोगों की आदतें, उनका स्वभाव, उनके सोचने और काम करने का ढंग ऐसा है कि इन्हें 'क्रांति' क्या 'परिवर्तन' भी नापसंद है।''

विष्णुपद ने भावावेश में कहा :

''यह फोर्टी टू का वर्ष क्या है ? आपके आई०जी० पर इस तरह बम फेंका जाना क्या है ?''

पुलिस अफसर चुपचाप सिगार पीता रहा। अजीबोगरीब ढंग से मुंह बनाता रहा। एक लंबा कश लेकर अंगरेजी में बोलने लगा :

''फोर्टी टू का यह अगस्त आंदोलन–रिवोल्यूशन नहीं–पिछले तीन–चार वर्षों में अंगरेजी हुकूमत की बेमतलब जिद का नतीजा है। इसने भारतीय राष्ट्रवादियों में इतनी निराशाजनित कुंठा भर दी कि विद्रोह के प्रतीक के रूप में सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह छोड़कर उन्हें मजबूरन यह आंदोलन शुरू करना पड़ा। हां.....हां, मैं खूब जानता हूं हिन्दुस्तानियों को–इनमें क्रोध नहीं, गुस्सा नहीं, इनमें है सिर्फ भावुकता। क्रांति ठंडे दिमाग का गर्म गुस्सा है–जो यहां के 'नेचर' के खिलाफ है।''

विष्णुपद से रहा नहीं गया।

वह उबल पड़ा, ''मैं भी खूब जानता हूं अंगरेजों को.....उनकी जलालत को। ये महज शोषक हैं.....गंदे बनिये हैं। मैं तुम्हारे इंग्लैंड और पूरे यूरोप–भर में घूमा हूं–सब नफरत करते हैं अंगरेजों से।''

अफसर मुस्कराने लगा, ''हमें आपके बारे में सब कुछ पता है–सब हमारे रजिस्टर में दर्ज है–मगर हमें यह भी ख्याल है आप उस 'कपूर फैमिली' के हैं, जो सन् सत्तावन के पहले से ही अंगरेजों के दोस्त रहे हैं।''

''मेरा उन कपूरवालों से कोई संबंध नहीं। मुझे उनसे नफरत है। मेरा नाम सिर्फ विष्णुपद है.....।''

वह तेजी से उस दमघोटू कमरे से बाहर आने लगा। अफसर ने उसका रास्ता रोक लिया :

''आपको मैकेंजी की जान बचाने के लिए काफी बड़ा इनाम मिलेगा।''

''मुझे ऐसा कुछ नहीं चाहिए।''

''चाहने से कुछ नहीं मिलता जैंटिलमैन, ये सब किस्मत का खेल है, जैसा तुम कितना भी न चाहो तो भी तुम उन्हीं कपूरवालों से ही जोड़कर पुकारे जाओगे।''

विष्णुपद का सारा मुंह कड़ुवाहट से भर गया। बाहर निकलकर वह थूकने लगा। अफसर ने उसे साग्रह पुलिस जीप पर बिठा लिया और सादर उसे घर तक छोड़ आया।

अगले दिन के 'नवभारत' में विष्णुपद ने सारी आपबीती वह दुर्घटना छाप दी।

और तीसरे दिन कुंवर के मुंह से एक अजीब बात सुनी उसे। उस अंगरेज एस०पी० ने विष्णुपद का नाम लगाकर दो ऐसे राष्ट्रवादियों के नाम वारंट जारी कर दिया है, जिनके प्रति दिल्ली की जनता और स्वयं उसके मन में बड़ी श्रद्धा थी। वे थे–जामा मस्जिद के हसन आजाद साहब और चांदनी चौक के राधेश्याम गुड़वाले।

विष्णुपद का खून खौल उठा। वह सीधे उस एस०पी० के पास गया।

''यह क्या सुन रहा हूं मैं ?''

''हुकूमत चलाने के लिए ऐसा करना पड़ जाता है।''

''यह झूठ है, अन्याय है, विश्वासघात है !''

''ये सब भावना की बातें हैं, हमें अपनी सरकार चलानी है। किसी तरह से भी हमें इस आंदोलन को पूरी तरह से कुचलकर रख देना है।''

विष्णुपद भागा हुआ विलिंगडन अस्पताल में गया। मैकेन्जी साहब को बताया। बातें हुईं और उसे स्पष्ट हो गया–सभी ने मिलकर वह जाल तैयार किया है।

''मैं इस बेशरम बात को अखबार में छापूंगा।''

''देट्स आल राइट !''

''नवभारत' में उसने सब कुछ साफ–साफ लिख दिया। पर तब तक हसन आजाद साहब और राधेश्याम गुड़वाले दोनों गिरफ्तार कर लिए गए।

दिल्ली के लोगों पर एस०पी० और आई०जी० के उस नाटक का पूरा असर पड़ा। बातें फैलने लगीं कि विष्णुपद ने ऐसा किया। फिर लोगों को बातें जोड़ने में देर न लगी। विष्णुपद ने अगस्त उन्नीस सौ बयालीस के आंदोलन का समर्थन नहीं किया था। उसने अंगरेजों का साथ देने तथा जर्मनी के खिलाफ रूस की मदद की वकालत की थी। ऐसा उसने क्यों किया था, इसे सब भूल गए, सिर्फ इतना ही याद आया, विष्णुपद देशद्रोही है.....गद्दार है।

वह हर दिन के 'नवभारत' में उस जाल के खिलाफ लिखता, दोनों अफसरों का भंडाफोड़ करता, पर लोगों पर कोई असर नहीं।

विष्णुपद के खिलाफ प्रदर्शन हुए। 'नवभारत' का बहिष्कार शुरू हुआ। उसके दफ्तर के सामने काले झंडे लहराने लगे। वह दुःख–चिन्ता की आग में जल उठा।

तभी एक दिन शिवानी ने आकर बताया कि उस जाल को दरअस्ल कुंवर ने बुनकर तैयार किया था।

''कुंवर ने ?''

''उसे तुमसे भयानक ईर्ष्या है।''

''किसी बात की ?''

''उन्होंने घमंड में आकर खुद बताया मुझे, और डींग हांकने लगे–अपनी पहुंच की, ताकतों की, प्रभाव और असर की। और पहली बार मुझे जब यह पता चला कि वह तुमसे किस कदर जलते हैं, तो मैं नफरत से भर गई।''

विष्णुपद बिल्कुल अकेले कुंवर से मिला। वह उस समय किसी 'रिसेप्शन' में जाने की तैयारी कर रहा था। शिवानी को भी संग जाना था–वह अपने कमरे में तैयार हो रही थी।

विष्णुपद एकाएक सीधी बात पर टूट पड़ा :

''भाई, क्या ऐसा आपने किया है ?''

''यह किसने कहा तुमसे ?''

''मैं पत्रकार हूं–इसे क्यों भूलते हैं, खबरें मेरे पास पहुंच जाती हैं।''

''मुझे तुम्हारी हरकतें, व्यवहार और कोई भी काम पसन्द नहीं।''

''अगर मैं कहूं–मुझे आपकी कोई चीज़ पसंद नहीं।''

''यह मैं जानता हूं, पर मेरी नापसन्दगी तुम्हें भी मालूम हो जाए, इसीलिए वह उतना ज़रूरी था.....''

''वह उतना..... ? अभी आगे के लिए और बड़ी–बड़ी स्कीमें हैं ?''

''मेरे पास वक्त नहीं है।''

''अच्छा.....।''

यह कहकर विष्णुपद चल पड़ा। कुंवर ने टाई बांधते हुए पुकारा, ''सुनो.....अगर तुम्हें सचमुच दुःख है, अफसोस है तो मैं अभी होम सैक्रेट्री को टेलीफोन कर सकता हूं.....''

विष्णुपद तीर की तरह निकल गया। बाराखंबा रोड पार कर जैसे ही उस पार गया–उसकी नजर एक बनती हुई इमारत पर पड़ी। शाम के साढ़े सात बज रहे हैं और करीब पचास–एक राजस्थानी मज़दूर–स्त्रियां, बूढ़े, बूढ़ियां अब तक काम पर लगे हैं।

वह टहलता हुआ उनके करीब चला गया। मज़दूरों में कुछ औरतें गर्भवती थीं, कुछ ने अभी दो दिन हुए हैं, बच्चों को जन्म दिए हैं–नवजात शिशुओं को टिन के ऊपर सुला दिया गया है। छोटे–छोटे नंग–धड़ंग बच्चे इधर–उधर खेल रहे हैं और उन शिशुओं की कुत्ते–बिल्लियों से रखवाली भी कर रहे हैं।

विष्णुपद इधर–उधर घूमता हुआ न जाने क्या–क्या निहारता रहा। वह सब अपना बिल्कुल भूल गया। डरता–डरता एक बूढ़ा मज़दूर पास आया। हाथ जोड़कर खड़ा हो गया :

''एक बीड़ी.....। एक कप चाय।''

''नहीं।''

''कौन हो बाबू तुम ?''

''कुछ नहीं।''

बूढ़ा सिर झुकाए चला गया। थोड़ी ही देर में एक अधेड़ औरत आई और मुस्कराती हुई बोली, ''एक बहुत सुंदर नौजवान लड़की है म्हारे पास.....चाहिए..... ?''

''क्या ?''

औरत ही–ही करके हंसने लगी और उस लड़की की ओर इशारा करने लगी, जो सबसे ज्यादा वजनी सीमेंट भरा तसला सिर पर रखे जा रही थी।

विष्णुपद में एक अजब ठंडी गंभीरता घर करती चली गई।

वह जमादार के पास गया।

''कौर है इसका ठेकेदार ?''

''सरदारसिंह एण्ड कम्पनी।''

''मालिक कौन है ?''

''सरदार पूरनसिंह ?''

''कुंवर एण्ड कंपनी को जानते हो ?''

''कौन नहीं जानता.....वह तो बहुत बड़े लोग हैं.....वह देखिए न उनका बंगला।''

''अच्छा..... ।''

''सरदार पूरनसिंह और कुंवर कंपनी में ही तो होड़ है, हां।''

''अच्छा बताओ, कुंवर कंपनी के काम शहर में कहा–कहां चल रहे हैं ?''

''अरे, कहां नहीं चल रहा है–इरविन अस्पताल, बुद्ध मन्दिर, पूसा इन्स्टीच्यूट.....सेंट्रल एशियाटिक म्यूजियम..... ।

''अब तो होता यह है साहब कि कुंवर कंपनी सीधे छोटे–छोटे ठेकेदारों को कांट्रेक्ट बेच देती है और दस पर्सेण्ट ले लेती है। नाम बिकता है साहब, और ये छोटे–छोटे कान्ट्रेक्टर नकली माल, कम सीमेंट, घटिया लोहा और कम से कम मजदूरी से इमारतें खड़ी कर लेते हैं।''

विष्णुपद ने पूछा, ''पता है, देश में आजादी की लड़ाई चल रही है ?''

''अजी हमें क्या पता। इन मज़दूरों को तो यह भी नहीं पता कि इनका कोई देश है.....भूखे और पेट की लड़ाई के अलावा ये क्या जानें और कुछ।''

''इन्हें मजदूरी क्या मिलती है ?''

''जवान मज़दूरों को पचहत्तर पैसे रोज और बूढ़ों–बच्चों को पचास पैसे। कभी–कभी ये दस–दस पैसों में भी जलूसों में शामिल हो जाते हैं। शाम को कुछ लोग सड़कों पर भीख मांग लेते हैं–कुछ शादियों में गैसबत्ती उठाकर चलने की रोजी कर लेते हैं और कुछ जवान लड़कियां ऊपर की कमाई कर लेती हैं..... ।''

विष्णुपद वहां से सीधे प्रेस आकर मनसुख से कहा है–''इन मज़दूरों पर एक सामग्री तैयार करो।''

मनसुख बताता है, ''बाबू, 'नवभारत' का शहर में 'बायकाट' है।''

''फिर भी 'नवभारत' का प्रकाशन बंद नहीं होगा।''

अगले दिन एक अजीब घटना घटी। वही पंचानन मिला। उसे जैसे शहर की सारी घटनाएं मालूम थीं।

''बाबू, मुझे मालूम है, मैकेंजी साहब पर बम किसने फेंका।''

''किसने ?''

''एक औरत ने।''

''कौन ?''

''आप उसे नहीं जानते.....उसका नाम है नंदिनी–हरिद्वार की रहने वाली।''

फिर पंचानन ने उस नंदिनी की पूरी कहानी बताई।

''वह कहां है ?''

''नई दिल्ली स्टेशन पर..... ।''

उस वक्त नंदिनी भिखारी के भेस में प्लेटफार्म पर घूम रही थी। पंचानन उसे इशारे से एक ओर ले आया।

''यही है वह विष्णुपद–ब्रजरानी के पूत, और यह नंदिनी मां है।''

दोनों एक–दूसरे को देखते रह गए।

''वह फरारी कहां हैं ?''

''उनको फांसी हो गई। आखिरी बार जब मुरादाबाद जेल में उनसे मेरी भेंट हुई–तो 'बंदेमातरम्' का वही गीत गाकर उन्होंने मुझसे कहा था, 'मेरे काम को तुम्हें आगे ले जाना होगा।' तब से मैं यही बम फेंकर अंगरेजों को मारने का काम कर रही हूं।

विष्णुपद तड़प उठा, ''पर कैसा दुर्भाग्य.....मैंने ही उस मैकेन्जी को बचाया।''

''ओह, वह मरा नहीं ?''

''कहो, उल्टे उस बेईमान ने एक ऐसा काम किया कि दिल्ली में मेरे नाम पर कालिख पुत रही है।''

विष्णुपद ने वह सारी घटना कह सुनाई। तब पंचानन बोला, ''मैं कबूल कर लूंगा, मैकेन्जी पर मैंने बम फेंका।''

''नहीं, नहीं, तुम बेकसूर सूली पर चढ़ा दिए जाओगे।''

''अजी मुझे कौन सूली–फांसी पर चढ़ा सकता है, ज़िन्दा रहे मेरी यह नंदिनी मां। मेरे पास एक चौकस उपाय है।''

''क्या ?''

वह एक भयानक उपाय था। और दोनों ने अपने विश्वास के आगे विष्णुपद को चुप कर दिया। उनके लिए वह जैसे कोई खेल–तमाशा हो।

लगभग तीन वर्षों के लिए उस समय कांग्रेस गैर सरकारी संस्था करार दे दी गई थी। उसके सभी नेता जेल में ठूंसे हुए थे। उसका कोष जब्त कर लिया गया था। इस राजनीतिक रिक्तता को अंगरेज भर रहे थे। मुस्लिम लीग के जरिये मुसलमानों की अंध धार्मिक भावना को भड़का कर और जिन्ना साहब को काठ का दुल्हा बनाकर।

दिल्ली–भर में कहीं भी राजनीतिक या आम सभा करना अपराध था। ठीक ऐसे ही क्षणों में एक गुप्ती–रहस्यमय इश्तिहार पूरे दिल्ली की सड़कों, इमारतों और दीवारों पर लोगों ने एकदम सुबह ही सुबह पढ़ा–

''मैकेन्जी पर बम फेंकने वाला फरारी आत्म–समर्पण को तैयार।.....उसकी महज एक मामूली–सी शर्त है। शुक्रवार को संध्या ठीक साढ़े छः बजे उसी भंगी बस्ती में जहां महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा होती थी, वहां लोगों को ज्यादा से ज्यादा तादाद में आने दिया जाए। वहीं हसन आजाद साहब और राधेश्याम गुड़वाले को, जो बिलकुल बेकसूर हैं, लाया जाए। वहीं पुलिस अधिकारियों के सामने बम फेंकनेवाला आत्म–समर्पण करेगा।''

इश्तिहार की कापी के साथ फरारी के खत सारे बड़े अंगरेज अधिकारियों को मिले।

शुक्रवार को ठीक उसी समय, उसी स्थान पर लोगों की अपार भीड़ इकट्ठी होने लगी। शहर के सभी अधिकारी वहां मौजूद। हसन आजाद साहब और राधेश्याम गुड़वाला को ले आया गया। सबकी नजरें उस भीड़ में उस फरारी बमबाज को ढूंढ रही थीं। निश्चित समय पर पंचानन 'भारत माता की जय', 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाता हुआ सामने आया। जनता जय–जयकार कर उठी।

पंचानन गिरफ्तार कर पुलिस की बंद गाड़ी में बिठा लिया गया और हसन आजाद साहब तथा राधेश्याम जी को लोग फूल–मालाएं पहनाकर ले गए।

पंचानन को लिए पुलिस गाड़ी बिड़ला मन्दिर के सामने से तालकटोरा रोड पर मुड़ी। विलिंगडन अस्पताल के सामने से जैसे ही चौराहे पर घूमी, गाड़ी पर अचानक बमों की बारिश होने लगी। पांचों सिपाहियों को वहीं घायल बेहोश करके लोग पंचानन को देखते ही देखते लेकर चंपत हो गए।

पूरे शहर–भर में तहलका मच गया। जगह–जगह पुलिस वालों ने छापे मारे। दिल्ली शहर के सारे बाहरी निकास पर पहरे बिठा दिए गए। पर कहीं भी उन फरारियों और पंचानन का सुराग न मिल सका।

विष्णुपद ने जब सारी बातें शिवानी को बताईं तो वह आश्चर्यचकित रह गई। वह बेताब हो गई उस महिमामयी नंदिनी से मिलने के लिए–उस पंचानन को देखने के लिए।

'नवभारत' की बिक्री अब दुगनी हो गई। विष्णुपद पर लगाए गए झूठे कलंक का जब पर्दाफाश हुआ तो इसका असर दूर–दूर तक हुआ। मैकेन्जी और उस एस०पी० का फौरन तबादला हुआ।

कुंवर ने अपने शर्म को छिपाने के लिए शिवानी से कहा :

''तो क्या हुआ–इस मुल्क में धोखेबाजों की कोई कमी है ? अंगरेजी हुकूमत एक–एक को पीसकर रख देगी।''

शिवानी ने मजा लेते हुए पूछा, ''मगर यह हुआ कैसे ?''

''विष्णुपद से पूछो.....तुम भी तो अखबारनवीसी करती हो।''

''तुमने क्यों नहीं, तुम तो अंगरेजी हुकूमत के इतने बड़े दोस्त हो.....सारे अफसरों में उठने–बैठने वाले हो।''

''ये छोटी–छोटी चीज़ें हैं। होती रहती हैं–इसकी परवाह कौन करता है ?''

''सुना है, तुम्हारे दोनों दोस्तों–अंगरेज पुलिस अफसरों–का यहां से तबादला हो गया।''

''नये अफसर फिर दोस्त हो जाएंगे–कमी क्या है ?''

''हां, कमी क्या है।''

''विष्णुपद बहुत खुश हो रहा होगा।.....पर कह देना, याद रखे, उसे अब सावधान रहना चाहिए।''

कुंवर बीच–बीच में न जाने क्या–क्या कहता रहा–शिवानी के दिमाग में वही नंदिनी, वही पंचानन घूम रहे थे।

बंगले से दाईं ओर चंपा और हरसिंगार के नीचे शिवानी ने कभी एक 'लिली पौंड' बनवाया था। बहुत दिनों बाद आज वह सुबह ही सुबह उस पौंड के पास जा खड़ी हुई। पौंड के एक किनारे कमल की महज एक लतर पानी पर फैली थी। दूसरे किनारे छोटी–सी कमलिनी पानी की सतह पर सिमटकर रह गई थी।

पानी काफी सूख गया था। उसका धरातल बिल्कुल साफ नजर आ रहा था.....उसमें कितने मेंढक आ बसे थे।.....कहीं भी कोई मछली नजर नहीं आ रही थी।

कहां गईं वे नन्ही–नन्ही रंग–बिरंगी मछलियां। ममा कहा करती थीं, ''मछलियां वहां नहीं रह सकतीं, जहां मनुष्य शोर करते हैं। वह सोचने लगी–इस बंगले में तो कहीं शोर नहीं। पर नहीं, उसके भीतर ज़रूर एक अनन्त शोर है जो उसे एक क्षण भी चैन नहीं लेने देता।

रिसेप्शनिस्ट मिस शीला ठाकुर ने एकाएक आकर कहा :

''मेम साहब, साहब का टेलीफोन।''

''जाकर 'मेसैज' ले लो।''

''ओह, वह मुझे नौकरी से बर्खास्त कर देंगे। याद नहीं है, साहब ने एक बार मिस रोहिनी वैद्य और दूसरी बार मिस वीना खन्ना को किस तरह निकाला।''

''याद है।''

शिवानी ने किनारे वाले आफिस रूम में आकर फोन उठाया, ''हैलो.....मैं बोल रही हूं।''

बड़े दफ्तर के पर्सनल सैक्रेटरी मिस बाली दत्त ने कुंवर को फोन की लाइन दी :

''हैलो शिवानी मुझे कल इंग्लैंड जाना है–लौटते समय यूरोप भी टहलना चाहता हूं.....''

इतना बताकर वह रुक गया–और वह ठंडे दिल–दिमाग से इस बात का इंतज़ार करता रहा कि शिवानी उससे अनुरोध करे कि वह भी उसके संग इंग्लैंड–यूरोप घूमना चाहती है.....पर ऐसा कुछ भी शिवानी की ओर से नहीं सुनाई पड़ा। फिर कुंवर फोन पर बोला :

''सुनो शिवानी, अच्छा रहेगा तुम इस बीच इलाहाबाद हो आओ.....आई मीन, अपने मम्मी–पापा से मिल आओ..... मुझे करीब पैंतीस दिन कुल लगेंगे बाहर..... ।''

अचानक शिवानी ने फोन दख दिया, और वह तेजी से बाहर आकर लॉन पर टहलने लगी। लीला ठाकुर फिर दौड़ी आई, ''साहब का फोन.....''

कह दो 'आई एम नॉट फ्री'।''

थोड़ी ही देर बाद विष्णुपद आया। शिवानी का चित्त उसे देखते ही बदल गया। जैसे एक अदृश्य भार से वह सहसा मुक्त हो गई।

''उदास क्यों हो ?''

''कहां ?''

''अच्छा सुनो, नंदिनी और पंचानन को तुम देखना चाहती थीं न, हैं ?''

''हां, चलो।''

''आओ यहीं लॉन पर बैठें।''

''नहीं, यहां से चलो।''

''अच्छा, थोड़ी देर..... ।''

दोनों वहीं लॉन पर घूमने लगे। फरवरी के दिन.....उस सुबह के साढ़े नौ बजे वसन्त का पूरा आभास हो रहाथा। न जाने किधर से केतकी और चमेली की मिली–जुली सुंगधी बिखर रही थी।

थोड़ी ही देर बाद बंगले के फाटक पर दो भिखारी आए–एक पुरुष, एक स्त्री।

''मालिक का भंडारा भरा रहे !''

''भगवान मंगल करे !''

''दरबान, इन्हें कुछ देकर विदा करो।''

विष्णुपद ने धीरे से शिवानी का हाथ दबा दिया, धीरे से बोला–''यही है नंदिनी और पंचानन।''

शिवानी उन्हें निहारती रह गई। दरबान को वहां से हटा दिया। उन दोनों के पास गई। हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और आंखों से ही जैसे उनसे बातें करने लगी।

उन दिनों से, कुंवर को विश्वास था कि शिवानी की तबीयत खराब है, और जिन दिनों डाक्टर लोग अक्सर उसके 'चेकअप' के लिए आते थे, तब से दोनों अलग–अलग 'बेड रूम' में सोने लगे थे। यह पिछले कई वर्षों से चल रहा था।

रात में कुंवर को जब शिवानी की.....नहीं–नहीं, अपनी धर्मपत्नी की, ज़रूरत होती तो वह स्विच दबाता, पत्नी के कमरे में तेज आवाज होती, उसे चुपचाप पति के पलंग पर आ जाना पड़ता। ऐसा पिछले वर्षों से होता चल रहा था।

उस रात, जिसके अगले दिन कुंवर को विदेश के लिए रवाना होना था, कुंवर ने तीन बार घंटी बजाई, शिवानी का कोई अता–पता नहीं।

वह गुस्से से भरा उसके 'बेड रूम' में गया। वह बैठी हुई किताब पढ़ रही थी।

''यह क्या बदतमीज़ी है ?''

''आपकी या मेरी ?''

शिवानी के प्रश्न ने कुंवर में जैसे आग लगा दी। वह बढ़कर उसके पास गया और उसके हाथ की किताब छीनकर फेंक दी।

''क्या मतलब है ?''

''घंटी की आवाज क्या सुनाई नहीं पड़ती ?''

''नहीं। बहरी हो गई हूं।''

''तुम्हें पता है, मुझे कल विदेश जाना है।''

''तो मैं क्या करूं ?''

''तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया ?''

''प्लीज़.....।''

शिवानी के कंठ में वह अव्यक्त चीख फंसकर रह गई। कुंवर आवेश में वहीं कमरे में चक्कर–सा काटने लगा। शिवानी आंखों पर हाथ रखे चुपचाप बैठी रही।

कुंवर आकर बोला, ''तुम्हारा जो इतना घमंड है अपने ऊपर.....।''

आगे उसके शब्द कांपकर रह गए।

शिवानी बोली, ''अब तो सिर्फ वही घमंड ही बाकी है।''

''वह भी खत्म हो जाएगा।''

''वह और बढ़ता जाएगा।''

''तुममें शुरू से ही घमंड था.....न जाने क्या समझती हो अपने–आपको.....।''

शिवानी बड़े संयत स्वरों में कहने लगी, ''जब ब्याह कर आई तो मुझे पता भी न था कि घमंड क्या होता है..... मगर धीरे–धीरे जब तुम्हारे करीब आई, तो मुझमें वही जगने लगा, जिसे तुम घमंड कहते हो.....मैं समझती हूं.....यह घमंड से भी कुछ ज्यादा है.....घमंड, आत्म–सम्मान.....मानहानि.....कंटेंप्ट.....घायल अहंकार.....और न जाने क्या–क्या.....।''

''तुम्हारे पास इसके अलावा और कुछ भी नहीं था।''

''मैं तो थी।''

''क्या मतलब ?''

''फिर मुझसे शादी क्यों की ? और जब तुम्हें उसके अलावा कुछ नहीं दीखा मुझमें तो मुझे छोड़ क्यों नहीं दिया. ..... ?''

''मतलब डाइवोर्स।''

''हां, डाइवोर्स।''

''जानती हो मेरा खानदान.....हमारी इज्जत.....हमारे रुतबे ?''

''जानती हूं.....और शर्म से डूब जाती हूं।''

यह कहकर शिवानी सोफे से उठ खड़ी हुई। कुंवर का मुंह लाल हो गया.....उसके होंठ फड़फड़ाने लगे। वह गालियां बकने लगा, और जैसे ही उसके मुंह से पपा–ममी के लिए गाली निकली, वह चीख पड़ी :

'शट अप। गेट आउट।''

कुंवर नफरत से भरकर बोला, ''तुम जैसी बीसों औरतें मैं यहां इसी बंगले पर रख सकता हूं।''

''यह मालूम है मुझे, और याद रखो.....तुम्हारे इन्हीं विचारों और हरकतों ने मुझमें घमंड–अहंकार भरा और इन्हीं के साथ मैं यहां सुलगती हुई रहने लगी.....। मुझे जिस दिन पता चला कि तुम मनुष्य नहीं केवल पति हो, व्यापारी हो, सिर्फ लाभ–हानि, नफरत–नुकसान और स्वार्थ की ज़िन्दगी जीते हो.....मैं उसी दिन.....।''

शिवानी चुप हो गई।

कुंवर के मुंह से निकला, ''इस ख्याल में न रहना कि तुम्हें मुझसे ''डाईवोर्स' मिल जाएगा.....।''

''जानती हूं, ''डाइवोर्स' देने से तुम्हारी ही नहीं, तुम्हारे पूरे खानदान की बदनामी होगी और उसका बुरा असर तुम्हारे 'बिज़नेस' पर पड़ेगा। जानती हूं, सब कुछ तुम्हारा वही 'बिज़नेस' है।''

''हां–हां, तुम उसी 'बिज़नेसमैन' की पत्नी हो।''

शिवानी बेहद नफरत से बोली, ''हर वक्त हर जगह के लिए तुमने लड़कियां–औरतें नौकर रख छोड़ी हैं, रात को अपने बेडरूम के लिए क्यों नहीं रख लेते ? हां, हां, तुम मन ही मन कह रहे हो कि वह मैं हूं। वही मैं हूं.....पर अब मैं वह नहीं हूं। हद हो गई मेरी बेशर्म ज़िन्दगी की।''

''पता है, तुम्हारा दिमाग उसी विष्णुपद ने खराब किया है।''

''पता है 'बिज़नेसमैन' कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेता।''

यह कहकर शिवानी कमरे से चुपचाप बाहर जाने लगी। उसे रोकने के लिए कुंवर की एक तेज आवाज आई। वह बाहर बरामदे में दाईं और बढ़कर खुले आसमान की ओर देखने लगी। कितने तारे चमक रहे थे.....एक बिन्दु पर वह देखने लगी जैसे तारों का एक गुच्छा आसमान से लटककर धरती की हवा में हिल रहा हो।

उसे एकाएक बचपन की एक बात याद आई। एक त्तिली को हाथ पर रखकर सोचने लगी थी–मेरे और इस त्तिली के बीच यह जो शून्य है, यह क्या है.....क्यों है ? जब इस त्तिली का और मेरा जन्म नहीं हुआ था.....तो वह शून्य कहां था ? और आज जब हम हैं तो उस शून्य और हममें कितना फर्क है।

बचपन की वह अस्पष्ट धुंधली बात आज जैसे स्पष्ट होने लगी–वह शून्य हर क्षण हमारा पीछा कर रहा है–आगे शून्य, पीछे शून्य.....बीच में महज थोड़ी देर का यह खेल। जैसे थोड़ी देर के लिए हाथ में रखी उस त्तिली का खेल. .....बस, और कुछ नहीं।

कुंवर की अचानक आवाज आई :

''चाहो तो तुम्हें भी अपने संग इंग्लैंड–यूरोप.....''

शिवानी ने बात काटते हुए कहा :

''बहुत–बहुत शुक्रिया.....।''

कुंवर का स्वर बिल्कुल बदल गया था। वह पास आकर बोला :

''इस तरह लड़कर कल इतनी दूर जाना अच्छा नहीं लगता। आई एम सॉरी, यह सच है कि मैं तुम्हें उतना वक्त, उतना साथ नहीं दे सका जितना तुम्हें.....पर मेरी भी तो दिक्कतें देखो.....।''

''तुम सिर्फ एक व्यापारी.....बिज़नेसमैन हो.....''–यह बात शिवानी के होंठों पर कांपकर रह गई.....वह बोल नहीं सकी। वह मन ही मन सोचने लगी, काश, उस पुरुष से उसका सम्पूर्ण परिचय न हुआ होता। वह क्यों गई, इतने नजदीक उसके पास ?

शिवानी के कानों में अचानक कुंवर की आवाज टकराई :

''मैं तुमसे प्रेम करता हूं, वरना.....। अच्छा छोड़ो। आओ, प्लीज़ मेरे कमरे में.....।''

यह कहता हुआ कुंवर उसकी दाईं बाह पकड़कर प्यार से खींचने लगा।

''नहीं, मेरी तबियत ठीक नहीं।''

''अच्छा, हम सिर्फ बात करेंगे।''

''बातें करने के लिए हमारे पास और कुछ भी नहीं है।''

''हमारे पास, इस दुनिया की किस चीज़ की कमी है।''

''वही तो कमी है।''

शिवानी की कमर में हाथ डालकर वह बोला :

''क्यों नहीं, हम प्रेम कर सकते हैं।''

''हां, अपवित्र प्रेम.....।''

''अजी, प्रेम में पवित्र–अपवित्र कुछ नहीं होता.....और पति–पत्नी में तो झगड़े–मनमुटाव, टकराहट होती ही रहती है। जहां प्रेम है वहीं तो संघर्ष है। जहां दो बर्तन होंगे आपस में टकराएंगे ही।''

कुंवर की इन पैंतरेबाजियों से शिवानी वर्षों से परिचित थी। वह उसके रग–रग को पहचानती थी, उसके एक–एक शब्द.....मौन.....चुप्पी के सारे अर्थों को भी जानती थी। आज उसने न जाने कहां से साहस पाकर कहा :

''जो कुछ तुम कर रहे हो, जैसे तुम्हारे व्यवहार हैं, उसके पीछे सिर्फ तुम्हीं नहीं हो, तुम्हारे भीतर तुम्हारे बाप, दादा, परदादा और न जाने कौन–कौन, क्या–क्या लोग हैं, चीज़ें हैं.....''

''यही बात तुमपर नहीं लागू होती ?''

इसी तरह की बात सुनते ही कुंवर फिर तिलमिला उठा : ''विष्णुपद भी कोई आदमी है, वह कलंक है हमारे खानदान का !''

''जैसे मैं कलंक हूं, जैसे वह ब्रजरानी कलंक थी.....जैसे.....''

शिवानी का मुंह सहसा कंवर ने दबोच लिया। शिवानी ने उसके हाथ को झटककर कहा :

''अब मैं तुम्हारे साथ और नहीं रह सकती।''

''कहां जाओगी ?''

''पता नहीं।''

''कुछ तो स्कीम बनाई होगी.....विष्णुपद के साथ आखिर इतना उठना–बैठना, मिलना–जुलना होता है।''

''चुप रहो !''

''अच्छा, देखूंगा।''

यह कहकर कुंवर उसे घूरता हुआ चला गया। शिवानी थोड़ी देर तक उसी सूने बरामदे में घूमती रही। बरामदे के बायें सिरे पर पीले गुलाब की लतरों की झाड़ी फैली थी। झाड़ी में बुलबुल दम्पती का नन्हा–सा घोंसला था। न जाने क्यों आज अचानक रानी बुलबुल घोंसले से बाहर कांटों–भरी पतली–सी डाल पर बैठी थी।

शिवानी उस सन्नाटा–भरे बरामदे में घूमती रही–एक सिरे पर आसमान से लटकता हुआ वह तारों का गुच्छा, दूसरी ओर वह रानी बुलबुल।

उसी बरामदे में घूमते–घूमते भिखारी के रूप में कल के देखे हुए वही नंदिनी और पंचानन याद आए।

शिवानी ने उनसे कहा था, ''विश्वास नहीं होता, आप लोग इतने आश्चर्यजनक हैं।''

नंदिनी ने हंसकर कहा था, ''सारा सवाल उसी साहस और विश्वास का है।''

''कैसे ?''

''अगर यह विश्वास हो गया है कि वह काम करना मेरा धर्म है, तो साहस का दरवाजा खुल जाता है और तब धीरे–धीरे पता चलने लगता है कि उसमें कितना आश्चर्यजनक साहस है, शक्ति है।''

पंचानन तभी बोला था, ''मनुष्य को किस बात का डर ?.....मरना तो सबको है, फिर क्यों न ठाठ से जिए..... अपना जीवन.....जिसके लिए वह बना है। सोचने की बात है, आम के पेड़ में आम ही तो फलेगा।''

विष्णुपद ने पूछा था, ''भारत आजाद होते ही क्या तुम चोरी का काम छोड़ दोगे ?''

''कहां की बात करते हो साहब, भारत की आजादी से तो बड़ी चीज़ दी थी मुझे ब्रजरानी मां ने–घर–जायदाद, गंगा जैसी औरत, पर चोर तो चोर। जो मजा अपने धर्म में है, वह किसी और के धर्म में कहां !''

शिवानी ने नंदिनी से पूछा था :

''आपको इतना साहस कहां से मिला ?''

''उस फरारी से.....''

''कैसे ?''

''उसी प्रेम से।''

''पर अब तो वह फरारी नहीं है।''

''तभी तो मेरे जीने का, मेरे कर्म का महत्त्व इतना बढ़ गया है।''

उन दोनों की वे अजीबोगरीब बातें उस सूने बरामदे और रात के उस पिछले पहर में जैसे हिल–डोल रही हों। वह सोचती रही–किसीका निजी विश्वास ही उसका धर्म है–ऐसा विश्वास जो उसे जीवित रहने का आधार और अर्थ देता है–पर इस विश्वास की अनुभूति कितनी बड़ी चुनौती है। वह कितना अलग और अकेला है। वह सोचने लगी, मैं इस घर में अब नहीं रह सकती, इस पति को अब और नहीं सह सकती, ऐसा क्यों ? क्या यह मेरा अहंकार है ? यह ऐसा अहंकार मुझमें पैदा ही क्यों हुआ ? यह आया कहां से ?.....पर यही अहंकार तो देने आई थी इस संसार में। किसे दे देती उसे ? उस पति को, जो सिर्फ लेना चाहता है, जो लेने का अपना अधिकार ही मानता है। जो कहता है, उसने मुझे कितना कुछ दिया–अपार सुख–सुविधाएं, भोग–विलास की इतनी सामग्री.....इतने प्रसाधन.....इतना धन.....बंगला, नौकर–चाकर, इज्जत, पद–सम्मान.....कपड़े–गहने.....

क्या इसीको कहते हैं देने वाला ? इसीको कहते हैं प्रेमी ?

पर मैं उसकी प्रेमिका क्यों नहीं ? क्यों मैं उसकी धर्मपत्नी ही बनकर रह गई ? दफ्तर में लेडी सैक्रेटरी, बंगले पर रिसेप्शनिस्ट, गेस्ट रूम में गर्ल फ्रेन्ड्स, दौरे पर, सप्ताह के अंत में अन्य लड़कियां.....औरतें। क्या मैं एक स्त्री उन सारी स्त्रियों के काम को पूरा नहीं कर सकती ? एक के स्थान पर इतनी स्त्रियां क्यों ? फिर एक स्त्री को इतने ही पुरुष क्यों नहीं ? नहीं–नहीं।

मैं उसीको दे सकती हूं, जो मेरा प्रेमी हो–ऐसा प्रेमी जिसे मैं निःसंकोच अपना सब कुछ दे सकूं–यहां तक कि अपना अहंकार भी।

नहीं–नहीं !

फिर जो स्वयं का स्वयं को देना है। फिर वह कौन है..... ? क्या देना उसीको होता है जो विरोध में है..... जो शत्रु है, जो विपरीत है ?

यह सोचते–सोचते शिवानी को लगा जैसे उसका सिर फट जाएगा। वह दौड़कर अपने 'बेड रूम' में गई, एक क्षण आंख मूंदे खड़ी रही। फिर 'बाथ रूम' में जाकर स्नान करने लगी।

सुबह दस बजे जब कुंवर पालम एअरोड्रोम जाने के लिए कार में बैठने लगा, तब दरबान और रिसेप्शनिस्ट को बुलाकर उसने न जाने क्या बड़े रहस्यमय गुप्त आदेश दिए।

इस बात का पता शिवानी को तब चला, जब दरबान ने उसे बड़े अदब के साथ यह कहा :

''साहब ऑर्डर देकर गए हैं, आप अकेली कहीं बंगले से बाहर न जाएं तो बेहतर होगा।''

''ऑर्डर को घुमा क्यों दिया ? वही बोलो जो उनके ऑर्डर हैं–मेम साहब अकेली कभी इस बंगले से बाहर नहीं जा सकतीं।''

''हुजूर को कैसे पता चला ?''

''कितने सालों से मैं उनके ऑर्डर ही तो सुनती आ रही हूं।''

यह कहकर शिवानी मुस्करा पड़ी और उस स्थान को अपलक निहारने लगी–जहां उस दिन नंदिनी और पंचानन आ खड़े हुए थे।

वह जब विष्णुपद से बातें करने के लिए ड्राइंग रूम का फोन उठाने लगी, तब सहसा उसे ख्याल आया–बंगले पर टेलीफोन ऑपरेटर क्यों बैठी है ?

बंगले के किसी भी टेलीफोन की लाइन अब सीधी नहीं है। सारे नम्बर अब मांगने पड़ेंगे।

उसने कहीं पढ़ा था–निर्णय लेने की एक भयानक चुनौती होती है, और अब वही चुनौती उसके सामने है। उसे अनुभव हुआ कि लोग तभी क्यों नहीं कोई निर्णय लेते। जो ज़िन्दगी मिलती है, उसे चुपचाप स्वीकार कर ज़िन्दगी काट देते हैं।

ड्राइंग रूम में रिसेप्शनिस्ट मिस लीला ठाकुर बोली, ''जिस किसी चीज़ की ज़रूरत हो, मुझे ऑर्डर दीजिए।''

''अच्छा, वेरी गुड।''

''यस मैडम।''

''अच्छा बताओ, साहब ने और क्या–क्या फरमान जारी किया है ?''

''बस, और कुछ नहीं।''

''डरो नहीं, साहब को पता नहीं चलेगा।''

''मुझे नौकरी से निकाल देंगे।''

शिवानी चुप हो गई। उसे लगने लगा कि किसी ऐसे समुद्री द्वीप में आ गई है, जहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं है। जहां सारी सुख–सुविधाएं हैं, पर उनके हिसाब रखे जाते हैं।

उसका मन अजब तरह से विचलित होने लगा, तभी उसे नंदिनी और पंचानन की बातें याद आईं। वह अपने कमरे में गई। मुद्दत बाद तानपूरा उठाया। उसका मध्यम का तार टूटा हुआ था। नया तार लगाया और सरगम साधने बैठ गई।

सरगम शुद्ध लग जाने के बाद आज वह वर्षों बाद शुद्ध कल्याण में एक पद गाने लगी। उसे होश नहीं रहा, वह कब तक गाती रही।

ठीक एक बजे बाद, तुलसी ने आकर भोजन के लिए कहा।

''किसका भोजन ?''

''अरे.....आपका ?''

''तुलसी, मेरा क्या है इस घर में ?''

''वाह ! आपका नहीं तो किसका है ?''

भोजन करते–करते शिवानी ने तुलसी को सब कुछ बता दिया। तुलसी रोने लगी। आंचल से आंसू पोंछती हुई बोली :

''बस, आप डरिए नहीं, इत्ती बात हम कहि देइत है।''

''तू नहीं डरती ?''

''बस बहू, खाली वोही भगवान से डर लागै अउर केह से नाहीं।''

''जब से तू इस बंगले में आई, कभी अपने घर नहीं गई।''

''कैसा घर, कैसा परिवार.....सब सुआरथ है बहू।''

फिर तुलसी अपनी जीवन–कहानी बताने लगी। जात की ग्वालिन। फैजाबाद जिले के एक गांव की रहने वाली। पांच साल की उमर में उसकी शादी। तेरह साल की उमर में बिना पति का मुंह देखे विधवा। एक आदमी के साथ भागकर दिल्ली आई। यहां जगह–जगह नौकरियां कीं और अंत में एक सिपाही मिला। तीन बच्चे हुए। पर तीनों मर गए।

''वह सिपाही कहां गया ?''

''वह शादीशुदा था, छोड़कर चला गया।''

''ऐसे ही चले जाने दिया ?''

''हम दोनों का मन एक–दूसरे से भर गया था। उसने कहा, 'मुझे अब जाने दो'; मैंने कहा, 'जाओ।' वह मुझे एक बंगले पर आया की नौकरी दिलाकर बोला, 'जब मेरी ज़रूरत हो, यह मेरा पता है, मुझे चिट्ठी लिखकर बुला लेना।' तब से मुझे उसकी ज़रूरत ही न पड़ी। अब पचास से ऊपर की उमर हो गई। उसका पता भी कहीं खो गया।''

''उसकी याद आती है ?''

''वह बड़ा ही बादशाह आदमी था, बहुत बड़ा दिल था उसका।''

''बताओ न, उसकी याद आती है ?''

''याद बहुत आती है, तभी तो ज़िन्दा हूं।''

''अपने घर की याद आती है ?''

''हां, घर रुपये भेजती रहती हूं।''

''बस, यही.....।''

''और क्या बहू, आगे चलकर यही तो बच रहता है–सुआरथ, आप दूसरों को देते रहें। यह कोई नहीं पूछता–कि देने वाले को क्या मिलता है ?''

''हां, क्या मिलता है ?''

फिर दोनों चुप रह गईं।

तुलसी बोली, ''बहू, मुझे मालूम है आप कितनी दुःखी हैं। मैं तो यही जानती हूं कि बहू, इस दुनिया में स्त्री सबसे ज्यादा अभागन होती है।''

''पर तुलसी, मैं एक अभागन की ज़िन्दगी नहीं बिता सकती। यह ज़िन्दगी एक ही बात तो मिली है।''

''फिर क्या करोगी ?''

''इस घर को छोड़ दूंगी।''

यह सुनकर तुलसी कांप गई। शिवानी बोली, ''यह फैसला मैंने कुंवर को सुना दिया है।''

तुलसी घबराकर बोली, ''पर औरत क्या इस तरह कोई फैसला ले भी सकती है ? खासक ऐसे बड़े घर की बहुएं।''

''क्यों ?''

''सब बला उसी इज्जत की है। उसी इज्जत की सूली पर तो बहुएं चढ़ा दी जाती हैं।''

''मुझे यह झूठी इज्जत नहीं चाहिए। यह इज्जत नहीं कैदखना है।''

''ईश्वर आपकी मदद करे बहू। हां, और कौन है मददगार ? स्त्री के साथ और कोई नहीं है। स्त्री तो और भी ज्यादा दुश्मन है स्त्री के लिए। वही तो बदनामी शुरू करती है।''

''ऐसा होता है क्या ?''

''यही तो होगा, जिस दिन आप इस घर से बाहर पैर रखेंगी, उसी दिन दुनिया की सारी औरतें आपके खिलाफ बातें करने लगेंगी।''

शिवानी अगले दिन तुलसी के साथ चांदनी चौक की कपूर हवेली में गई।

ससुर जी, हीराचंद कपूर, बाहर गद्दी पर बैठे थे। सासु जी–पिहानीवाली 'ब्लड प्रेशर' के रोग से बड़ी परेशान थीं।

बहू को देखते ही पिहानीवाली बोली, ''बहू, तुम कुंवर के साथ विदेश घूम आतीं।''

तुलसी बोल पड़ी, ''कोई ले जाता तब ना।''

''क्यों, कुंवर ने कहा नहीं ?''

शिवानी ने झट बात बदल दी।

''ससुर जी के साथआप क्यों नहीं कहीं घूम आतीं ? 'हाई ब्लड प्रेशर' तो इसीलिए होता है कि इन्सान को जब कुछ करने को न हो, जब उसे कहीं आने–जाने को न हो।''

पिहानीवाली ने कहा, ''उनके पास कभी वक्त ही कहां होता है और सबसे बड़ी बात–इस घर में पत्नी को लेकर पति कहीं जाए–ऐसा चलन भी नहीं है। पर बहू, तुम लोग तो आधुनिक जमाने की हो।''

''आधुनिक ?'' यह कहकर शिवानी मुस्कराने लगी।

''जब तक कुंवर न लौटे, तब यहीं रहो न बहू।''

''उन्हें यह पसंद नहीं है।''

''ऐसा उसने कहा है ?''

''मुझे भी महसूस कराया है।''

''हां, महसूस तो मुझे भी हुआ है, पर सोचती हूं, तुम इतनी पढ़ी–लिखी हो, तुम उससे कह सकती हो। हमें तो यह सब कहना भी नहीं आता.....समझो इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। घर–गृहस्थी में इतने सारे काम..... ब्याह–शादियां, तीज–त्यौहार.....मरना.....जीना, दुःख–सुख.....नाते–रिश्तेदार.....''

''पर यहां तो ऐसा कुछ भी नहीं है।''

''यही तो दुःख है बहू, उस बंगले में तुम्हारी ज़िन्दगी ही क्या है–जो कुछ भी है, वह सिर्फ पति के ही साथ है। यही तो सोचती हूं.....।''

पिहानीवाली से इतनी ममता और सहानुभूति पाकर शिवानी के मुंह से अचानक निकल पड़ा :

''मैं अब वहां और नहीं रह सकती।''

''क्या मतलब ?'' पिहानीवाली आश्चर्य से उठ बैठीं : ''यह क्या कह रही हो ?''

''मैंने उनसे कह दिया है।''

''क्या ? कह दिया है ? क्या ?''

''यही कि मैं अब यहां उनके साथ नहीं रह सकती।''

''क्या कह रही हो बहू ?''

पिहानीवाली की बेचैनी बढ़ती गई और साथ ही साथ उनका रूप भी उसी तेजी से बदलने लगा। उन्होंने घबराकर गद्दी पर खबर भेजी। दौड़े हुए ससुर जी आए। धीरे–धीरे जैसे कोई अदृश्य आग जंगल में फैल जाए, ठीक उसी तरह से पूरी कपूर हवेली शिवानी की उस बात की लपेट में आ गई।

पिहानीवाली के कमरे में शिवानी सास–ससुर के सामने अपने दुःख, अपमान, बदकिस्मती को किसी तरह शब्दों में बयान करने लगी। इस विश्वास के साथ कि कहीं न कहीं कुंवर ने उनका भी अपमान किया है, उपेक्षा की है, वे लोग बहू के दुःख को ममता–सहानुभूति से ज़रूर देखेंगे। पर हुआ सब उल्टा।

ससुर जी बोले, ''इसमें क्या है, ऐसा तो होता ही रहता है।''

सास जी बोलीं, ''फिर स्त्री का त्याग क्या है ? बड़े घर की बहू आखिर यह सब न सहेगी तो क्या झोंपड़ी वाली सहेगी.....हूं, यह क्या बात हुई।''

ससुर जी ने कहा, ''सब ठीक हो जाएगा, बहू को दो–एक बच्चे और होने चाहिए।''

''वही तो मैं कहती थी।''

सास–ससुर की ये बातें सुनकर शिवानी के सामने यह तस्वीर साफ होने लगी कि उसका पति कहां से आया है। उसके व्यवहारों और सोचने के पीछे आधार क्या है, उसकी सारी जड़ें क्या हैं ?

वह सोचने लगी–ये कैसे लोग हैं ? हर वक्त सिर्फ अपनी ही चिन्ता में रहते हैं। और चिंता भी कैसी ? कहीं हमारा कोई नुकसान न हो जाए, कोई हमारा कुछ ले न ले ? किसीकी क्या चीज़ हड़पने को मिल जाए ? लेना.....लेना..... सिर्फ लेना और हर वक्त उसके लिए नये से नये उपाय ढूंढते रहन.....

उस दिन शिवानी जब कोठी से बंगले के लिए रवाना होने लगी, तब उस रामहल्ला ने धीरे से पूछा :

''बहू, झूठ मत बोलना, हां।''

''पर बाबा, जहां कोई सच सुनने की वाला न हो तो ?''

''वहां चुप हीरह जाना क्या कम है।''

रामहल्ला ने उस दिन ज़रा रुककर पूछा था :

''बहू, तुम कोई आशा लेकर इस घर में आई थीं क्या ?''

''हां, न्याय की आशा से आई थी।''

''राम राम राम, इस कोठी में न्याय की आशा। नमक खाया है इस कोठी का, नहीं तो मैं मालिक–मालकिन से पूछता.....''

रामहल्ला का स्वर अचानक टूटकर रह गया।

''क्या कहते बाबा ?''

''यही कि तुम लोगों को इन्सान की परख नहीं है। तुम तो जानते हो सिर्फ वही माया.....वही धन.....। तुम तो झूठ की पूजा जानते हो, क्या जाने सच क्या होता है। पर कोई क्या करे इनसे बातें–तुम जाओ बहू, भगवान मालिक हैं।''

शिवानी अब तक रामहल्ला के लड़के मनसुख को ही जानती थी, उस दिन पहली बार उसे रामहल्ला का परिचय मिला। उसका विश्वास और पक्का हुआ कि मनुष्य का कितना गहरा सम्बन्ध उसके मां–बाप से जुड़ा होता है।

उस दिन कपूर हवेली से लौटकर संध्या के समय जब वह अपने बंगले पर पहुंची, तो देखा वही रेनू मुकर्जी बरामदे में खड़ी है।

माथे पर आंचल रखकर वह उससे बचकर अंदर जाने लगी। रेनू ने हंसकर कहा :

''अब आप मुझसे बचकर नहीं जा सकतीं।''

रेनू मुकर्जी को आमने–सामने उस तरह देखकर शिवानी में अब दुगना अपमान–भाव जगा। उसने माथा झुका लिया और चुपचाप भीतर ड्राइंग रूम में आ खड़ी हुई।

रेनू ने कहा : ''तो आप कुंवर की 'वाइफ' हैं ! मुझे उसी दिन शक पड़ गया.....।''

''कैसे आना हुआ ?''

''अब नहीं बता सकती।''

''नहीं, अब आप बता सकती हैं।''

''क्यों ?''

''अब मैं वह नहीं रही।''

''क्या ?''

''अब वह सब बताना भी ज़रूरी नहीं है।''

18

शिवानी एक दिन 'नवभारत' कार्यालय में बैठी अगले दिन के अखबार के लिए कुछ सामग्री तैयार कर रही थी। अब तक उसने विष्णुपद को उस रात की घटना के बारे में कुछ भी न बताया था। वह सोचती थी, ये बातें उसे बताने लायक नहीं हैं।

वह अपने मन के असंतोष से उस समय के भारतवर्ष–भर के असंतोष को जोड़ती थी। बंगाल में मनुष्य और प्रकृति के षड्यन्त्रस्वरूप शताब्दी का–उसके जीवन का सबसे विध्वंसकारी अकाल पड़ा था। उस महाकष्ट से मनुष्यों के मरने और मानवता के अपमान की दशा पढ़कर वह सोचती–जैसे परिवार से मेरा पाला पड़ा है–यही लोग जिम्मेदार हैं इस अकाल और इस विनाश के। और वह शर्म से पीली पड़ जाती।

जवाहरलाल नेहरू ने उन दिनों जेल से अपनी मर्मान्तक पीड़ा व्यक्त की थी। शिवानी उसे अखबार में देने के लिए हिन्दी में अनुवाद कर रही थी :

''अकाल पड़ा, शब्दातीत, कराल, भयंकर, निस्तब्धकारी.....कलकत्ता की हवेलियों के सामने.....चांदनी चौक की कपूर हवेली के सामने, बाराखंबा रोड पर मर्द, औरत और छोटे–छोटे बच्चे मरे पड़े थे। बंगाल और दिल्ली के अनगिनत गांवों और अन्य स्थानों पर मुर्दे पड़े सड़ रहे थे। मौत का हाथ हर जगह दिखाई पड़ता था। लेकिन ऐसी मौत का न कोई उद्देश्य था, न कोई मतलब, न कोई आवश्यकता। यह मनुष्य की अयोग्यता था, और बेरहमी का फल था। मनुष्य मनुष्य के लिए कितना निर्मम, स्वार्थी हो सकता है.....

विष्णुपद इस सामग्री को पढ़कर आश्चर्यचकित रह गया।

''इसमें यह क्या लिख दिया.....चांदनी चौक.....बाराखंबा रोड.....कपूर हवेली ?''

''ऐसा हो गया क्या ? पर अनजाने यह कितना सच लिख उठा है। बोलो, क्या यह सच नहीं है ?''

''सच तो है, पर इसका कोई तर्क नहीं है।''

''सच के लिए तर्क क्या ज़रूरी है ?''

''यह ज़रूरत मनुष्य ने पैदा की है।''

''क्यों ?''

''ताकि मनुष्य अपने सब अन्यायों से मुक्त हो सके।''

यह सुनते ही शिवानी जैसे कहीं छू गई। गम्भीर स्वरों में कहने लगी :

''मनुष्य अपने अन्यायों से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि दूसरा मनुष्य उसके अन्यायों को भोगता है और उसके खिलाफ सदा लड़ता है। अन्यायी की मुक्ति उसकी पराजय से भी नहीं हो सकती। वह तब हो सकती है जब स्वीकार कर ले कि वह अन्यायी है और उससे मुक्ति चाहता है।''

विष्णुपद की समझ में शिवानी की उस दिन की बातें बिल्कुल नहीं आ रही थीं। कहां–कहां से, क्यों उस तरह वह आवेश में भरी–भरी रहती थी, विष्णुपद की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

''कमल, तुम बहुत परेशान हो।''

''ऐसा लगता है ?''

''ऐसा लगता है कि तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो।''

''तुमसे अब भी कुछ छिपाया जा सकता है ?''

''तुम उतनी ही नहीं हो, जितना तुम्हें जानता हूं।''

''सच ?''

''तुम उतनी भी नहीं हो, जितना तुम अपने को जानती हो।''

''सच ?''

विष्णुपद ने उसके माथे को चूम लिया। उसकी आंखों में एकटक निहारने लगा।

''तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो।''

''सुनो, मैंने कुंवर से कह दिया है कि मेरा उसके संग अब रहना नहीं हो सकता।''

दोनों चुप रह गए। शिवानी उसी अकाल और विनाश की चर्चा करने लगी–जो मनुष्य के कमीनेपन का नतीजा है–उसके निम्नतम स्वार्थ भाव का। वह अकाल–विनाश अपने सूक्ष्म रूपों में क्या चारों तरफ नहीं है–जहां–जहां मनुष्य का वह स्वार्थ वह कमीनापन है। इस मूक विनाश–अकाल का लेखा–जोखा कौन करेगा ? ब्रजरानी को उसके स्थान से निर्वासित करके जो नुकसान–जो अकाल पैदा किया गया, उसकी पूर्ति कौन करेगा ?

''पर मेरे जीते जी वह नहीं हो सकता जिसका तुम्हें भय है।''

''क्या कहते हो ?''

''मैं हूं तुम्हारा.....हम दोनों एक संग रहेंगे और देखेंगे हमारा कोई क्या कर लेता है।''

शिवानी हाहाकर करके उसके अंक से लिपट गई।

''सारी शक्ति तुम्हींने दी है।''

''नहीं, सारी शक्ति का स्रोत तुम्हीं हो।''

''बाबू.....''

''तुम्हीं मेरी भारत माता हो, प्रिया हो, आजादी की लड़ाई हो, सब कुछ हो मेरी.....।''

शिवानी एकदम उदास हो गई।

''उदासी क्यों ?''

''तुम्हारे योग्य बनने के लिए शायद मुझे एक लंबा सफर तय करना होगा।''

''नहीं, मैं दुःख भोगने को कोई आदर्श नहीं मानता।''

''पर दुःख तो है–उसकी अनुभूति से क्या कोई बच सकता है ?''

''कमल !''

''दुःख, दर्द की चरम सीमा पार कर ही नई ज़िन्दगी शुरू होती है।''

यह कहती–कहती कमल खिड़की से कहीं दूर देखने लगी। अपने मन की खिड़की उस तरह पहली बार खोलकर जैसे दूर दिगन्त में देखने लगी, न जाने क्या दूर, बहुत दूर दीख रहा है। दूर कहीं कुछ जल रहा है। उस आग में जैसे कोई हिरन दौड़ रहा है। अबाबील पक्षियों का एक झुंड एक दिशा से दूसरी दिशा में उड़ता चला जा रहा है। उड़ते हुए भाव–विचार एक–दूसरे का पीछा कर रहे हें। कभी वह हिरन पीछे भाग रहा है.....कभी आगे.....कभी चुप खड़ा होकर न जाने क्या निहार रहा है।

विष्णुपद तब से शिवानी को अकेले नहीं रहने देता। दिन में काफी वक्त वह अखबार के काम में लगी रहने का प्रयत्न करती है। सुबह–शाम वह स्वयं बंगले पर उसके साथ रहता है। रात को वही तुलसी उसके संग रहती है।

एक दिन शिवानी के मुंह से निकला :

''लगता है, इस दुनिया में मेरा कोई नहीं–मैं कितनी अकेली हूं।''

''कितने सब तो हैं तुम्हारे।''

''हां, हैं तो.....ममा–पपा अभी हैं, पर एक क्षण ऐसा आ जाता है कि सब दूर छूट जाते हैं.....सिर्फ एक चीज़ साथ रहती है।''

''क्या ?''

''क्या बताऊं ? नहीं बताती।''

यह कहकर उस शिवानी अपने बंगले के पिछवाड़े के उस मैदान में इतनी तैज दौड़ पड़ी थी कि विष्णुपद उसे छू तक नहीं सका था।

''अच्छा, अब हाथ मार कर भागती हूं, पकड़ो। वन, टू.....थ्री।''

विष्णुपद फिर नहीं पकड़ सका उसे। वह हांफती हुई बोली :

''अच्छा तुम भागो, मैं छूती हूं तुम्हें।''

विष्णुपद भागा। पर बहुत दूर नहीं भाग सका, पकड़ा गया। शिवानी वहीं जमीन पर बैठकर बोली :

''मेरा मन करता है–मैं पहाड़ों पर दौड़ लगाऊं। छिप जाऊं, कोई मुझे ढूंढे।''

''कमल, तुम कभी–कभी बिलकुल बच्चों जैसी बातें.....''

''हां, कमल बाबू.....मैं बिल्कुल बच्ची हूं.....शिशु.....चाइल्ड.....इसी औरत के शरीर में.....हां.....''

और ठहाका मारकर हंस पड़ी। उस अवाजा को सुनकर दरबान भागा आया। और उन्हें बैठा देखकर ताज्जुब से बोला :

, ''इधर कोई आवाज हुई है साहब ?''

''आवाज ? नहीं तो ?''

शिवानी ने बताया, ''हां हुई है–मैं हंसी थी।''

दरबान चला गया। शिवानी बताने लगी–''दरबान, रिसेप्शनिस्ट, नौकर, चपरासी सब मेरी रिपोर्ट देंगे साहब को। मेरी भी फाइल बनेगी। क्या समझते हो मैं कितनी लाट साहब हूं.....''

इस तरह अपने पर मज़ाक करती–करती वह अचानक गम्भीर होकर बोली :

''जो घरौंदा बनाया था, उसे जलाकर खाक स्वाहा कर दूंगी। जो स्वप्न देखकर आई थी, उसे पूरी तरह से मिटा दूंगी। क्योंकि उसे मैंने बनाया था। क्योंकि वह झूठा था। यह मेरी प्रतीति किसी असंतोष से नहीं उपजी है–मेरी निजी अनुभूति से पैदा हुई है। सिर्फ ब्याह–पातिव्रत्य–जिसे मैं अब जंगल समझती हूं, और जिसमें अब आग लग चुकी है–इसमें से सिर्फ बाहर निकलने की ही बात होती, तो भी मैं समझती कि यह सिर्फ पलायन है–कहां नहीं है वह जंगल, चारों तरफ तो है। नहीं, मैं कहीं जाना चाहती हूं–अगर यही न होता तो शायद इतना कष्ट भी न होता। समस्या यह है कि किस रास्ते से, किसे कैसे सब कुछ देकर वहां पहुंच सकूंगी ?''

विष्णुपद ने उसका हाथ पकड़कर कहा :

''कमल, यह आग.....यह आग.....''

आगे वह बात पूरी करने में असमर्थ रहा। शिवानी उसीके सूत्र को जैसे पकड़कर बोली :

''यह आग, डरते क्यों हो ? तुम्हींने तो मुझे इतना निर्भय बनाया.....उसी नंदिनी ने, उसी पंचानन और ब्रजरानी ने.....यह आग, क्या ज़रूरी है कि मेरी देह की आग हो.....मेरी चिता की आग.....यह यज्ञ की ज्वाला भी तो हो सकती है ? मूल यह है कि इस ज्वाला में आहुति किस चीज़ की है..... ? यह किसे समर्पित है ? इसका मंत्र क्या है–वह कौन है जिसे यह सब कुछ.....।''

वे पतझर के दिन थे। बंगले के सभी बड़े वृक्षों से पत्ते झर रहे थे। बाहर बाराखंबा रोड पर नीम और शिरीष के वृक्षों से दिन–रात पत्ते झर रहे हैं। उन्हें देखकर शिवानी में जो आनन्द–भाव उपजता है, उसके लिए न कोई शब्द हैं न कोई उपमा। वृक्ष से इस तरह पत्तों का लगातार गिरते रहना.....सब तरह के रंगों और आकारों के पत्ते जिस शान्ति से पृथ्वी पर झर रहे हैं–जिस लय और गति के साथ–जिस तरह भारमुक्त होकर, सृष्टि उन्हें कितना बड़ा सौभाग्य दे रही है। इस पतझर को देखना, कालमुक्त, आत्ममुक्त होने की जैसे प्रत्यक्ष प्रतीति है शिवानी के लिए।

कुंवर के लौट आने की तिथि कल है। शिवानी के वृक्ष से एक भी पत्ता झरकर नीचे कहीं गिर रहा है। सोचती है, मनुष्य कितना अस्वाभाविक होता है–न उसमें पतझर आता है, न उसमें कोपलें फूटती हैं.....न पुष्प न सुगंधि। वह सिर्फ संतान को जन्म दे सकता है। पर क्या वह सचमुच ऐसा करता है ?.....क्या प्रकृति उसे अपना साधन नहीं बना देती.....मनुष्य की नस्ल कायम रखने के लिए ?

उसकी भेंट विष्णुपद से दोपहर को हुई। वह दफ्तर के अपने कमरे में बैठा स्टेनों को सम्पादकीय लिखा रहा था–''परिवर्तन के लिए कितना दबाव पड़े, ब्रिटिश राज टस से मस नहीं हो रहा है। उन्नीस सौ पैंतालीस के मध्य में ऐसी उम्मीद की जाती थी कि पूर्वी एशिया में मित्र देशों की फौजी कार्रवाई के लिए भारत को खास अड्डा बनाया जाएगा और जापान के साथ दीर्घकालीन युद्ध होगा। इसीलिए कांग्रेस के सभी लीडरों को छोड़ दिया गया और सरकार के नये प्रस्ताव पर विचार करने के लिए सभी राजनीतिक नेताओं का एक सम्मेलन शिमला में होने जा रहा है.....जो दरअस्ल कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एक अखाड़ा होगा.....''

शिवानी ने टोक दिया :

''यह संपादकीय है या इतिहास ?''

विष्णुपद हंस पड़ा :

''बताओ न, जो कुछ इस वक्त हिन्दोस्तान में हो रहा है, तुम्हें क्या लगता है ?''

''सिर्फ एक दया और समझौता।''

और भारत की स्वतन्त्रता ?''

''यहां स्वतन्त्रता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यहां सिर्फ एक ही घटना घटेगी–'ट्रांसफर ऑफ पावर' की.....''

यह कहकर शिवानी उदास हो गई। विष्णुपद उसके गम्भीर मुख के आरपार कुछ देखने लगा। शिवानी बोली, ''तुम्हें नंदिनी, पंचानन और ब्रजरानी भूल जाते हें क्या ?''

''मुझे गाली देना चाहती हो ?''

''तुम्हें इतिहास नहीं लिखना चाहिए, इतिहास बनाना चाहिए.....'नवभारत' में वह छपना चाहिए जो इस राजनीतिक झूठ का पर्दाफाश कर सके–अंगरेज हमारे मुल्क की सारी कमजोरियां, सारी बीमारियां जानता है, वह इसीसे सौदा कर लेगा। वह चंद लोगों के हाथ राजसत्ता सौंपकर चला जाएगा और सारा मुल्क फिर सैकड़ों वर्षों तक अपने ही लोगों का गुलाम बना रह जाएगा। सोचो, उस आजाद हिन्दुस्तान में तब स्वतन्त्रता की लड़ाई कौन लड़ेगा ?''

शिवानी की उस दिन की बात ने विष्णुपद को झकझोर दिया। उसने प्रार्थन के स्वरों में कहा, ''संपादकीय तुम्हीं लिखो।''

''चलो, तुम्हें पतझर दिखा ले आऊं।''

''और यह संपादकीय ?''

''आकर लिख लेना।''

विष्णुपद को अपने संग लिए शिवानी दिल्ली की सड़कों पर घूमने लगी और झरते हुए पत्तों को दिखा–दिखाकर आनन्द से अभिभूत होने लगी।

'6आओ बाबू, इन्हीं गिरते हुए पत्तों की तरह मुक्त हो जाएं।''

शिवानी की आंखें, उसके दर्शन से विष्णुपद को जो कुछ मिलने लगा था, वह अपूर्व था।

चलते–चलते दोनों दिल्ली से दूर तुगलकाबाद के खंडहरों में चले गए। शाम का अंधेरा गहरा हो चला था। नीम के एक पेड़ के नीचे गाड़ी रोकर दोनों नीम के चारों ओर घूमते हुए चलने लगे। कभी ज़रा–सी बात होती, फिर वही मौन।

शिवानी के वृक्षों में वही दर्द उठने लगा। धीरे–धीरे इस बार वह दर्द उसकी नाभि से ऊपर बढ़ने लगा। उसने पढ़ा था, मनुष्य के भीतर अनेक कमल होते हैं–विभिन्न चक्रों में–मूलाधार चक्र में पहला कमल, नाभि पर दूसरा कमल, हृदय पर तीसरा, कंठ पर चौथा, माथे पर पांचवां और अंत में सहस्रदल कमल।

विष्णुपद की बांहों में सोई हुई वह आज पहली बार उन कमलों को अपने भीतर अनुभव करने लगी। सहसा उसे लगा, उन कमलों से असंख्य मछलियों, भौंरों और सूर्य–किरणों के स्पर्श हो रहे हैं। उसने अपने ऊपर पूरी शक्ति से विष्णुपद को जकड़ लिया। उस दिव्य मिलन में सूरज की किरणें बरसने लगीं। कमल खिलने लगे। मछलियां, भौंरे शंत होते गए। और चारों ओर, भीतर–बाहर एक सुगन्धि फैलने लगी–जैसे यज्ञ की ज्वाला फैलने पर होती है।

दोनों के ऊपर नीम के पत्ते झरते रहे–झरते रहे। उनके नंगे शरीर पर एक संगीत बरसता रहा। दोनों कालमुक्त होते रहे। अजब लय.....अजब संगीत।

एक एकान्त 'वह'

एक एकान्त 'वह'

दो एकान्त एकाकार होते गए और नीम के पत्तों की चादर से सरसराने लगे।

युग–युगों का वही प्रश्न–कौन किसे प्यार करता है ? वह क्या है ? किसे देना है–कैसे देना है–यह प्रश्न, यह जिज्ञासा एक अनुकंपा, कृतज्ञता हो गई–ईश्वर के प्रति, प्रकृति के प्रति।

'वह' और 'वह'।

इन दोनों ने मिलकर एक नये 'वह' का निर्माण किया–एक ऐसा निर्माण जिसके व्यक्तिव की प्रखरता अब तक देखी न गई हो।

दोनों की समाधि तब टूटी, जब उनके ऊपर चांद की रोशनी छनछनकर बरसने लगी। दोनों ने एक–दूसरे को निहारा–उस नंगे तन से फूटती सुन्दरता के पीछे छिपी हुई मुक्ति को, आनन्द को दोनों जैसे पीने लगे। मानव–शरीर भी इतना मुक्तिदायी, आनन्दमय, दिव्य हो सकता है उन्हें नहीं पता था।

वहां से उठकर जब दोनों कार में बैठे, तब भी दोनों परस्पर एक–दूसरे को निहारते रहे–जैसे उन्होंने इससे पहले एक–दूसरे को कभी देखा ही न हो।

दोनों जैसे बिल्कुल गूंगे हो गए थे। जैसे दोनों शब्दों के संसार को पार कर निःशब्द लोक में चले गए थे। जहां सिर्फ देखकर कृतज्ञ होना पड़ता है और अनुकम्पा से भर जाना होता है।

रास्ते में एक जगह शिवानी ने विष्णुपद की बाईं हथेली पर अपना मुख रखकर कहा :

''मैं पहले सिर्फ पत्नी थी.....अब केवल प्रिया हूं।''

''मैं बताऊ ?''

''हां।''

विष्णुपद ने गाड़ी रोक दी और कमल के सारे मुख पर प्यार बरसाकर कहा :

''मैं इससे पहले सिर्फ एक विद्रोही था, अब केवल एक पुरुष हूं।''

''पुरुष !''

''हां, पुरुष माने 'तुम'। मैं अब सिर्फ 'तुम' हूं।''

''पर 'मैं' 'तुम' नहीं हूं।''

''तभी तो 'मैं' 'तुम' हूं।''

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। गाड़ी तेज चल पड़ी। विष्णुपद ने पूछा, ''कमल, तुमने क्यों कहा–तुम्हें एक लम्बा सफर तय करना होगा ?''

वह बोली, ''शायद तुम्हें भी वह यात्रा पूरी करनी होगी।''

''क्यों ?''

''भूल गए, तुम्हींने तो कहा था–मनुष्य ने अपने तर्कों की एक दुनिया बना रखी है और हम उसी दुनिया में सांस लेते हैं।''

''नहीं, ये बेकार की बातें हैं।''

''मतलब, हम दोनों की यात्रा खत्म हो गई ?''

शिवानी ने यह बात इतनी गंभीरता से कही कि विष्णुपद की गाड़ी फिर रुक गई। वह उसके गंभीर मुख को अपलक देखने लगा। शिवानी ने मुस्कराकर कहा :

''हमारी यात्रा अब शुरू हुई है बाबू।''

उसने बाबू शब्द का उच्चारण इस तरह किया जैसे कोई लोक–गीत का टुकड़ा गाया हो।

कुंवर विदेश से बहुत सारा सामान लेकर लौटा था–कपड़े, गहने, अंगूठियां, घड़ियां, सजावट की तमाम बेशकीमती चीजें। एक विशेष आश्चर्य की चीज़ लेकर आया था–शीशे के केस में बन्द एक उपवन–'फेयरी गार्डन'। उसमें तरह–तरह के छोटे–छोटे पेड़–पौधे थे, फूल थे, लतरें थीं। उसका अपना स्वचालित तापमान था, भोजन, हवा, पानी का उसका अपना प्रबन्ध था।

इसे देखने नई दिल्ली के तमाम लोग आए–बड़े से बड़े लोग, नये धनी लोगों के तो तांते बंधे रहे।

कुंवर ने विदेशी चीजों के उपहार जिस किसीको दिए, वे सब खुशी से, बल्कि गर्व से फूले न समाए। शिवानी के लिए यह बड़े आश्चर्य की बात हुई–एक ओर देश विदेशी से आजादी की लड़ाई में जीत के स्वप्न देख रहा है, पर दूसरी ओर वह विदेश से किस तरह अपने अंतःकरण के साथ गुलाम हो रहा है।

वह 'फेयरी गार्डन' ड्राइंग रूम में लगाया गया। और अगले शनिवार की रात कुंवर ने बंगले पर एक शानदार दावत दी। इस दावत में एक भी अंगरेज आमंत्रित न था।

शिवानी ने सोचा–क्योंकि वह अंगरेजों के सामने इंग्लैण्ड, यूरोप के बारे में उतनी लंबी–चौड़ी बातें न कर सकेगा और दूसरे उसे नई दिल्ली वालों पर ही रोब डालना था।

मगर असली रहस्य कुछ और ही था। कुंवर ड्राइंग रूम से बाहर निकलकर बरामदे में किसी नये रईस से बातें कर रहा था।

''हो सकता है, आजादी मिल जाए। इसलिए अब अंगरेजों से ज़रा.....क्या समझे ?''

शिवानी ने गौर से देखा था–वह दूसरा व्यक्ति वही था, मनोहर जैन, नया लखपती। वह उस वक्त म्युनिसिपल कमेटी का प्रेसीडेण्ट हो चुका था।

उसने कहा, ''हां, तभी तो मैंने कांग्रेसियों को चंदा–सहायता वगैरह देना शुरू कर दिया है।''

''मैं भी अब इनसे रिश्ते कायम करने शुरू करूंगा। देखो न, इस पार्टी में मैंने किसी अंगरेज दोस्त को नहीं बुलाया। भई, उन्हें मैंने अलग से चेम्सफोर्ड क्लब में काकटेल–डिनर पार्टी दे दी है।''

यह कहते हुए कुंवर अजीब तरह से हंस पड़ा था।

अगले दिन कुंवर ने अपने पूरे स्टाफ और नौकर–चाकरों को उनकी तनख्वाह के अनुसार नकद रुपये इनाम के तौर पर बटवाए।

इस तरह जब वह विदेश की यात्रा के प्रभाव से कुछ मुक्त हुआ तब उसने एक दिन शिवानी की ओर ध्यान दिया।

उसे अपनी अनुपस्थिति में शिवानी की गतिविधियों के बारे में जो गुप्त रिपोर्ट मिली, सबको फाड़ डाला। शिवानी से बोला :

''यह सच है, हमारे यहां पत्नी को वह दर्जा नहीं दिया गया, जो उसे मिलना चाहिए। उसके बारे में हम लोगों के रवैये भी निहायत गलत हैं।'' शिवानी को बड़ा कौतूहल हुआ।

''आप पर विदेश का असर अभी ताजा है न.....।''

''नहीं, बात यह है कि हमें कोई ट्रेनिंग भी तो नहीं दी जाती कि वैवाहिक जीवन क्या होता है–पति–पत्नी को कैसे रहना चाहिए, वगैरह–वगैरह।''

शिवानी को सचमुच कुंवर के व्यवहारों और विचारों में काफी परिवर्तन दीखने लगा। 'बेड रूम' की घण्टी खत्म हो गई। लंच और डिनर शिवानी के साथ लेने लगा। उससे अधिक से अधिक बातें करना चाहने लगा। सबसे विशेष बात–वह अब शिवानी में भी रुचि लेने लगा।

और एक दिन कुंवर ने खुद पूछा :

''तुमने क्यों कहा था, तुम अब मेरे साथ नहीं रह सकती ?''

''क्योंकि हमारा कोई भीतरी संबंध नहीं है।''

''वह क्या बला होती है ?''

यह बात जिस तरह कुंवर ने कही, शिवानी को एकदम अपमान–सा लगा।

''वह सम्बन्ध तुम्हारे लिए एक बला है.....यही तर्क है मेरा।''

''तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।''

''तो मैं क्या करूं ?''

''क्यों, तुम बदल नहीं सकतीं ?''

''क्योंकि तुम नहीं बदल सकते, यह मैंने दस वर्षों तक तुम्हारे साथ संघर्ष करके देख लिया।''

''बुनियादी बात यह है कि तुम में घमंड बहुत है।''

''वह घमंड तुम्हारे साथ मिटता क्यों नहीं ?''

''यह तुम्हारी बीमारी है।''

यह सुनकर शिवानी उसके सामने से उठ गई।

इसी तरह प्रतिदिन एक मुठभेड़ होती और एकदर्दनाक चुप्पी, ठंडापन उन दोनों के बीच खिंच जाता। शिवानी के लिए यह इतना असह्य हो उठता कि लगता उसका दम घुट जाएगा।

ठीक होली का दिन था वह। विजय छुट्टियों में देहरादून से आया था। विजय के साथ शिवानी अपने–आपको भूलने की कोशिश कर रही थी। वह अपने उस पुत्र के साथ दून स्कूल की पढ़ाई, वहां के होस्टल–जीवन और उसके जीवन के बारे में तमाम बातें जानने की कोशिश कर रही थी, और उसे अपनी ममता, मातृत्व का संपूर्ण बोध दे देना चाहती थी।

मां–बेटे बहुत खुश थे। बड़े आनन्द से होली का त्यौहार मना। शिवानी अपने पुत्र के साथ उतने दिनों में यह महसूस करने लगी कि उसके साथ उसका विजय होता तो शायद स्थिति इतनी भयानक न होती। पर यह उसका ख्याल ही था, जो एक दिन झनझनाकर टूट गया।

एक दिन विजय मां से अजीबोगरीब बातें करने लगा : ''मां, पिताजी कहते हैं, तुम्हारी तबियत खराब है। कोई बीमारी है तुम्हें ?''

''तुम्हें लगता है कि मैं बीमार हूं ?''

''पता नहीं, पिताजी कह रहे थे।''

''और क्या कह रहे थे ?''

''कहते थे कि तुम हरदम उनसे झगड़ती हो।''

''तुम इतने दिनों से यहां हो, कभी वह झगड़ा देखा है ?''

''पता नहीं, वह कह रहे थे।''

शिवानी बोली, ''उन्हींका कहना तुम्हें सच मानना है या मेरी भी सुनोगे ?''

''बताओ न, क्या बात है ?''

शिवानी कुछ बताने चली, पर कांप गई। पुत्र से वे बातें बतानी कितनी शर्मनाक है। यह कैसा संसार है, घर–परिवार है, जहां पुत्र को मां से इस तरह तोड़ा जाता है। उसके विरोध में खड़ा किया जाता है। वह बोली, ''बोलो, क्या बताऊं तुझे ?''

''पिताजी यह भी कहते थे, तुम उनके साथ नहीं रहना चाहतीं क्योंकि तुम्हारा दिमाग खराब है।''

शिवानी से आगे कुछ न बोला गया। वह सोच भी नहीं सकती थी कि अपने पुत्र को इस तरह कोई आग में डाल सकता है, जिसमें कहीं ज्वाला नहीं, सिर्फ धुआं है।

''जाओ बेटे, तुम कहीं खेल आओ। कहीं घूम आओ।''

''कहां मां ?''

''चांदनी चौक बाबा–दादी से मिल आओ। वहां इतने बच्चे हैं.....लड़के हैं..... ।''

''पिताजी कहते थे वहां मत जाओ।''

''अच्छा, विष्णु अंकल के यहां हो आओ–दरियागंज, उनका प्रेस, अखबार देख आओ।''

''पिताजी कहते थे, विष्णु अंकल हमारे खानदान का कलंक हैं।''

शिवानी जैसे गुस्से में चीख पड़ी, ''क्या पिताजी–पिताजी' की रट लगा रखी है। तू भी खुद सोचता है या निरा बुद्धू है।''

''मुझे डांटती क्यों हो ?''

विजय को उसने अपने अंक में भर लिया और उसे चूमती हुई बोली, ''क्योंकि तुम मेरे प्यारे सुंदर बेटे हो। मैं चाहती हूं, तम समझदार बनो। सबसे अलग तरह के इन्सान बनो। चीजों को अपने–आप समझने की कोशिश करो। पिताजी ने मेरी बुराई तुमसे क्यों की ? मैंने क्यों नहीं की ? यह तुम्हारे सोचने की बात है कि नहीं ? बोलो.....अब हर बात में 'पिताजी–पिताजी' या 'माताजी–माताजी' तो नहीं कहोगे ?''

''तुम पिताजी के बारे में मुझे क्यों नहीं बतातीं ?''

''वे बातें तुमसे नहीं कही जानी चाहिए ?''

''क्यों ?''

''यह तहजीब के खिलाफ है।''

''उन्होंने क्यों कहीं ?''

''छोड़ो, भूल जाओ, उन्हें ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए थीं।''

विजय को वह मां शिवानी कभी कुछ गाकर सुनाती। कभी उसे कोई कहानी सुनाती। बंगले में लगे हुए एक–एक पेड़–पौधे के नाम बताती। पौंड पर, लॉन में, पेड़–पौधें पर जो पक्षी आते, सबके नाम याद कराती।

एक दिन पूछा, ''अच्छा बताओ बेटे, राम किसके पुत्र थे ?''

विजय ने झट उत्तर दिया, ''कृष्ण के।''

शिवानी हैरान रह गई। उसके स्कूल में क्या यही पढ़ाई होती है।

''हां मां, वहां सब अंगरेजी है–वहां कहीं भी राम–कृष्ण वगैरह नहीं हैं।''

उस दिन शिवानी ने पुत्र को राम और कृष्ण की पूरी कहानी बताई।

''बोलो, अच्छी लगीं ये कहानियां ?''

''उतनी अच्छी नहीं हैं जितनी अंगरेजी की.....''

शिवानी अपने उस पुत्र का मुख निहारती रह गई। उसे अपना वह स्वप्न फिर याद आया कि वह खुद अपने पुत्र को घर पर पढ़ाएगी। उसे स्कूल छोड़ने और लेने जाएगी। उसके संसार को वह भावों, विचारों और उत्तम संस्कारों से भर देगी।

पर इतना भी, यह भी कितना असंभव हो गया। कोई किसे दे, लगता है वह बिल्कुल सामने है, बिल्कुल पास में–पुत्र के रूप में, पति और स्वजन के रूप में, पर कहां ? यह सोचकर शिवानी अब हैरान नही होती।

विजय को वापस देहरादून गए आज ठीक तेरह दिन हो गए। पर शिवानी को वह क्षण अब तक नहीं भुलाया जा पा रहा है। उसने पिता को तो प्रणाम किया, मां को क्यों भूल गया ? बच्चा है, भूल गया होगा, शिवानी अपने–आपको शांत करना चाहती है, पर वह अपने ही तर्कों में फिर फंस जाती है।

मगर इन छोटी–छोटी बातों में क्या रखा है ? नहीं–नहीं, सब इन्हीं छोटी–छोटी बातों में तो रखा है। मनुष्य में इतनी आशा, दूसरों से इतनी अपेक्षाएं क्यों हैं ? क्यों नहीं वह इनसे ऊपर उइ जाता ? क्योंकि यही जीवन है। नहीं, यह जीवन नहीं है, जो दूसरों की दया पर, आशा पर टिका हो। इस आशा–आकांक्षा की डोर से उसे तोड़कर उनसे ऊपर उठ जाना है।

एक दिन उसे लगा–उसके पुत्र ने भी उसे कहीं मुक्त किया है, ठीक जैसे वह अपने स्वप्नों से मुक्त हुई है।

वह खुश थी उस दिन, जब वह घटना घटी। उसे पहले से कुछ भी आभास न था। शायद वैसा कुंवर को भी न था। हां, शायद।

सुबह नाश्ते का वक्त था। कुंवर ने कहा, ''डाक्टर आएंगे तुम्हारे 'चेकअप' के लिए।''

''क्यों, मुझे क्या हुआ है ?''

''यह तो वही 'साइकियाट्रिस्ट' डाक्टर बताएगा।''

''क्या बताएगा ?''

''मुझे मालूम होता तो मैं उसकी दवा न कराता।''

''तुम अपनी दवा क्यों नहीं कराते ?''

''मुझे क्या हुआ है ?''

''तुम बीमार हो, अपने खानदानी रोग से।''

''जबान संभालकर निकालो।''

''तुम अपने–आपको नहीं संभाल सकतके ?''

''नहीं, बिल्कुल नहीं। अब बिल्कुल नहीं।''

''तो ?''

''तो क्या ?''

शिवानी के भीतर जैसे कुछ झनझनाकर गिरा और टूट गया। वह अपने कमरे में गई। अपनी सिर्फ वही छोटी–सी अटैची ली और बंगले से बाहर निकलने लगी।

''कहां जाती हो ?''

''अब यहां नहीं रह सकती। यह घर मेरा नहीं।''

''और मैं ?''

''कुछ भी नहीं।''

शिवानी सधे पैरों से चलकर उस बंगले के बाहरी फाटक को पार कर सड़क पर चली गई।

19

कुंवर को विश्वास था, शिवानी रात तक घर वापस आ जाएगी, नहीं तो उसे खबर मिल जाएगी कि वह कहां है।

पर रात बीत गई।

सुबह उसने टेलीफोन करना शुरू किया–पहले कपूर हवेली में, फिर विष्णुपद के यहां, और अंत में उसके पापा–मम्मी के पास–इलाहाबाद। उसने कहीं भी यह नहीं बताया कि शिवानी कल सुबह घर छोड़कर बाहर गई है, बल्कि तरह–तरह सेउस सच्चाई को पूरी तरह से छिपाकर कुछ इस तरह बातें करता कि उसे शिवानी के बारे में पता भी चल जाए और लोगों को अनुमान भी न लग सके कि वाकया क्या है।

पर जैसे–जैसे एक के बाद दूसरे दिन बीतते गए, कुंवर की परेशानी बढ़ती गई। अब उसने अपनी सारी शक्ति लगानी शुरू की। पुलिस पता लगाने लगी। उसके स्टाफ के लोग खोज पर लगाए गए। पर यह सब गुप्त रूप से–कहीं किसीको कानोकान न खबर लग सके। पर नौकरारी तुलसी ने जाकर विष्णुपद को बता दिया।

विष्णुपद ने कुंवर को फोन किया। कुंवर ने उससे बड़े गलत ढंग से बातें कीं। वह हैरान न हुआ। सीधे उसके पास गया। आमने–सामने जो बातें हुईं उससे विष्णुपद को ज़रूर हैरानी हुई। कुंवर ने कहा :

''मुझे इसकी चिंता नहीं कि वह कोई गलत कदम उठाए–मेरा मतलब है–वह आत्महत्या नहीं कर सकती।''

विष्णुपद गुस्से में भर गया, ''आप इस तरह की बेहूदी बातें बंद कीजिए, आपको पता नहीं है कि इस घटना का मतलब क्या है ?''

''कैसी घटना ?''

''शिवानी का इस तरह घर छोड़कर चला जाना।''

''इसमें क्या है, फिर लौटा आएगी।''

''आपको शर्म आनी चाहिए। उसने इस तरह घर को छोड़कर साबित कर दिया कि हम सब झूठ हैं–अर्थहीन हैं। ये बड़े–बड़े घर, यह धन, यह इज्जत सब बेकार है।''

यह कहकर विष्णुपद अपनीकार लिए दिल्ली की सड़कों पर चक्कर काटने लगा। उसका विश्वास था, कमल कहीं इन्हीं सड़कों पर घूम रही होगी। वह निरंतर अकेली कहीं चल रही होगी।

उसे याद आने लगा, शिवानी ने अभी पिछले दिनों ही कहा था, ''तुम्हारे पास आने के लिए, मतलब तुम्हें पाने और तुम्हें अपने–आपको देने के लिए मुझे 'समय' चाहिए। समय को नहीं जानते ? समय ही तो सब कुछ है।''

विष्णुपद दिल्ली की सारी सड़कों पर सर्वत्र उसे ढूंढता हुआ घूम रहा था। कमल उसे चारों ओर दीखती थी। हर पेड़–पौधों के पीछे, हर गति के पीछे, हर लय और रूप–आकार के पीछे। उसे जहां कहीं भी हरियाली दीखती, जहां कहीं भी पेड़ से पत्ता गिरता, वह उसमें कमल को देखने लगता। मिल ने उसे जीवन का नया अर्थ दिया। उसीने यह अनुभव दिया–स्त्री कितनी महान् दिव्य सृष्टि है प्रकृति की। अगर स्त्री न होती, तो न कोई हमारी सभ्यता होती, न कोई संस्कृति। इस विश्व में जो कुछ भी हो रहा है मनुष्य द्वारा, उसके पीछे वही स्त्री है–वह कमल.....वही शिवानी। उसीसे यह अनुभूति उसे मिली है कि स्त्री जब देती है तो कितना–कितना कुछ दे देना चाहती है–इतना कि उसका अंत ही नहीं होता। और जब वह नहीं देना चाहती, या नहीं दे पाती तो उसके अपार कष्ट, करुणा का भी कोई अंत नहीं होता।

शाम हो गई। गाड़ी का पेट्रोल खत्म हो गया। एक पम्प पर पेट्रोल भराते हुए वह सोचने लगा–हम सबने मिलकर.....इस पूरे पुरुष समाज ने कमल का कितना बड़ा अपमान किया। ये सारे घर झूठे हो गए। उसने मुझ तक पर भी विश्वास नहीं किया। न जाने कहां चली गई।सहसा उसे शिवानी की.....कमल की एक बात याद आई।

उसने कहा था, ''देने–लेने के लिए बहुत बड़ी तैयारी होनी चाहिए.....संस्कार और एक दर्शन.....''

आज इस समय जब वह कमल उसके पास नहीं है, तब वह प्रश्न उसे घूर रहा है।

–बताओ क्या है वह दर्शन ?

–यह जीवन ही क्या है ?

–नहीं, नहीं, इस सृष्टि का रहस्य ही क्या है ? जन्म और मृत्यु, बस ?

–हां, हां, नहीं। हां, यह जीवन उस क्षण शुरू होता है, जब मनुष्य अपने–आपको इस व्यापक विश्व, भूमा, अनंत सृष्टी से जोड़कर देखता है। जब तक वह सिर्फ अपने–आपमें घिरा है, तब तक वह जन्म और मृत्यु से परे कुछ नहीं सोच पाता। यही है। मृत्यु।

रात घिरने लगी। वह पूरी दिल्ली की खाक छानक कनाट प्लेस लौट आयाथा। रीगल के सामने के मैदान में कार छोड़कर वह पैदल घूमने लगा। जब तक शिवानी का पता नहीं लगा लेगा, वह इसी तरह घूमता रहेगा।

न जाने कौन–सी हवा चल रही थी। जमीन पर गिरे हुए पत्ते, फटे हुए अखबार और कागजों के टुकड़े हवा में उड़ते और कनाट प्लेस के बरामदों में टकराकर रह जाते। उसे लगता–शिवानी हीं इन्हीं सूने बरामदों, इन्हीं घुमावदार चक्करों में चल रही होगी। उसकी वह चाल–उसकी वे आंखें, उसका वह देखना, चुप हो जाना, कहने से अधिक अर्थ देना, वह सब कुछ उसके चारों ओर बिछा रहता, पूरे चांद की चांदनी की तरह और वह उसीमें चलता होता।

रात के साढ़े नौ बज रहे हैं।

उसके कानों में न जाने कहां से जय–जयकार, 'भारत माता की जय' के तुमुलनाद सुनाई देते हैं।

भारत आजाद हो गया !

हाउस आफ कामन्स की ऐतिहासिक घोषणा !

प्रधानमंत्री एटली ने घोषित किया.....

हिन्दुस्तान के विभाजन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

वेवल के उत्तराधिकारी लार्ड लुई माउंटबेटन का यह काम रह गया कि वे ब्रिटिश राज्य के समापन का कार्य पूरा करें।

ब्रिटिश अनुदार दल के नेताओं ने भारत में विध्वंस की भविष्यवाणी की।

चर्चिल ने कहा :

''भारत को केवल विभाजन का ही संकट नहीं उठाना पड़ेगा, बल्कि विखंडन और सत्यानाश का भी।

अंगरेज स्वेज नहर भी न पार कर पाएंगे कि हिन्दुस्तान–भर में आग लग जाएगी और रक्षा में अंगरेजों को भारत लौटना पड़ेगा।.....भारत को शासन सौंपते हुए वस्तुतः हम भुस–भरे पुतलों के हाथों में शासन दे रहे हैं, जिनका कुछ ही वर्षों में कोई नामोनिशान न रह जाएगा।''

विष्णुपद बेहद उदास कनाट प्लेस की एक सड़क पर चल पड़ता है–वैस्टन और ईस्टर्न कोर्ट से पहले जामुन के पेड़ के नीचे एक क्षण रुक जाता है और चिल्ला पड़ता है :

''कमल !''

शिवानी सामने से सड़क पार करती हुई एक बड़े होटल के फाटक की ओर बढ़ रही थी।

''कमल !''

विष्णुपद की सांसे फूलने लगी थीं। वह कुछ बोल नहीं पा रहा था। शिवानी बिल्कुल सहज और शांत थी। प्याजी रंग की साड़ी और गोरे माथे पर उसी रंग का बड़ा–सा टीका। वही बड़ी–बड़ी लंबी आंखें, शांत भौंहें। उसी तरह मुस्कराती हुई बोली, ''हैलो, बाबू !''

जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो। कपूर हवेली में जो तब से भूचाल आया है, बाराखंबा रोड के बंगले पर जो सन्नाटा घिरा है, इलाहाबाद के पपा–ममा में जो दुःख–दर्द छाया है, उन सबसे जैसे वह बिल्कुल असंबद्ध हो.....वैरागी.....

वही फिर बोली, ''ऐसे क्यों घूर रहे हो ?''

चुपचाप विष्णु ने माथा झुका लिया।

वह बोली, ''तुम कहना चाहते हो, तुम्हारे यहां क्यों नहीं आई ?''

''हां !''

कमल हंस पड़ी।

विष्णुपद उसे देखता ही रह गया। उससे परे उस कमल को जिसका अनुमान तक नहीं लगाया जासकता।

''तुमने किसीको अपने बारे में बताया क्यों नहीं ?''

''क्या यह इतना आसान है ?''

विष्णुपद चुपचाप उसे सुनता रहा। एकाएक बोली :

''सुना है भारतवर्ष आजाद हो गया।''

''हां, सुना है।''

''कल का संपादकीय लिख लिया ?''

''नहीं।''

''क्यों नहीं ?''

''सुबह से ही घूम रहा हूं।''

''तुम इतने दुःख से क्यों बोल रहे हो ?''

शिवानी के इस प्रश्न में एक अजीब ज्वाला थी। वह उसे छूकर बोली, ''प्रेम में कभी कोई दुःख नहीं, कोई पश्चात्ताप नहीं, वरना इस संसार में और रह ही क्या जाएगा। जाओ, अपना काम करो.....प्लीज़ जाओ।''

विष्णुपद लौट पड़ा। उसे सुनाई पड़ा :

''अच्छा, गुड नाइट.....ठीक से जाना, हां।''

प्रेस पहुंचने पर उसके सामने बड़ी से बड़ी खबरों का ढेर लगा हुआ था। वह सब खबरों, सारी घटनाओं में आज उसी कमल और स्वयं को देख रहा था। कमल का वह शांत मुख.....विश्वास–भरी आंखें। वह खबरें पढ़ता जा रहा था :

''उत्तराधिकार का युद्ध.....जिन्ना और मुस्लिम लीग का सीधी कार्रवाई के दिन का उद्घोष.....भयंकर नर–हत्या और लूटपाट.....आगजनी.....कलकत्ते का भीषण हत्याकांड.....साम्प्रदायिक पागलपन.....नेहरू का ओजस्वी भाषण–'हमारे सामने एक युग का अंत हो रहा है और मेरी कल्पना पीछे मुड़कर पांच हजार वर्षों के इतिहास को देखती है.. .....यह सारा अतीत मेरे ऊपर छा जाता है, मुझे उल्लासित करता है, साथ ही मुझे कुछ आतंकित भी करता है। जब मैं भविष्य के बारे में सोचता हूं तो कांप उठता हूं.....।' लीग की मोलतोल, संवैधानिक युद्ध.....उसकी नीति अवज्ञा की..... पाकिस्तान से कुछ भी कम उसे स्वीकार्य नहीं.....''

और सब के पीछे, सब के बीच में, सब से आगे उसी कमल का मुख देख रहा था, जो उससे कह रही थी–यह हम हैं जो आजाद हुए हैं, पर स्वतंत्रता की लड़ाई अभी बाकी है। यह हमीं हैं, जो हिन्दू–मुसलमान के दंगों और कत्लेआम में मर रहे हैं–जलाए और फूंके जा रहे हैं। हमीं हिन्दुस्तान हैं, हमीं पाकिस्तान हैं। हमीं गांधी–नेहरू हैं, हमीं जिन्ना और कायदेआजम हैं। हमीं लाहौर हैं। हमीं दिल्ली और पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल हैं। हमीं नोआखाली हैं, हमीं बिहार और हमीं सिंध हैं। हमीं पेशावर हैं, हमीं सिंध नदी और गंगा–यमुना हैं। हमीं कत्ल करने वाले हैं, हमीं कत्ल होने वाले हैं। हमीं.. .....हमीं.....हमीं.....।

सुबह उस होटल के सामने–लंबी–लंबी गाड़ियां आ गईं। एक गाड़ी से उतरे ससुर साहब–हीराचंद कपूर..... दूसरी गाड़ी से उतरे कुंवर कपूर.....तीसरी से पपा–ममा।

सब 'लाउंज' में आकर सोफे पर बैठ गए। शिवानी के आने का इंतज़ार करने लगे।

वह इतमीनान से नहा–धोकर आई।

प्रणाम करके सामने बैठ गई।

ममा उसे पकड़कर रोने लगीं।

पर किसीके मुख से कोई बात नहीं फूटी। तब शिवानी ने ही बात चलाई :

''कहिए, आप लोगों का कैसे आना हुआ ?''

ससुर जी तड़पकर बोले, ''बहू, यह क्या हुआ ?''

''मुझे बहू वगैरह मत कहिए।''

कुंवर ने कहा, ''बताओ, फिर क्या कहें, बोलो ?''

शिवानी ने संयत स्वर में कहा, ''वही जो एक आदमी किसी दूसरे आम इन्सान से बातें करते समय कहता है।''

ससुर जी बोले, ''हमारा तुमसे कोई रिश्ता नहीं ?''

''नहीं।''

हीराचंद कपूर के लिए बहू के मुख से ऐसे शब्द सुनना, उनकी कल्पना से बाहर की बात थी। फिर भी उन्होंने बहुत बड़ी दुनिया देखी थी, सबसे बड़ी बात कभी पराजय नहीं सही थी, उसीके विश्वास में बोले :

''भूल–चूक किससे नहीं होती ! मगर बातों का इतना तूल देना कहां की समझदारी है.....आप लोग क्या सोच रहे हैं ?'' पपा ने ममा की ओर देखा और ममा ने उसी कमल को, जो कहीं शून्य में न जाने क्या निहार रही थी।

''चलो घर.....उठो। उठती हो कि नहीं।''

कुंवर की यह बात उसे बेहद हास्यापद लगी। सबको देखकर बोली, ''मैं आप लोगों का ज्यादा वक्त नहीं बरबाद करना चाहती। मैंने जो फैसला किया है, बहुत समझ–बूझकर ठंडे दिल से किया है। मेरा अब वापस लौटना नहीं हो सकता।''

सब एक–दूसरे का मुंह तकने लगे। ससुर जी और पति महोदय अलग जाकर कुछ गुप्त मंत्रणा करने लगे। पपा–ममा कमल से बातें करने लगे। न जाने क्या कमल ने कहा, जिसे सुनकर ममा फफककर रो पड़ीं। पपा का गंभीर चेहरा देखा नहीं जा सकता था।

फिर चारों आपस में बातें करने लगे। शिवानी चुपचाप उस दृश्य को देख रही थी। सहसा पपा की तड़प सुनाई दी, ''आप लोगों ने मेरी लड़की के साथ अन्याय किया।''

''आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं, वह मेरी धर्मपत्नी है।''

ममा बोली, ''धर्मपत्नी के माने यह तो नहीं कि वह आपकी गुलाम है।''

ससुर जी बोले, ''अब इन बातों से क्या फायदा ! हमें किसी तरह इस मसले को रफादफा करना चाहिए।''

कुंवर ने कहा, ''यह माफी मांग ले, मामला खत्म।''

''कैसी माफी ?'' पपा बोले।

''यह इस तरह घर से भागकर यहां जो आई है–यह कोई मामूली बात है ? घर, शादी, ब्याह, इसके साथ खिलवाड़ करना कोई बच्चों का खेल है क्या ?''

ससुर जी इस तरह बोले, जैसे हजारों साल का बुड्ढा हिन्दुस्तान बोल रहा हो। कुंवर के चेहरे पर आवेश छा गया था। तभी शिवानी ने कहा :

''अच्छा, अब मैं चलती हूं।''

''कहां ?'' ससुर और पति दोनों में यह प्रतिक्रिया हुई।

''अब भी यह बताना ज़रूरी है क्या ?''

''बिल्कुल। यह न समझो कि तुम आजाद हो।''

शिवानी सीढ़ियों से चलती हुई ऊपर चली गई। ससुर और पति थोड़ी देर वहां आपस में बातें करके चलने लगे।

''सुनिए जज साहब, अपनी लड़की को समझाइए, वरना इसका अंजाम बुरा होगा।''

पपा बोले, ''आप किसे धमका रहे हैं ?''

''मैं बात कर रहा हूं।''

''बात करने का यह ढंग नहीं।''

कुंवर गुस्से में बोला, ''आपकी लड़की पागल है।''

पपा–ममा के लिए यह असह्य था। पपा ने अपने को संभालकर कहा, ''आप उसे 'डाइवोर्स' कर दीजिए।''

''यह नामुमकिन है।'' कुंवर ने कहा।

''हम कोई मामूली लोग नहीं।'' ससुर जी बोले।

यह कहकर दोनों चले गए। पपा–ममा थोड़ी देर तक वही सोफे पर बैठे रह गए। फिर बेहद थके–थके से ऊपर चढ़ने लगे।

तीसरी मंजिल पर वह कमरा था। कमरे में घुसते ही दोनों ने देखा, शिवानी खिड़की खोल न जाने क्या देख रही थी।

''कमल बेटी !''

वह दौड़कर पपा के गले लग गई। ममा के हाथ पकड़कर बोली, ''विश्वास रखिए, ऐसा कुछ नहीं करूंगी जिसमें आप लोगों को तनिक भी दुःख हो। मैंने अब तक जितना–जितना कुछ सहा है, आपके आशीर्वाद से मैं आज उतनी ही विवेकवान, शक्तिवान हुई हूं। मैं निजी अपमान, निजी दुःख सह सकती थी, पर पूरे स्त्री समाज और उसके चरित्र का अपमान–दुःख नहीं सह सकती।''

पपा–ममा चुपचाप उसे देख रहे थे। वह टुकड़े–टुकड़े में न जाने क्या–क्या कहती जा रही थी।

पपा बोले, ''चलो हमारे संग इलाहाबाद।''

''हम इसीलिए आए हैं।'' ममा बोलीं।

शिवानी अपलक उन्हें देखने लगी।

''इलाहाबाद जाकर क्या होगा ? अब कहीं भी वापस नहीं जाना चाहती। मुझे आशीष दीजिए, मैं जो लड़ाई लड़ने जा रही हूं, वह लड़ाई सिर्फ आपकी यह बेटी लड़ सकती है.....मेरा जन्म शायद इसीलिए हुआ था.....और यह कितने गौरव की बात है–आपके लिए.....मेरे लिए। मैं इसे ईश्वर का एक रहस्यमय आदेश मानती हूं।''

''कमल.....कमल !''

''हां, अब मुझे ईश्वर के एक अदृश्य रहस्य में पूरा विश्वास हो गया, वरना मेरी क्या ताकत कि मैं इस तरह सब कुछ छोकर यहां चली आती। और उस व्यवस्था को इस तरह चुनौती देती।''

''पर तुम यहां अकेली हो।''

''जब तक मैं वहां थी–एक दायरे में घिरी हुई–पत्नीत्व के धर्म में बंधी हुई, तब तक मैं ज़रूर अकेली थी, शक्तिहीन थी, अब मैं उस धर्म, उस घेरे, उस मर्यादा को तोड़कर, अपने–आपसे मुक्त होकर उस सबसे जुड़ गई हूं.....जो अनंत है.....व्यापक है।''

''लोग तुझे पागल कहेंगे बेटी।''

पपा–ममा के इस दुःख का अनुभव कर कमल मुस्करार बोली, ''थोड़ा पागलपन ज़रूरी है पपा !''

''पर किसलिए ?''

''बंधनों से मुक्त होने के लिए।''

यह कहकर कमल खुलकर हंस पड़ी। और अपनी उमंग–भरी धारा में पपा–ममा को भी बहा ले गई।

''तुम क्या इसी होटल में रहोगी ?''

''नहीं, यह होटल तो इन्हीं व्यापारियों के लिए बना है। मैं कहीं और जाकर रहूंगी। नौकरी ढूंढ रही हूं। मिलते ही आप लोगों को पत्र लिखकर बुलाऊंगी।''

''कुछ दिनों के लिए हमारे साथ नहीं रहोगी ?''

''वही कुछ ही दिन तो सारी बुनियाद है, जिसे मैं छोड़ना नहीं चाहती।''

''पर कमल.....।''

फिर एक चुप्पी छा गई। कमल उसे तोड़ती हुई बोली, ''पर कुछ नहीं होता।''

''वे तुम्हें तंग करेंगे।''

''तुम्हें 'डाइवोर्स' भी न देंगे।''

''न दें.....मैं उनसे कुछ भी मांगने नही जाऊंगी।''

''पर वे.....''

''मैं उन्हें जानती हूं.....खूब जानती हूं–वे बुजदिल हैं।''

''मैं कहीं नौकरी की कोशिश करूं ?''

''नहीं पपा, मुझे सारी कोशिश खुद करनी हैं, तभी तो मैं अपने–आपको जान पाऊंगी।''

''अब भी कुछ जानना बाकी है क्या ?''

''हां, अभी तो इसकी शुरूआत हुई है।''

शिवानी की बातें पपा–ममा को आश्चर्य में डाल देती थीं। वे किसी तरह से भी उसे समझा नहीं पा रहे थे, बल्कि वह खुद इन्हें समझा देती थी।

एक बंद लिफाफा उसके सिरहाने रखकर वे दोनों चलने लगे। शिवानी ने उन्हें विदा देते हुए कहा, ''डरने और चिंता करने की ऐसी कोई बात नहीं। आप लोग हैं, मैं हूं.....यही क्या कम है।''

शाम को विष्णुपद मिलने आया। शिवानी वहां नहीं थी। वह बाहर गेट पर घूमता रहा, घूमता रहा। ठीक साढ़े दस बजे रात को वह लौटी। उसे देखते ही वह बोली, ''नहीं, तुम इस तरह यहां मत आओ। नहीं तो मैं कमज़ोर हो जाऊंगी। अब भावुकता हमारा साथ नहीं दे सकती। हमें उसे मारना होगा।''

''कमल !''

''इसे अभी पूरी तरह उगने दो। मैं खुद आऊंगी तुम्हारे पास.....''

''मैं क्या तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता ?''

''नहीं। मेरी कोई मदद नहीं कर सकता मेरे सिवा.....''

विष्णुपद को उसने वहीं बाहर से ही विदा कर दिया। कमरे में आकर वह कुछ देर सोचती रही, फिर पूजा करने लगी। ऐसी पूजा, जहां न कोई मंत्र है, न कोई शब्द न सामने कोई देवता.....न उसकी कोई मूर्ति।

वह उसी तरह पूजा–भाव में पलंग पर न जाने कब सो गई। सुबह घंटी बजी। दरवाजा खोला तो देखा बंगले का वही बड़ा ड्राइवर मानसिंह।

''क्या है ?''

''साहब ने गाड़ी भेजी है–चलिए.....''

''कहां ?''

''बंगले पर।''

शिवानी को हंसी आ गई। मानसिंह मुस्कराता हुआ नीचे चला गया।

इसी तरह रोज होने लगा। दिन–रात उसके पास फोन आते, घर वापस लौटने के लिए। उसे डराने–धमकाने के लिए। कभी–कभी तो अजीबोगरीब फोन। और एक दिन उसने देखा–कपूर हवेली से भी एक कार आकर रुकी। कोठी का वह ड्राइवर–जितेन्द्र कमरे के दरवाजे पर सलाम करके खड़ा हो गया।

''क्या है ?''

''कोठी से आर्डर हुआ है, आपके लिए यहां गाड़ी खड़ी कर रखने के लिए।''

शिवानी मुस्कराकर रह गई। उसे अब होटल से बाहर निकलना भी एक संकोच का विषय हो गया। वह कमरे में सुबह से दोपहर तक बैठी–बैठी कुछ लिखती, फिर लंच लेकर उस समय बाहर निकल जाती जब दोनों ड्राइवर अपनी–अपनी कारों में टांग पसारकर सो रहे होते।

वह नौकरी की तलाश में एक–एक दफ्तर में जाती। अधिकारियों से मिली। अपनी योग्यता दिखाती। लोग अक्सर पूछते :

''आप नौकरी क्यों करना चाहती हैं ?''

''आपके पति का नाम और पता ?''

''आपने पति को क्यों छोड़ा ?''

''आपकी उम्र ?''

''आप कहां रहती हैं ?''

आदि आदि। उसे नहीं पता था कि एक स्त्री के चारों ओर इतने सारे प्रश्नों के जाल बिछे होते हैं। पहले वह प्रश्नों के उत्तर दे देती थी, पर बाद में उसे उन प्रश्नों से बदबू आने लगी–जैसे किसी सड़ी हुई चीज़ से बदबू आती है।

वह एक दिन कई स्कूल–कालेजों में गई, नौकरी की तलाश में। उसकी योग्यता पर्याप्त थी–अंगरेजी साहित्य में एम०ए० सैकेण्ड क्लास। पर प्रश्न किए गए। आपका शिक्षण अनुभव ? उसका यह जवाब कि काम करने से ही अनुभव होगा, लोगों की समझ में नहीं आता।

वह संगीत टीचर हो सकती है–संगीत में वह प्रभाकर है–प्रथम श्रेणी में। पर उसका अभ्यास नहीं रहा संगीत में। गाकर ही अभ्यास होता है–लोग इसे भी नहीं समझ पा रहे थे।

वह रेडियो में गाकर कुछ कमा सकती या रेडियो में नौकरी पा सकती है। पर वह अनुभव करने लगी कि अपने 'पास्ट' को–बीते हुए को चाहे जितना त्याग कर चली आई हो, वह उससे चिपका हुआ है। लोगों को जैसे ही पता चलता कि यह कपूरवालों की बहू है–वही कुंवर की पत्नी, तो लोग उसे रहस्य–भरी नजरों से देखने लगते।

वह जितना ही कहती कि उसका उन लोगों से अब कोई सम्बन्ध नहीं है, पर लगता लोगों के लिए वह सम्बन्ध उतना ही अधिक ज्यादा हो जाता है।

एक दिन कनाट प्लेस में घूमते हुए उसकी भेंट अचानक उसी रेनू मुकर्जी से हो गई। उसके माथे पर सिंदूर देखकर वह अचकचा गई।

वह बोली, ''आप ?.....आप तो.....''

शिवानी ने कहा, ''हां, सही है।''

रेनू बोली, ''कहां रहती हैं ? सुना है कि.....''

''मुबारक हो, आपकी शादी हो गई।''

''जी नहीं, शादी हो नहीं गई, शादी कर ली।''

''अच्छा।''

''एक आदमी फंस गया.....बल्कि फंसा लिया और शादी कर ली।''

शिवानी उसे आश्चर्य से देखती रही।

''यही तो बात है, आप लोग शादी–ब्याह को बड़ी पवित्रता और गम्भीरता से देखती हैं, तभी इतनी मुसीबत मोल ले बैठती हैं। मैं इस पूरी ज़िन्दगी को एक हाथ से लेना दूसरे हाथ से देना समझती हूं।''

शिवानी ने बीच में ही कहा, ''मुझे नौकरी की तलाश है।''

वह ठहाका मारकर हंस पड़ी, ''कमाल है। आप और नौकरी ! अरे आप तो उसीकी कमाई दूर बैठकर फूंकिए।''

''मैं वह नहीं करना चाहती।''

''फिर खामखा ठोकर खाइए।''

''नहीं, मैं नौकरी कर लूंगी।''

''तो पति की ही नौकरी क्या खराब थी ?''

''क्योंकि वह पति था।''

''अजी छोड़िए, जब पति नहीं तो पत्नी कैसी ?''

रेनू के साथ वह कनाट प्लेस के बरामदे में चलने लगी। रेनू थोड़ी देर में गम्भीर होकर बोली :

''आप तो अभी इतनी सुन्दर हैं–स्मार्ट भी हैं.....डाइवोर्स लेकर दूसरी शादी कर सकती हैं।''

''नहीं, अब मैं शादी नहीं करना चाहती।''

''वह कुंवर 'डाइवोर्स' भी नहीं देगा–उसके 'बिज़नेस' पर इसका बुरा असर पड़ेगा–इसीलिए।''

''छोड़ो वे बातें, क्या मुझे सचमुच नौकरी नहीं मिल सकती ?''

''सच बताऊं ?''

''हां।''

''देखो भाई, अपने बारे में सच–सच बताने से तुम्हें नौकरी नहीं मिल सकती। झूठ बोलना पड़ेगा।''

''मतलब ?''

''मतलब साफ है–समझ गई न ? शादीशुदा औरत की कोई कीमत नहीं रह जाती। तुम्हें कहना होगा 'मिस शिवानी'।''

''अच्छा।''

''हां, फिर तुम्हें 'रिसेप्शनिस्ट' की नौकरी मिल सकती है।''

शिवानी 'रिसेप्शनिस्ट' की नौकरी की तलाश करने लगी।

एक जगह 'इन्टरव्यू' में बुलाई गई। कई लड़कियां बुलाई गई थीं, स्थान सिर्फ एक का था।

वह नहीं ली गई। उससे कहा गया, ''आप सुन्दर तो हैं–सबसे ज्यादा पढ़ी–लिखी भी हैं, पर आपकी उम्र ज्यादा लगती है–जितनी हैं उससे भी ज्यादा। और माफ कीजिए, यह भी लगता है कि आप शादीशुदा हैं।''

''तो ?''

''मतलब हम किसीसे यह आशा नहीं करते कि वह कुमारी हो, पर उसे कुमारी दीखना चाहिए। आने–जाने वालों की नजर उसपर खिंच जाए।''

''क्या मैं ऐसी नहीं हूं ?''

''आप हैं तो ज़रूर, इन सबसे ज्यादा हैं, पर आपके मुख पर एक गम्भीरता है.....गौरव का भाव है।''

''जी।''

''हमारे यहां आप दफ्तर में 'जूनियर स्टाफ' का काम कर सकती हैं ?''

''मुझे मंजूर है।''

''आपको टाइप करना आता है ?''

''नहीं, मैं सीख लूंगी।''

''ओ हो, सीखने का वक्त अब कहां है मिस शिवानी ?''

यह कहकर वह अफसर ज़ोर से हंसा था। टेबुल पर हाथ मारकर उड़ पड़ा था।

शिवानी होटल के कमरे में लौटी तो रेनू मुकर्जी और उस अफसर की हंसी उसे घेरे हुए थी।

पुरुष द्वारा बनाया हुआ यह समाज कैसा है, इसके क्या–क्या रहस्य हैं, इसके अपने क्या–क्या उसूल हैं, इसे अनुभव कर वह विस्मित होने लगी। इतने विशाल, इतने मजबूत चक्रव्यूह में स्त्री अकेली कहां लड़ सकती है, शायद इसकी

कल्पना भी उसे नहीं है। स्त्री का 'पास्ट' उसके वर्तमान को तिना प्रभावित किए रहता है और उसके भविष्य की तस्वीर को इतना अस्पष्ट, इतना अनिश्चित और धुंधला किए रहता है, अब उसे अनुभव होने लगा।

एक ओर वह देखती, होटल के बाहर सुबह से शाम तक दो–दो कारें उसके लौट आने की प्रतीक्षा में खड़ी रहतीं पर दूसरी ओर जब वह स्वतंत्र होने के लिए कहीं नौकरी के लिए जाती तो कहीं उसकी योग्यताएं, उसके गुण ही उसके विरोधी बन जाते और कहीं उसका वही 'पास्ट' दुश्मन बन जाता है। वह सोचने लगी–दुनिया में अनेक तरह की गुलामी रही है, उनमें से स्त्री होना भी एक गुलामी है।

एक दिन उसे कुंवर का लिखा हुआ एक कागज़ मिला, पत्र नहीं। उसमें लिखा था–''अगर तुम महज वापस आ जाओ, तो तुम्हारे लिए यहां वही इज्जत है, दर्जा है, अधिकार है, धन–दौलत और विलास की सारी सामग्रियां हैं।''

नहीं तो ?

इस प्रश्न के सामने एक अजीब–सी आकृति उसकी आंखों में हिलने–डुलने लगी। उस आकृति में न कोई आदि है, न अन्त। न उसमें आंख हैं, न हाथ–पैर। वह उससे आंखें मिलाए बड़ी गंभीरता से देखती रही। धीरे–धीरे वह आकृति पतली होने लगी और एक कच्चे धागे की तरह सामने कांपने लगी।

उस पतले धागे के उस पार वह बाराखंबा रोड वाला बंगला है–जहां यदि वह महज वापस लौट जाए तो वहां सब कुछ है, पर 'वह' नहीं है। और इस पार कुछ नहीं है, पर 'वह' है। यह नई 'ज्योग्रेफी' आज उसकी समझ में आ सकी और वह हंस पड़ी।

वह शाम को अकेली निरुद्देश्य कनाट प्लेस के बरामदे में घूमती। उन स्थानों पर वह कुछ देर के लिए खड़ी हो जाती, जहां–जहां वह कभी विष्णुपद के संग रुकी थी।

एक दिन एक आदमी उसके सामने आ खड़ा हुआ। बड़े निःसंकोच भाव से बोला :

''आपके चार्जेज क्या हैं ?''

''क्या ?''

''आप क्या लेती हैं ?''

''मतलब ?''

''वही।''

शिवानी उसे जड़वत् देखती रह गई।

वह आदमी कहता जा रहा था, ''मैं कई दिनों से आपको मार्क कर रहा हूं, आप अकेली इसी वक्त यहां आ खड़ी होती हैं, इसका मतलब है आप ज़रूर वही.....।''

''क्या ?''

''कालगर्ल या सोसायटी गर्ल।''

शिवानी कांप गई और तेज कदमों से चलने लगी। वह आदमी उसका पीछा करने लगी। वह टैक्सी लेकर भागी।

20

अगले दिन वही आदमी होटल के बाहर उसे दिखाई दिया। शिवानी अपने कमरे की खिड़की से देखती–एक ओर वही दोनों खड़ी हुई गाड़ियां, दूसरी ओर वही चक्कर लगाता हुआ आदमी।

पूरे दो दिनों तक तो वह होटल से बाहर नहीं निकली, पर तीसरे दिन उसे अपने–आप पर बड़ी ग्लानि हुई।

वह होटल से बाहर निकलकर सड़क पर मुड़ी। वह आदमी बिल्कुल पास आ गया। और हीं–हीं करके कुछ बोलने चला, तभी शिवानी ने कड़े स्वर में कहा :

''यह क्या बदतमीज़ी है ?''

''हें–हें–हें–हें।''

''पुलिस को फोन करती हूं।''

''पहले सभी यही कहती हैं।''

''तुम यहां से भागते हो या नहीं ?''

''तो सच, आप 'वह' नहीं हैं ?''

शिवानी ने देखा, उस आदमी का चेहरा पीला पड़ गया। वह बेहद गरीब स्वर से बोला, ''मेरा तीन दिन नुकसान हुआ। मैंने किसीको 'सप्लाई' करने के लिए एडवांस ले लिया था। हे भगवान.....''

वह आदमी बड़बड़ाता हुआ चला गया। शिवानी धीरे–धीरे आगे बढ़ने लगी। उसकी ओर देखने वाला हर आदमी उसे वही 'आदमी' नजर आने लगा।

पर दूसरे ही क्षण उसे लगा–कि यह उसका भय है–आत्म–विश्वास की वह कमी जहां सेवह एक व्यक्ति के आधार पर सभी के लिए एक आम राय बना रही है।

इस तरह फिर अपने–आपसे मुक्ति कहां है ?

एक दिन होटल में सुबह वही 'साइकियाट्रिस्ट' आया। वह बंगाली संभ्रात डाक्टर था। कई बार उसे देख चुकी है उस बंगले में, पर कभी बातचीत नहीं हुई थी।

''कहिए डाक्टर घोष साहब।''

''ठीक हूं, आप कैसे हैं ?''

''आप बताइए।''

''बिल्कुल ठीक हैं आप।''

डाक्टर साहब हंस पड़े और बोले, ''मेरा दुर्भाग्य देखिए, मैं क्या किसी स्वस्थ, नार्मल इन्सान के पास नहीं जा सकता ? मुझे देखते ही लोग एक ही बात सोच बैठते हैं–मैं बीमार हूं क्या ? और अगर बीमार नहीं हूं तो यह आदमी मेरे पास क्यों आया ?''

''यह सही कहते हैं।''

''मैं सिर्फ आपको देखने आया हूं, चेकअप करने नहीं।''

''किसीने भेजा नहीं ?''

''ना ना ना। यूं कुंवर ने बार–बार कहा कि मैं यहां आऊं, पहले यह साबित करूं कि आप बीमार हैं। आपका उपचार करूं और समझाऊं कि आप घर वापस चलिए, नहीं तो लोग आपको तब तक 'एबनार्मल' कहेंगे।''

''क्या ऐसा होता है ?''

''हां, यह है ट्रेड सीक्रेट। बड़े लोग यही करते हैं–पहले वे हमारे द्वारा किसीपर कुछ साबित करते हैं, फिर उसकी दवा करते हैं और अंत में उसे अपने कब्जे में कर लेते हैं।''

शिवानी को आश्चर्य हो रहा था–यह डाक्टर कैसा है.....अपने 'प्रोफेसन' के रहस्य को प्रकट किए दे रहा है और साथ ही इस उच्च वर्ग के खोखलेपन को समझा रहा है।

''क्यों ? मुझे क्यों बता रहे हैं ?''

''आपके प्रति मेरा स्नेह है।''

शिवानी का मन कहीं भीग गया।

''लगता है, तुम मेरी छोटी बहन हो.....सबसे छोटी बहन, जो अपनी लड़ाई में बिल्कुल अकेली है। वैसे हर लड़ाई अकेले ही लड़ी जाती है, पर मैं सोचता हूं, उस लड़ने वाले को किसीसे तो कहीं समर्थन मिलना चाहिए।''

शिवानी देखने लगी। डाक्टर घोष की आंखों में कुछ बरस आया है। उनका स्वर भावुक हो गया है।

''डाक्टर साहब, मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूं।''

''भाई, मैं कृतज्ञ हूं तुम्हारा, तुममें इतना साहस और विश्वास है। तुम सबसे अलग हो, और सबसे बड़ी बात तुम खुश हो।''

''मैं अब इस होटल को छोड़ना चाहती हूं।''

''छोड़ दो, छोड़ने का क्रम तो तुमने शुरू ही कर दिया है।''

''मैं कहीं नौकरी करना चाहती हूं, पर कहीं मिल नहीं रही है।''

''परन्तु तुम नौकरी क्यों करोगी, तुम्हें तो कोई काम करना चाहिए।''

''कौर–सा काम ?''

''अरे, दिल्ली में दिल्ली के आसपास इतने शरणार्थी आ रहे हैं, उनकी विपत्ति, उनकी करुणा इतनी भयानक है कि क्या कहूं।''

''ठीक है, मैं शरणार्थी कैम्पों में काम करूंगी।''

''आओ, चलो मेरे साथ।''

होटल का हिसाब चुकता करने के बाद वह नीचे 'रिसेप्शन' पर गई। वहां पता चला, उसे कुछ नहीं देना है।

''क्यों ?''

''कुंवर फर्म के खाते में खर्चा डाला जा चुका है।''

''नहीं, मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकती। मेरा उस फर्म से कोई नाता नहीं है।''

''पर हमें ऐसा आदेश है।''

बातें बढ़ने लगीं। डाक्टर घोष ने कहा, ''छोड़ो, जाने दो। गुस्सा मत करो बहन।''

''यह बात ही ऐसी है।''

डाक्टर घोष मुस्कराते हुए बोले, ''बहन, गुस्सा तो वह करे, जो दूसरों पर निर्भर हो। या जो यह साबित करना चाहे कि वह कुछ विशेष है और वह इस तरह उसी व्यवस्था का अंग बनना चाहे।''

डाक्टर घोष की बातों ने शिवानी को शांत कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने मानव–आचरण और मानव–व्यवहार के रहस्य पर भी प्रकाश डाल दिया।

डाक्टर घोष शिवानी को अपनी कार पर बैठाए हुए दिल्ली के शरणार्थी कैम्पों में ले गए। शरणार्थियों की दशा असह्य थी। मानव–परिस्थिति की ऐसी कभी कल्पना भी वह नहीं कर सकती थी।

वह कार दिल्ली से बाहर जाने लगी, तब शिवानी ने पूछा, ''अब हम कहां जा रहे हैं ?''

''कुरुक्षेत्र.....शरणार्थियों का सबसे बड़ा शिविर.....।''

ठीक एक बजे वे लोग पीपली जा पहुंचे। पीपली ग्रैंड ट्रंक रोड पर स्थित है और कुरुक्षेत्र के लिए यहीं से सड़क फूटती है। रास्ते में कई जगह उन्हें रुकना पड़ा, सड़क लम्बे सफर के लिए बिल्कुल बन्द थी। प्रत्येक आने–जानेवाली गाड़ी को पुलिस रोकती थी और काफी जांच–पड़ताल के बाद आगे जाने देती थी।

जिस क्षण वे दोनों कुरुक्षेत्र पहुंचे, पश्चिमी बंगाल से शरणार्थियों की तीन स्पेशल रेलगाड़ियां आई थीं।

शिवानी वहां का दृश्य देखकर जैसे अपना सब कुछ भूल गई। अपना भूत, वर्तमान, भविष्य सब कुछ। उसे यह भी अहसास जाता रहा कि वह स्वयं कौन है.....क्या है ?

वह चुपचाप शरणार्थियों को देख रही थी, जो किसीसे भी यह शिकायत नहीं कर रहे थे कि उनका दुःख क्या है–वे कैसे क्यों यहां ले आए गए हैं ? उनका सब कुछ कहां छूट गया है–यह भी नहीं पूछ रहे थे।

एक अजीब सन्नाटा छाया था, यद्यपि ढाई–तीन लाख लोग थे वहां। सभी लोग–स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान, घायल, बीमार–सभी खामोश थे। उनके मन में चाहे जितनी भावनाएं हों, कटुता–दर्द भराहो, परन्तु सबके मुख पर केवल एक ही दुश्चिन्ता थी–रात काटने के लिए किसी तरह कोई स्थान मिल जाए।

शिवानी वहां घूमते–घूमते डाक्टर घोष को भी भूल गई। एक जगह मैदान साफ किया जा रहा था। लोग आसपास से पुआल लाकर मैदान पर जगह–जगह बिछा रहे थे। एक स्त्री के अंक में उसका बच्चा मर गया। स्त्री रोते–रोते बेहोश हो गई। शिवानी ने उस मृत शिशु को अपने अंक में लिया और उस मां को संभालने लगी।

स्वयं पुआल बिछाकर उसे सुलाया। डाक्टर बुला ले आई। दूसरी ओर उसका ध्यान गया–बहुत सारी माताएं कमज़ोर, पीले और हड्डियों के कंकाल जैसे शिशुओं को उठाए हुए रो रही थीं, ''हाय, आठ दिन हुए मेरे बच्चे को क्या हुआ। जब से हमने मिंटगुमरी जिले से अपना घर छोड़ा, तब से सूखी रोटी भी न मिली।''

राशन बांटा जा रहा था। भोजन पकाने के लिए चूल्हा जलाया और बर्तन में जितना संभव था, उतना राशन डालकर भोजन पकाने लगी। भोजन पक भी न पाया था, लोग खाना के लिए घिर गए।

सारा खिलाकर, वह उसी बर्तन में फिर उतना ही भोजन पकाने लगी.....फिर वही.....फिर वही। सारी रात वह उसी तरह भोजन बना–बनाकर लोगों को खिलाती रही।

सुबह हो चुकी थी। सामने 'रामकृष्ण आश्रम' का एक संन्यासी आ खड़ा हुआ :

''मां, अब विश्राम करो चलकर।''

''पर लोग तो अभी भूख से तड़प रहे हैं !''

''इसका प्रबन्ध मैं लेता हूं। तब तक तुम आश्रम में चलकर थोड़ा सो लो।''

वहां रामकृष्ण आश्रम का छोटा–सा तंबू था। उसके भीतर जमीन पर दरी बिछी थी। वहीं पड़कर वह सो गई।

उसकी आंख जब खुली, तो दिन के दो बजे थे। थोड़ी ही देर में वही संन्यासी आया, बोला :

''मां, हमने छः मन ताजा दूध का प्रबन्ध किया है। इसे यहां बीमार स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों में बांटना है–यह जिम्मेदारी तुम्हीं ले सकती हो।''

वह दूध बांटने लगी और थोड़ी दूर पर देखने लगी–संन्यासियों का एक दल एक छोटा–सा अस्पताल जैसा कुछ बनाने में लगा था। चार दिनों के भीतर वह अस्पताल तैयार हो गया जिसमें चार सौ रोगियों और घायलों की सेवा करने का प्रबन्ध था।

डाक्टर सिर्फ दो थे–नर्स एक भी हनीं। शिवानी ने कहा, ''नर्स का काम मैं करूंगी।''

और वह सारा दिन नर्स की जिम्मेदारी निभाती रही। एक दिन देखा, अस्पताल से थोड़ी दूर पर लोगों की भीड़ कंबल और कपड़े के गठ्ठर पर टूट पड़ी थी। पुलिस लाठी चार्ज करने लगी। और लाठी से घायल हो–होकर लोग चिल्लाने लगे। एक घायल बूढ़ा सिख सरदार रो–रोकर कहने लगा : ''मेरे घर के दस लोग मारे जा चुके हैं, अब मैं ही बचा हूं पुलिस की लाठी के लिए। लो, मार डालो मुझे। दुश्मन की गोलियों और छुरों के शिकार हुए हम लोग खुशी से सर्दी बर्दाश्त कर लेंगे।''

यह कहते हुए वह बूढ़ा सिख बिलख–बिलखकर रो पड़ा। शिवानी उसके पास गई। उसे अस्पताल में लाकर बोली, ''बाबा, सिख लोग भी क्या कभी रोते हैं ! सोचिए, हमारे सिख गुरुओं ने कितना दुःख सहा है, कितनी कुर्बानियां की हैं।''

वह बोला, ''बेटी, दुःख–विपत्ति में इन्सान कितना भावुक और कमज़ोर हो जाता है, यह इन्हें नहीं पता।''

''घबड़ाइए नहीं, आपके साथ यहां लाखों हिन्दू, सिख भाई हैं–बिल्कुल आप ही की तरह।''

ऐसा वहां हर क्षण का दृश्य था। शिवानी को एक क्षण भी अपना कुछ नहीं याद आता। जैसे वह बिल्कुल नई हो, जिसका न अब तक कोई अतीत है, न कोई दुःख.....सब कुछ जिसका सिर्फ वही वर्तमान है। अपार अनंत मानव करुणा में उसका निजी दुःख जैसे कहीं है ही नहीं।

हर रोज स्त्रियों के बच्चे होते, उनकी दशा देखकर शिवानी सोचती–काश, वह एक से अनेक वैसी शिवानी हो जाती और उन सभी माताओं की सेवा करती।

एक दिन शिविर के प्रधान संचालक–हरियाणा के जिलाधीश का आदेश आया रामकृष्ण आश्रम के प्रधान संन्यासी के पास कि उन्हें एक अत्यन्त जिम्मेदार और साहसी कार्यकर्ता की ज़रूरत है। उसे भेजा जाना है महम के मुसलमान शिविर में।

चुनाव हुआ उसी शिवानी का।

वह अगले दिन सुबह ही सुबह महम शिविर में पुलिस जीप से पहुंचा दी गई।

वह वास्तव में बहुत बड़ा शिविर था। क्षेत्रफल कम से कम दो वर्ग मील का। रोहतक के सारे गांवों–कस्बों से वह मुसलमान आबादी वहां इकट्ठी की गई थी, जिन्हें सुरक्षित पाकिस्तान जानाथा। जिन कस्बों से लोग वहां आए थे उनमें प्रमुख थे झज्जर, गोहाना, भैंसी, कलानौर के मुसलमान। ये लोग वहां तीन सप्ताह के भीतर इकट्ठे किए गए थे।

शिवानी को वहां रहते तीन दिन हो गए–उस बीच शिविर में सोलह बच्चों के जन्म हुए थे।

वे सब मुसलमान जाट और मुहाजर थे। निहायत सीधे। उनकी औरतें अपने वतन, घर, खेत–खलिहान की याद करके रो रही थीं। आसपास की तमाम हिन्दू औरतें, उनकी सखियां, उनके हमदम उन्हें देखने के लिए आती थीं और रुदन का आरोपार नहीं मिलता।

शिवानी उस शिविर में तरह–तरह के काम करती–भोजन बांटने, दवा देने से लेकर शिशु–जन्म में मदद तक।

वह थककर जब अपने टेन्ट में विश्राम करने जाती, तो वहीं दूर से वह उस मानव–काफिले को देखकर आंखें बन्द कर लेती। उस काफिले में इन्सान की एक से एक तस्वीर–एक से एक दशा। इन्सानों के अलावा उस काफिले में सैकड़ों गायें, भैसें, घोड़े, खच्चर, गधे। पिंजरों में बन्द तोते, बुलबुल, मैना और ललमुनियां। पशुओं की पीठ पर घर–गृहस्थी के सामान। हजारों की तादाद में बच्चे–पर वे भी खामोश।

एक दिन मरीजों को दवा बांटते समय शिवानी को एक बुढ़िया ने पकड़ लिया और रो–रोकर पूछने लगी, ''बेटी, मेरे भतीजे रहमान अली ने पिछले महीने मुझे बताया कि हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं, फिर हमें क्यों पाकिस्तान भेजा जा रहा है ? मेरे बेटों की कलानौर में चार सौ बीघा जमीन है, दो पक्के मकान हैं। हमें क्येां अपना यह मुल्क छुड़वाया जा रहा है ? हम गांधी बाबा, जिन्ना साहेब दोनों ही के बारे में कुछ नहीं जानते। वे लड़ें, हमें क्यों बरबाद करते हैं ?''

शिवानी ऐसे असंख्य प्रश्नों के बीच वहां चुपचाप काम करती रहती और सोचती, यह सब क्या है। ऐसे ही असंख्य प्रश्न हिन्दू शरणार्थी भी तो करते हैं, जो पाकिस्तान से यहां भागकर आए हैं। कौन देगा इन प्रश्नों के जवाब ?

क्या यही चन्द लोग चारों तरफ इन्सान के भाग्य से खिलवाड़ करते रहेंगे ?

अगले दिन सुबह ही सुबह बिगुल की आवाज बज उठी। शिविर के सारे लोग खड़े हो गए। मां–बाप ने बच्चों को गिनना शुरू किया। काफिला चल पड़ा। कुछ ही देर में दो मील में बिखरे हुए लोग मैदान को छोड़ सड़क पर आ गए।

काफिला हिसार वाली सड़क पर चलने लगा। शिवानी निःशब्द रोने लगी। एकाएक वह उस काफिले के पीछे भागी। लोगों ने उसे सम्भाल लिया। वह एक रेत के टीले पर खड़ी न जाने कितनी देर तक उस चलते हुए काफिले को निहारती रही।

सहसा गोरखा पलटन का एक अफसर जीप पर लौटा। शिवानी के पास आकर बोला :

''काफिले के आगे चलती हुई हमारी सेना के अफसर ने खबर दी है कि सब लोग कुशलता से जा रहे हैं–किसी तरह की कोई चिन्ता नहीं।''

''आप मुझे यह क्यों बता रहे हैं ?''

''मैं विष्णुपद का 'क्लासफेलो' हूं–लेफ्टिनेंट भण्डारी मेरा नाम है।''

''अरे ! क्या विष्णुपद को पता है कि मैं यहां हूं ?''

''जी हां।''

''कैसे ?''

''वह यहां पिछले दिन पांच सौ कम्बल बांटने आएथे। आपको दूर से दिखाकर मुझे बताया था।''

सैलूट देकर वह अफसर चला गया। सामने का वह काफिला अब आंखों से ओझल हो गया। वह पीछे लौअी, इधर–उधर किसीको ढूंढने के लिए उसकी आंखें दौड़ने लगीं। फिर अचानक उसकी नजर उस सूने मैदान के शून्य में बंध कर रह गई। जहां अभी कुछ देर पहले लाखों आदमियों की भीड़ थी और जहां अब केवल एक भयानक सन्नाटा है।

मुसलमानों के उस अपार काफिले को महम से विदा करने के बाद शिवानी बिल्कुल अकेली गुड़गांव आई।

यहां आसपास उसने एक अजीब दृश्य देखा। मेवे मुसलमानों और जाट हिन्दुओं में भयानक मुठभेड़ें हो रही थीं। उनके संघर्ष का आधार साम्प्रदायिकता नहीं थी, बल्कि उनकी परम्परागत शत्रुता थी। मेवे मुसलमान कभी हिन्दू थे। औरंगजेब काल में इस्लाम कबूल करने के बाद भी उनका रहन–सहन, रीति–रिवाज हिन्दुओं जैसा ही था।

मेवे और जाट पुराने ढंग की बन्दूकों और यहां तक कि पुरानी तोपों से भी परस्पर लड़ रहे थे। पुलिस के लोग दूर से ही तमाशबीनथे।

शिवानी को ढूंढते–ढूंढते वही संन्यासी वहां आ पहुंचा :

''हां, आपका इधर रहना खतरनाक है।''

''मुझे कोई नहीं मार सकता।''

''शिविर में सब आपको ढूंढ रहे हैं।''

''अब वहां की क्या हालत है ?''

''दिसम्बर की ठंड में लोग और परेशान हैं।''

''ठंडक..... ?''

संन्यासी ने देखा, मां के बदन पर कहीं कुछ भी कोई गर्म वस्त्र नहीं है। वह अपनी गर्म शाल देने लगा।

शिवानी बोली, ''मैं संन्यासी का वस्त्र नहीं ओढ़ सकती। मैंने यह जगत–संसार नहीं छोड़ा है। मुझे इसीमें रहना है।''

''मैं भी तो इसीमें ही हूं।''

''आप लोग इसमें रहकर भ्झी इससे तटस्थ हैं, मैं नहीं।''

सन्यासी हंस पड़ा।

''मुझे पता है, आप इस विश्व से अपने–आपको जोड़कर अपना अर्थ ढूंढ रही हैं।''

''हां, क्या है अर्थ ?''

''वही देना ही अर्थ है।''

''पर किसे।''

''उसी ब्रह्म को।''

''मैं ब्रह्म नहीं जानती।''

''उसे जानना नहीं होता। जानना तो किसी उद्देश्य से होता है–किसी कारणवश। और किसी उद्देश्य, किसी कारण से देना, देना नहीं होता, वह तो स्वार्थ होता है मां।''

शिवानी ने संन्यासी का दायां हाथ पकड़ लिया। संन्यासी मुस्कराने लगा, ''आप तो कितनी भाग्यवान हैं, आपने सहज ही देना पा लिया है–आपको पता भी नहीं।''

''पर किसे ?''

''उसी निःस्वार्थ कर्म को.....उसी सृष्टि के रहस्य को।''

''क्या है वह रहस्य ?''

''आपको सब पता है, मुझसे पूछकर मेरी परीक्षा क्यों लेती हैं ?''

''नहीं, ऐसा नहीं।''

''जिसे अपने देने का अहंकार भी नहीं, वही तो हो तुम मां।''

''पर मैंने किस दिया ? बताओ मुझे। मैं यही जानना चाहती हूं।''

''मेरा मज़ाक क्यों बनाती हो मां, जिसने स्वयं को इस जीवन के अर्थ को दे दिया, उसे क्या जानना शेष रह गया।''

''आपने किसे दिया संन्यासी जी ?''

''झूठ नहीं बोलूंगा–अभी मेरा जीवन 'पर्सनल मोओवेशन' व्यक्तिगत कार्यकारण से अनुचालित है। देना होता है उसी 'युनिवर्सल मोटीवेशन' विश्व अर्थ और ज्ञान को जिसे आप सहज ही दे रही हैं। भाग्यवान हैं.....।''

''क्या यह सच है ?''

''यही तो चरम सत्य है, जहां सच और झूठ के अन्तर का भाव ही नष्ट हो जाए।''

यह कहकर संन्यासी ने शिवानी का चरण स्पर्श करना चाहा। शिवानी ने उसे रोक लिया :

''तुम कौन हो मां ?''

''एक साधारण स्त्री।''

शिवानी को वह अपलक निहारने लगा। लगा, दोनों में निःशब्द बातें होने लगी हैं। तुम कौन हो ? यह बंटवारा मनुष्य का है। नहीं, प्रकृति का। नहीं, प्रकृति सबसे तटस्थ है। फिर यह सृष्टि इतनी मादक, इतनी खूबसूरत क्यों है ? क्योंकि इसका कुछ अर्थ है.....'परपज़'.....वह क्या है ? वह सब को अलग–अलग, बिल्कुल अकेले ढूंढना पड़ता है। कैसे ? अपने–अपने धर्म अनुसार। धर्म क्या है ? अपना स्वभाव। स्वभाव क्या है ? जो उसके कर्म के अर्थ से प्रकट होता है। देश के बंटवारे से इतने असंख्य लोग जो मरे, बरबाद हुए, अंगरेज जो अपना राज्य छोड़कर चले गए, यह क्या है ? वही स्वभाव। किसका ? प्रकृति का। प्रकृति कुछ ढूंढ रही है ? हां, एक बेहतर सृष्टि.....और बेहतर इन्सान। संन्यासी चीख पड़ा :

''तो यह जगत क्या प्रकृति की प्रयोगशाला है। हम मेंढक और कबूतर हैं–बंदर हैं ?''

शिवानी हंस पड़ी :

''नहीं, हमीं तो हैं वह विराट् प्रकृति–हमीं अपने भीतर एक बेहतर सृष्टि, बेहतर रचना करना चाहते हैं।''

संन्यासी ने पूरे विश्वास के साथ कहा :

''सब कुछ वही ब्रह्म कर सकता है–वही करता है।''

शिवानी धीरे से बोली, ''नहीं, सब कुछ इन्सान करता है।''

''पर यह संभव कैसे है ?''

''है न, यही तो देख रही हूं–अपने–आपमें बंदी रहकर इन्सान विनाश करता है और अपने से बाहर निकलकर वह रचना करता है–बेहतर सृष्टि.....बेहतर इन्सान।''

अचानक शिवानी की नजर दाईं ओर घूमी। देखा, वही बाराखंबा रोड के बंगले की मर्सडीज गाड़ी। उसमें चार आदमी बैठे हैं। दो पुलिस की वदी में हैं, दो सामान्य कपड़ों में। ड्राइवर पहचान में नहीं आ रहा है।

''क्या है मां ?''

''लगता है वह गाड़ी मुझे लेने आई है।''

''क्यों ?''

''मेरी अपनी एक लड़ाई है।''

कार से वे चारों आदमी शिवानी की ओर दौड़े। उसे जबरन पकड़कर गाड़ी में डालने लगे। संन्यासी उनपर झपटा।

शिवानी ने रोक दिया :

''नहीं, इन्हें अपना काम पूरा करने दो। ये निर्दोष हैं।''

गाड़ी दिल्ली की ओर भागी। बंगले पर पहुंची तो संध्या के छः बज चुके थे।

शिवानी उस गाड़ी में ही मूर्तिवत बैठी रही। दरबान, ड्राइवर, नौकर–चाकर सभी आए, वह गाड़ी से नीचे नहीं उतरी।

अन्त में कुंवर आया। बड़े प्रेम से बोला :

''आओ, बाहर आ जाओ न। जो हुआ, उसे भूल जाओ। आओ, क्या फर्क पड़ता है।''

शिवानी ने कहा, ''मैं पुलिस को फोन कर सकती हूं ?''

''हां, हां, शौक से। पर क्यों ?''

''ज़रूरत है।''

तभी बरामदे में विजय दीखा–पहले वह पहचान नहीं पाई। कितनी जल्दी वह जवान हो गया।

वह सब कुछ भूलकर त्तकाल गाड़ी से बाहर आ गई। विजय को प्यार करती हुई बोली :

''क्यों, पढ़ाई पूरी हो गई ?''

इस तरह उसने सहज ही कई प्रश्न किए, पर उसे अपने पुत्र से कोई जवाब न मिला।

उसने एक सूनी निगाह से कुंवर और विजय को देखा, फिर बरामदे में जाकर फोन उठा लिया, ''हैलो, पुलिस–फौरन आइए–मैंने अपने पति की हत्या कर दी है। पता नोट कीजिए.....।''

एक ओर से पुलिस आई, दूसरी ओर से वही डाक्टर घोष। शिवानी वहीं बरामदे में बैठी रह गई। कुंवर और विजय उसके आसपास खड़े थे।

पुलिस अफसर ने पूछा, ''किसने पति का 'मर्डर' किया ?''

''मैंने.....मैंने।''

''लाश कहां है ?''

''तलाश कीजिए।''

कुंवर ने कहा, ''यह औरत पागल है, इसका दिमाग खराब है''

''तो इसने यूं ही फोन किया ?''

''जी हां.....''

डाक्टर घोष पुलिस अफसर को एक ओर ले जाकर उसे पूरी बात समझाने लगे। पुलिस चली गई। डाक्टर घोष पास आए। वह समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर मामला क्या है ? सारे वातावरण में एक अजीब तरह की तनावट थी। वह ड्राइवर के पास गए। उसने पूरी बात बताई। कुंवर बोला, ''इससे पूछिए, इसने ऐसा क्यों किया ?''

शिवानी बोली, ''इससे पूछिए पहले, इसने ऐसा क्यों किया मेरे साथ ?''

डाक्टर घोष ने पूरी स्थिति को समझकर कुंवर से पूछा :

''आपने इसे इस तरह ज़बरदस्ती पकड़कर यहां क्यों मंगाया ?''

''यह मेरी पत्नी है।''

''यह एक स्त्री है, ऐसा कभी आपने महसूस किया ?''

''क्यों नहीं, इसे यहां किस चीज़ की तकलीफ है ?''

''मुझे पता है, क्या तकलीफ है।''

''क्या है ?''

''आपने कभी इसकी तकलीफ को नहीं समझा।''

''इसने मुझे कब बताया ?''

''वह बताई नहीं जा सकती।''

''तो आप ही बताइए मुझे।''

डाक्टर घोष कुंवर को अपने संग लिए ड्राइंग रूम में चले गए।

विजय अपनी कार पर बैठ कहीं चला गया। उसका कोई अपना कार्यक्रम था। शिवानी अकेली उसी बरामदे में चुपचाप बैठी रही। डाक्टर घोष कुंवर को बता रहे थे–शादी से पहले स्त्री–पुरुष की उसके लिए एक तैयारी की ज़रूरत है। एक–दूसरे को जानना बहुत ज़रूरी है। अगर यह जानना शादी से पहले नामुमकिन हो तो शादी के बाद यह जानना बेहद ज़रूरी है। वह यहां मुमकिन न हो सका। आपके पास उसके लिए वक्त नहीं था। मगर यह वक्त शिवानी के पास ज़रूरत से ज्यादा था। उसे आपके बारे में जितना जानना चाहिए था, उससे कहीं ज्यादा उसने आपके बारे में जान लिया। यही दुर्घटना यहां हो गई। और आप इस दुर्घटना को और बढ़ाते चले गए।

''आप मेरे डाक्टर हैं या शिवानी के ?''

''मैं तो रोग का डाक्टर हूं।''

''आपको पैसे कौन देता है ?''

''ज़ाहिर है आप ही देते हैं, पर इसके माने यह नहीं कि मैं झूठ बोलूं।''

''आपको उसकी दवा, उसका उपचार करना चाहिए।''

''किस बात की दवा.....उपचार ?''

''वह पागल है, उसका दिमाग खराब है–सबूत है, इस तरह उसका पुलिस को फोन करना।''

डाक्टर घोष चुप हो गए। कुंवर आवेश में भरा था। वह बार–बार अपनी मुट्ठियां बांधता और हवा में उसे घुमाता।

डाक्टर घोष बोले, ''दरअसल मानसिक रोग आपको है.....आप मुझे माफ कीजिए, मेरा फर्ज़ है यह बताना.....।''

''नानसेन्स.....आप बकते क्या हैं ?''

''आप अपने अलावा और कुछ नहीं सोच सकते.....यह कितना बड़ा मानसिक रोग है.....इसे कभी सोचा है ?''

''मैंने इतने काम किए हैं.....इतनी इज्जत, इतना 'इस्टेटस', इतना धन कमाया है.....एक से एक आलीशान बिल्डिंग बनाई है.....और आप मुझे.....मुझे मानसिक रोगी कहते हैं ? आपका दिमाग खराब है।''

यह कहकर कुंवर अपने दफ्तरवाले कमरे में गया। आलमारी से इमारतों के नक्शों का एक ढेर लाकर सामने पटक दिया।

''देखिए, इमारतों के नक्शे।''

डाक्टर घोष ने नक्शों को देखना शुरू किया–एक–एक को गौर से देख डाला। उसे हटाते हुए बोले :

''अपनी ज़िन्दगी का भी कोई नक्शा बनाया है ?''

''क्या ?''

''अपने जीवन का कोई मानचित्र।''

कुंवर को इस तरह चुप देखकर डाक्टर घोष हंस पड़े। कुंवर गुस्से से लाल हो गया।

''खामोश !''

''सच कपूर साहब, आपकी तबियत खराब है। सोचिए, उतने धन की आपको ज़रूरत है जितना इकट्ठा कर रखा है ? आप तो इतना काम करते हैं, उसके पीछे घमंड के अलावा और कोई भाव है ? तभी आपकी बनाई हुई एक भी बिल्डिग अच्छी नहीं है, उसमें न कोई भाव है, न अथ, न कोई संदेश.....। तभी आपने जाना ही नहीं कि जो शिवानी आपको मिली है, वह है क्या.....आप खुद क्या हैं अपने लिए.....स्वयं तक को नहीं जाना।''

''यू गेट आउट.....निकल जाओ बाहर।''

''अफसोस है, आपकी तबियत खराब है।''

कुंवर गुस्से से चीख पड़ा। सारे नौकर–चाकर दौड़ आए। डाक्टर घोष ने कहा, ''इन्हें आराम की ज़रूरत है।''

यह कहकर वह बरामदे में चले आए। वह शिवानी को ढूंढने लगे। वह न जाने कहां चली गई थी।

रात के साढ़े नौ बज चुके थे। जनवरी की ठंड। डाक्टर घोष अपनी कार चलाते हुए कनाट प्लेस को जोड़ने वाली सारी सड़कों पर उसे ढूंढने लगे। वह अचानक फायर ब्रिगेड के सामने खड़ी मिली।

''मैं कब से ढूंढ रहा हूं तुम्हें।''

वह हंसी, ''याद है, आपने मुझे किस तरह कुरुक्षेत्र के शरणार्थी शिविर में छोड़ दिया था ?''

''तुम्हें कुछ और याद ही नहीं रहा वहां पहुंच कर ?''

''हां, अब तक और कुछ नहीं याद आ रहा है।''

शिवानी डाक्टर घोष से वहीं की बातें करने लगी–कुरुक्षेत्र की, महम की, रोहतक की, गुड़गांव की, मुहाजरों की, जाटों की, पाकिस्तान जाने वाले उस काफिले की.....।

डाक्टर घोष ने वह सब बताना चाहा, जो कुंवर के साथ उनकी मुठभेड़ के बीच हुई है, पर शिवानी ने उसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली।

''अब कहां जाना चाहोगी ?''

''विष्णुपद के पास।''

दोनों दरियागंज पहुंचे। डाक्टर घोष को उसने धन्यवाद देना चाहा। डाक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, ''किसीको पता नहीं, मैं कलकत्ते में अपने एम०बी०बी०एस० की पढ़ाई के दिनों कम्युनिस्ट पार्टी का सक्रिय सदस्य था। जब मैं तुम्हें देखता हूं, मुझे मेरा वही जीवन याद आ जाता है और मैं न जाने कैसे निरुत्साह, दुःख–निराशा से भर जाता हूं।''

शिवानी उन्हें अजब जिज्ञासा से देखने लगी।

''अच्छा, मैं कल सुबह तुम्हें फोन करूंगा।''

यह कहकर डाक्टर घोष चले गए। शिवानी ऊपर गई। सारा घर खुला था–चीज़ें, सामान, कपड़े सब इधर–उधर बिखरे थे। वहां कोई न था। वह नीचे अखबार कार्यालय में गई। वहां चारों ओर सन्नाटा था। मशीन चुप थी। संपादकीय कमरे में अकेला वही मनसुख बैठा था।

''आरे, ककहां है सब लोग ?''

पहले तो मनसुख शिवानी को देखकर घबड़ा गया, फिर वह बताने लगा कि पिछले कितने दिनों से विष्णुपद गायब है। पहले पता चला वह शरणार्थियों की जगह–जगह सेवा–मदद कर रहे हैं। फिर एक दिन वह यह कहकर न जाने कहां चले गए कि अखबार निकालने से ज्यादा बड़ा काम सामने है। अगर तुम अकेले अखबार निकाल सको तो निकालो। सोचिए भला, मैं अकेले अखबार निकाल सकता हूं ? प्रेस–कर्मचारियों को पिछले महीने की तनखाह नहीं मिली है। सुना है बैंक का सारा धन उन्होंने शरणार्थियों के लिए भोजन, वस्त्र, दवा वगैरह में लगा दिया।''

''और बाबू का कोई पता नहीं ?''

''नहीं।''

शिवानी बड़ी देर तक वहीं कुर्सी पर शांत बैठी रही। माथा उठाए हुए आंख बंदकर न जाने किस लोक में खो गई।

फिर जागकर बोली, ''अखबार के कागज़ हैं ?''

''हैं।''

दोनों जूझने लगे। शिवानी ने पहले मशीन के लिए तैयार पुराने मैटर में कुछ हेरफेर करके, नये शीर्षक, उपशीर्षक देकर कहा :

''इन चार पेजों के प्रूफ उठाओ। मैं दो पेज के मैटर तैयार करती हूं।''

रात–भर के उस भयानक युद्ध ने 'नवभारत' का नया अंक सुबह प्रकाशित कर दिया।

नवभारत के कर्मचारी उसे देखकर कार्यालय दौड़े आए। वह अंक दूसरे दिन न जाने किस तरह शरणार्थी शिविर में विष्णुपद के सामने आया। वह ताज्जुब में पड़ गया, यह अखबार इस तरह फिर निकला कैसे ?

तीसरे दिन विष्णुपद दिल्ली लौटा। उसे बुरी तरह का जुकाम–खांसी और ज्वर था। सारा मुंह लाल हो रहा था। शिवानी ने उसका कमरा ठीक किया। नया बिस्तर लगाया और उसे लिहाफ के नीचे सुला दिया।

डाक्टर घोष आए। विष्णुपद को दवा दी। वह सो गया। प्रेस–कर्मचारी काम पर लौट आए और अखबार का काम शुरू हो गया।

अब समस्या थी प्रेस–कर्मचारियां को पिछले महीने की तनख्वाह देने की। मनसुख बैंक से लौट आया था। बैंक के खाते में कुल तेरह सौ रुपये शेष थे। सारी तनख्वाह के कुल आठ हजार सात सौ रुपये होते थे।

शिवानी ने डाक्टर घोष से पांच हजार रुपये उधार लिए और छः हजार में अपने सारे गहने बेच दिए। अगले दिन सबको तनख्वाह बांट दी गई।

एक दिन शिवानी ने डाक्टर घोष से कहा :

''डाक्टर साहब, मैंने कुंवर से 'डाइवोर्स' लेने का फैसला कर लिया है।''

''पहले तो तुम कहती थी.....मुझे उससे कुछ भी नहीं लेना है।''

''अब मैं वह नहीं रही। मैं उस सबको खत्म करके पूरी तरह से जला देना चाहती हूं। अपने पूरे 'पास्ट' को।''

''मुझसे उसकी कई बार बातें हुई हैं, वह 'डाइवोर्स' नहीं देगा।''

''पर 'डाइवोर्स' मैं लूंगी। वह कौन होता है, न देने वाला। कोर्ट में जाऊंगी और साबित करूंगी उसकी बेरहमी, उसके अत्याचार और ज़रूरत पड़ी तो उसकी सारी चरित्रहीनता का पर्दाफाश करूंगी। ईश्वर की कृपा से मैं नारी–भावुकता से अब मुक्त हो चुकी हूं।''

शिवानी के उस नैतिक विश्वास और चरित्र–बल को देखकर डाक्टर घोष की प्रसन्नता की सीमा न रही।

चार बजे शाम को मनसुख अपने पिता रामहल्ला को संग लिए दरियागंज लौटा। पर उसके पीछे ही पिहानीवाली भी आईं।

विष्णुपद ज्वर में बेहोश–सा पड़ा था। शिवानी कभी ऊपर आकर उसकी देखभाल कर जाती फिर नीचे जाकर अखबार के काम में लग जाती।

पिहानीवाली ने चुपचाप वहां का सारा दृश्य देखा। रामहल्ला विष्णुपद के पायताने बैठा है। शिवानी बहू उस तरह ऊपर–नीचे दौड़ रही है। मनसुा प्रूफ पढ़ रहा है, मशीन चलाकर छापता है और दौड़कर रसोईघर भी सम्भालता है।

पिहानीवाली के सामने चाय का प्याला रखकर मनसुख बोला, ''बाबू की तबियत पहले से काफी ठीक है।''

''बहू कहां है ?''

''नीचे प्रेस में।''

''क्या ?''

''हां, मां जी, वही तो पिछले कई दिनों से सारा अखबार निकाल रही हैं।''

''बहू को मेरे पास बुलाओ।''

शिवानी ऊपर आई। पिहानीवाली उसे देखती रह गई। बहू के सारे कपड़ों पर इधर–उधर मैल लगी है। उसके हाथ काले हो रहे हैं। पैर नंगे हैं। बदन पर एक भी आभूषण नहीं। एक भी ऊनी वस्त्र नहीं। पिछले एक सप्ताह के भीतर कुंवर के बंगले पर और यहां दरियागंज में क्या–क्या घटा है, पिहानीवाली को सब कुछ पता है। बंगले की घटना कुंवर ने बताई और यहां की मनसुख ने।

''यह सब क्या है बहूरानी ?''

''क्या ?''

''तुम इतने बड़े घर की बहू हो।''

''वह ब्रजरानी मां भी तो उसी घर की थीं।''

''तुम हिन्दू बहू हो।''

शिवानी की आंखों में पाकिस्तान से आने और यहां से जाने वाले हिन्दू–मुसलमानों के वे काफिले चमकने लगे। लुटी हुई वे हिन्दू–मुस्लिम स्त्रियां.....उस तरह उनके गर्भ से शिशुओं के जन्म.....उनकी वे यातनाएं.....दर्द।

शिवानी भरे कंठ से बोली, ''पति लोग हिन्दू पुरुष नहीं हैं ?''

''मर्दों की बात जुदा है।''

''किस बात में ? कैसे ?''

''स्त्री–पुरुष के धर्म समान नहीं हैं।''

''धर्म.....वह धर्म मर गया जिस दिन धर्म बांट कर देखा गया।''

''ऐं !''

पिहानीवाली के गले से इतना ही निकला। फिर वह रोने लगी। कुछ शांत होकर बोली, ''वाह रे, कहीं हम लोगों के पतियों को देखा होता। उस ब्रजरानी के पति को, मेरे पति और मेरी सास के पति को.....अब तो मन टूट चुका है, शरीर भी टूट चुका है।''

तभी कम्बल ओढ़े वहां विष्णुपद आ गया।

शिवानी उसे ले जाने लगी। विष्णुपद ने विनय के स्वर में कहा, ''मुझे भी ताई जी से बातें करने दो।''

''भइया, मैं यह क्या सुन रही हूं ?''

''मैं क्या बताऊं, तुम तो सब जानती हो। तुम्हीं तो कुंवर की मां हो.....और किसी हद तक मेरी भी। शिवानी के द्वारा ही पहली बार मैंने अपनी मां के दर्द को जाना और स्त्री के प्राणों की गहराई को। मैं और किसी स्त्री को नहीं जानता। शिवानी केवल स्त्री है–सिर्फ इतना ही जानता हूं और इसीके द्वारा अपने को.....।''

''भइया, मेरी बात सुनो।''

''ताई जी मुझे पहले अपनी बात कह लेने दो, जो कभी किसीसे नहीं कह पाया–अपनी मां के रहते हुए तो कुछ भी नहीं देखा, कुछ भी नहीं जाना–बाप को भी नहीं–मां–बाप को पाने का वह गर्व मन में ही रह गया। वह गौरव प्राप्त नहीं कर सका। उस गौरव में अधिकार नहीं, उस भोग का दावा भी नहीं। सबको वहीं छोड़कर जाना पड़ा है–छोड़कर रहना पड़ा है। उस गौरव की छाया में बैठकर न मैं अपना जीवन धन्य कर सका, न मेरी मां और न मेरे बाप। भगवान ! ऐसे सड़े समाज की रचना क्यों की ?''

''आखिर हम भी तो स्त्रियां हैं।''

''पता नहीं ताई जी।''

पिहानीवाली जब बंगले पर पहुंची, वहां न कुंवर का पता था, न विजय का। दरबान ने बताया–'गोल्फ लिंक' में एक ठंडी कोठी बन रही है–विजय बाबू के लिए। इम्पोर्ट–एक्सपोर्ट का नया कारोबार वहां से शुरू हो रहा है।

दरबान को संग लिए पिहानीवाली 'गोल्फ लिंक' की उसी कोठी पर पहुंची। सब कुछ बनकर तैयार हो गया था। दोमंजिली इमारत में फर्नीचर–पर्दे लग रहे थे। 'एअर कंडीशन' का 'प्लांट' लग चुका था। कुंवर और विजय वहीं मिले।

पिहानीवाली का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था–आंखें फूली हुई थीं। कुंवर और विजय को सामने कर बुझे हुए स्वरों में कहा :

''कोठियां बना रहे हो, पर क्या इसकी भी चिंता है, इनमें रहेगा कौन ?''

''क्यों ? मेरा बेटा रहेगा, नीचे एक दफ्तर, दूसरी ओर ड्राइंग–कम–डाइनिंग हाल, रिसेप्शन, ऊपर रहना।''

''तुम भी तो मेरे बेटे हो, कपूर हवेली से बाराखंबा के बंगले में रहने आए थे.....।''

''रह तो रहा हूं।''

''शिवानी तुझे तलाक देने जा रही है।''

''वह बेवकूफ पागल है।''

''क्या यह कम शर्मनाक है ?''

''उसे तलाक नहीं मिलेगा।''

''तुम किस दुनिया में हो कुंवर बेटे ?''

''अपनी दुनिया में !''

''तुम्हारी उस दुनिया में आग लग चुकी है। वह जलकर खाक–स्याह है।''

''मां !''

''तुमने ऐसा होने क्यों दिया ?''

''हो जाता है, सब ठीक हो जाएगा।''

यह कहकर कुंवर आदमियों से बोला, ''चालू करो अब एअर कंडीशन प्लांट।''

मशीन चल पड़ी।

''बंद कर दो कोठी की सब खिड़कियां, दरवाजे।''

मां चीखकर बोली, ''इस ठंड में यह मशीन.....।''

''मां, तुम क्या जानो, ठंड में यह मशीन कोठी को गर्म रखेगी और गर्मी में ठंडा, समझीं ?''

''मैं यह सब समझने नहीं आई हूं.....मैं तुमसे कुछ पूछने आई हूं।''

''मेरे पास अभी वक्त नहीं है। हम यहां एक बहुत ही ज़रूरी काम को पूरा करने में लगे हैं। कुछ ही दिनों में यहां पश्चिमी जर्मनी से कुछ व्यापारी आ रहे हैं। वे यहीं रुकेंगे। यहीं बातें होंगी, फिर विजय को उनके साथ कई जगह जाना होगा–यह उनके साथ यूरोप भी जाएगा.....।''

पिहानीवाली तड़पकर बोली, ''मैं यही कहने आई हूं, यह सब कुछ बेकार बेमतलब धरा रह जाएगा–अगर कहीं तुम्हारी घर–गृहस्थी टूट गई।''

''ऐसा कोई डर नहीं मुझे।''

''मैं तुझे सावधान करने आई हूं।''

''मुझे सब बातों का पता है, और सबका इलाज है मेरे पास।''

''सब कुछ उसी व्यापार बुद्धि से नहीं चलेगा।''

''कौन बहस करे तुमसे। इतना वक्त नहीं है मेरे पास।''

''तो बहू का कहना सच है न, ज़िन्दगी के लिए तुम्हारे पास कभी वक्त नहीं।''

''मां, फिर बात करेंगे।''

''उसका समय खत्म हो रहा है। समय किसीके लिए बैठा नहीं रहता। देखा नहीं, किस तरह उतने प्रतापी अंगरेज यहां से चले गए।''

यह कहकर पिहानीवाली गाड़ी में आ बैठीं। फिर बाहर निकलीं, विजय को अपने संग ले जाने के लिए।

''तू चल मेरे साथ।''

''मैं 'मदर' से नहीं मिलना चाहता।''

''क्या ?''

''वह पागल है।''

''क्या पागलपन किया उसने तेरे साथ ?''

'''फादर' के साथ क्यों किया ?''

''हां, बोल, बता, तेरे 'फादर' के साथ उसने क्यों किया ? बोलता क्यों नहीं, नालायक.....बेवकूफ।''

दरबान ने बढ़कर मालकिन को सम्भाल लिया। गाड़ी में बिठाया। जैसे ही गाड़ी चली–दूर से एक हंसी सुनाई पड़ी।

कपूर हवेली को जैसे पिहानीवाली ने अपने सिर पर उठा लिया हो। तलाक की बात सुनकर सारे नौकर–चाकर सन्न रह गए। पर मालिक हीराचन्द जी कपूर ज़रा भी विचलित नहीं हैं। उनका कहना है–सबकी जड़ वही विष्णुपद है। और कारण है, बहू के पिता जज साहब और उनकी पत्नी–जिन्हें वह पपा–ममी कहती है। उन्होंने अपनी बेटी को ऐसे गंदे संस्कार ही दिएह कि वह आज तलाक जैसी बात सोच रही है।

''फिर क्या करे वह ?'' पिहानीवाली ने तड़पकर पूछा।

''जहर खाकर मर जाए।'' मालिक बोले।

''अगर वह ज़िन्दा रहना चाहे तो ?''

''ऐसी औरतों का हमारे खानदान में कोई जगह नहीं, उसका गला दबोचकर मार देना ही एक रास्ता है।''

''वह जमाना लद गया। अंगरेज चले गए।''

''जिनके पास ताकत है, उनके जमाने कहीं नहीं जाते।''

''तो जाओ मारो, वह विष्णु के पास रह रही है। अखबार वही निकाल रही है। पर याद रखना, तुम्हारे खानदान का कच्चा चिट्ठा वही छापेगी।''

''तुम चाहती क्या हो ?''

''वह जाकर उसी बहू से पूछा।''

''मैं जाऊं, उसके पास, जिसने इस तरह बंगले से बाहर पैर रखा, जो न जाने कहां–कहां घूमी, जो पराये पुरुष के संग रह रही है।''

''फिर क्या करोगे अब उसका ?''

''वह रहे, घूमे इसी तरह निर्लज्ज, बेइज्जत। वह आकर मुझसे माफी मांगे, फिर मैं सोचूंगा आगे।''

''वाह वाह वाह, कपूरवालों की इज्जत.....लाज.....शर्म। कुछ भी हो जाए, इनपर आंच नहीं। रस्सी जल गई, ऐंठ न गई। हमारी इज्जत तो पहले ही कुंवर ने उतार ली। याद है उसने हमें क्या कहा था ?.....बनिया, साहूकार भी नहीं। बने रहो कपूर सेठ.....रायबहादुर.....सोने–चांदी भरी तिजोरियां, धन–भरे चहबच्चे, बैंक, रोकड़बही.....जाओ, चाटो उसे। अब बेटे का बेटा गोल्फ लिंक में ठंडी कोठी बनारहाह ै–एक दिन वह अपने बात को कहेगा–'व्यापारी' यही है कपूरवालों की शान.....विकास.....तरक्की। ज़िन्दगी न जाने कहां, कब हाथ से छूट गई.....।''

यह कहती–कहती पिहानीवाली सामने से हट गई। आज वह इस समय न जाने क्यों अपनी वह कपूर इमारत चुपचाप देख रही है। सामने से चहारदीवारी के भीतर लाल पत्थर का रंगीन ऊंचा दरवाजा देखरही है। लोहे की बड़ी–बड़ी कीलजों जड़े दो फाटक.....दरवाजे के भीतर दोनों तरफ प्याजी रंग की दोनों चौकियां.....लम्बी पेचदार ड्यौढ़ी। आगे लंबा–चौड़ा आंगन। बीच में हौज। कुलदेव की कोठरी। और वह गद्दी वाला कमरा। दालान के नीचे गुप्त तहकाने पहली मंजिल पर जड़ाऊ पत्थरों की वे तिजोरियां–अशरफियों के लिए।

पिहानीवाली को याद आ रहा है–जिस दिन उसने उस शिवानी बहू को यह सब दिखाया था–उसने कहा था–''यह सब सामंतीय है.....इसमें वह शक्ति कहां, जो एक साधारण घर में होती है। ऐसी ही हवेलियों से ब्रजरानियां छीन ले जाई जाती हैं और इन्हें ज़रा–सा अपमान भी नहीं महसूस होता।''

पिहानीवाली पलटकर कुलदेव की कोठरी के सामने गई। चौखट पर माथा रखकर पूछा–''बोलो....जवाब दो कुलदेव, जिस घर में लक्ष्मी की पूजा होती है, वहां की सरस्वती कहां जाए ? सरस्वती को कब तक वनवास मिलता रहेगा ? यह कैसा कुल है ? तुम इसके कैसे देवता हो ? मैंने चुपचाप यहां सब भोगा है.....मेरी देवरानियों ने.....देवरों ने..... भतीजों ने.....भी चुपचाप सब सहा है, भोगा है.....धन–दौलत, विलास.....उदासी.....अकर्मता। किसीने किसीको अपना नहीं महसूस किया। यहां सब कुछ वही एक मालिक होता है.....हां, मैं भी मालकिन थी.....हूं.....पर स्त्री का मालिक के सामने कैसा अधिकार.....कैसा गौरव.....।''

पिहानीवाली की आंखों से आंसुओं की धार बह रही थी। एकाएक उसे लगा, वह किसके सामने इस तरह रो रही है ? यह कुलदेव हैं कौन ? यह किसकी कल्पना है ? इसका मतलब क्या है ? क्या यह हमारे अपवित्र भावों को, रिश्तों–सम्बन्धों को पवित्र बना सकता है ?

पिहानीवाली आंख मंदे खड़ी रह गई। उसे लगा, उनके सामने वही ब्रजरानी, वही अनिंद्य सुन्दरी, पवित्र आत्मा, भटकती हुई आ खड़ी हुई है और कह रही है–इस जगत में आकर क्या देना है, किसे देना है, कैसे देना है–जिसे यह नहीं पता, उसका जीवन व्यर्थ है। मैं व्यर्थ गई, पर भविष्य व्यर्थ नहीं जाएगा, ऐसा आशीष दो.....। खोलो आंख, देखो, सामने तुम्हारी ही बहू शिवानी खड़ी है। पिहानीवाली की आंखें खुल गईं। उसके कानों में सुनाई पड़ने लगा–शिवानी बहू का गाया हुआ वह कल्याण.....राग.....।

22

उन दिनों गांधी जी फिर दिल्ली आकर हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे। नंदिनी एक दिन शिवानी से मिलने आई–उसी नवभारत कार्यालय में।

तब शिवानी के तलाक का केस जज के इजलास में शुरू ही होने को था–'सेपरेशन' समय बीत चुकाथा। नंदिनी ने पूछा, ''बताओ, अब मुझे क्या करना चाहिए, अब मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। लगता है मेरा अन्त अबसमीप है। जिस आजादी का स्वप्न हमने देखा था, वह देश–विभाजन और अंगरेजों की चाल से पूरा न हुआ। मन बहुत दुःखी रहता है–लगता है, काम अधूरा ही रह गया।''

''गांधी जी से मिलो, वह सचमुच मुझे महात्मा लगते हैं।''

''उनसे कई बार मिली हूं, वह कहते हैं–शरणार्थियों के शिविरों में जाकर काम करो। पर वहां जब मैं जाती हूं तो मुझे लगता है–मैं स्वय शरणार्थी हूं।''

''पंचानन कहां है ?''

''वह भी अब वह नहीं रहा। उसका अब कोई भरोसा नहीं।''

शिवानी उसे संग लिए हुए गांधी जी के पास गई। गांधी जी का उस दिन उपवास था। वह मौन थे उस दिन। उन्होंने लिखकर आज्ञा दी–

''इन्हें इनके आश्रम में छोड़ आओ।''

''कहां है वह आश्रम ?''

''गुड़गांव से तेरह मील पश्चिम–मौहाना गांव में।''

नंदिनी ने यह बताकर शिवानी के कान में कहा, ''मैं वहां जाना नहीं चाहती।''

''क्यों ?''

''यह नहीं पता। स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, यह कारण तो उतना नहीं है, कारण कुछ भीतरी है, जो पकड़ में नहीं आता।''

शिवानी उसे संग लिए अपनी कार से जब मोहाना पहुंची, तब शाम हो चुकी थी। आश्रम बिल्कुल खाली पड़ा था। लोग उधर के रक्तपात और लूटमार के कारण घबड़ाकर भाग चुके थे। दोनों को अकेले वहां रहना था। खाने को भी कुछ न था। आश्रम में न कोई फाटक था, न दरवाजे, जो रात को बंद किए जाते।

''बहन, तुम इतनी बहादुर स्त्री होकर अब डरने क्यों लगी ?''

शिवानी के इस प्रश्न ने नंदिनी को जैसे और भी आहत कर दिया। वह चुप उसे तकने लगी।

''एक दिन तुम्हारी ही बहादुरी, साहस, तेज देखकर मैं जग गई थी।''

''अब वह देश की आजादी के बाद न जाने क्यों खत्म हो गया।''

तभी वहां गांव वाले भागते हुए आए और कहने लगे, ''भागो–भागो.....गांव में दंगा ज़ोर पकड़ गया है। चारों तरफ से खतरा है।''

''कैसा खतरा ? कैसा दंगा अब ?'' शिवानी ने पूछा।

''भड़के हुए जाट मुसलमानों को मार रहे हैं।''

यह खबर सुनकर नंदिनी मारे भय के थर–थर कांपने लगी। शिवानी उसकी दशा देखकर आश्चर्यचकित थी–इतनी बड़ी क्रांतिकारी स्त्री की यह दशा ! देखते–देखते जाटों ने आकर आश्रम में आग लगा दी। जलते हुए आश्रम के सामने शिवानी उन सैकड़ों जाट के सामने माथ उठाए हुए खड़ी थी :

''क्या चाहते हो ?''

''बदला.....खून का बदला खून से।''

''पर किससे ?''

''इन्हीं मुसलमानों से।''

''पर ये तो तुम्हारे देश के नागरिक हैं।''

''इनका मुल्क पाकिस्तान है–यहां ये अब क्यों है ?''

''तुम्हारा भी मुल्क हिन्दोस्तान है, तुम लोग अब यहां क्यों हो ?''

शिवानी का यह प्रश्न सुनकर सारे जाट चिल्ला उठे, ''हम अपने हिन्दोस्तान में ही तो हैं।''

''जानते हो हिन्दोस्तान क्या है ? यह ऐसा देश है, जो कभी हिन्दू–मुसलमान, शूद्र–अशूद्र, ऊंच–नीच में नहीं पहचाना–जाना जा सकता।''

''बकवास।''

जाट लोग हथियार और आग लिए गांव की ओर बढ़े। शिवानी उनके सामने खड़ी होकर चिल्लाई–

''जाओ, पाकिस्तान–हिन्दुस्तान बनाने वालों को मारो, अगर तुम लोगों में सचमुच ताकत है.....समझ है।''

शिवानी तब तक उस पागल भीड़ के सामने खड़ी रही, जब तक वहां पुलिस का एक बड़ा दस्ता न आ गया।

सुबह मुसलमान स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों का एक काफिला संग लिए शिवानी दिल्ली लौटी। हुमायूं के मकबरे में, उसके आसपास उन्हें रखने के प्रबंध में वह लग गई।

एक दिन वह नंदिनी तथा कुछ अन्य स्वयंसेविकाओं के साथ शरणार्थी मुसलमानों के लिए भिक्षा मांगने निकली। लोग दान देना चाहते थे, लेकिन उन्हें विश्वास न हो रहा था कि जिस काम के लिए वह धन इकट्ठा किया जा रहा है, वहां उनके पास यह धन पहुंचेगा भी।

हम किसे दें ?

यही सवाल सबके मन में है।

यही सवाल तो शिवानी का था। पर जब से उसने इस सवाल से अपनी आंखें मिलाई हैं, तब से वह हर क्षण अनुभव कर रही है–यही सवाल सबका है.....इस पूरे जगत के एक–एक जीवित प्राणी का। यही प्रश्न सबके व्यवहार में, कर्मों से प्रकट है, सबकी खामोशी में भी यही सवाल हर क्षण पूछा जा रहा है। एक ने कहा, ''हम अपना दान केवल महात्मा गांधी को दे सकते हैं।''

यह सुनकर शिवानी हतप्रभ रह गई। उसे अनुभव हुआ, लोग कह रहे हैं–इन्सान देना किसे चाहता है ? जहां उसके दान का विश्वास हो, रक्षा हो, मतलब हो, अर्थ हो। गांधी प्रतीक हैं निःस्वार्थ के, सेवा के, त्याग के, करुणा के, समष्टि के। हम प्रतीक हैं स्वार्थ के, अहंकार के और फलतः अविश्वास के।

''अच्छा, यह सब धन बापू जी को दिया जाएगा।''

शिवानी की यह बात सुनते ही लोगों ने खुलकर दान देना शुरू किया। धन लिए वह बापू के पास आई। वह बिड़ला भवन में अनशन कर रहे थे। वे चाहते थे हिन्दू–मुसलमानों में एकता हो। पाकिस्तान बनने से जो हत्याकांड हुए थे, स्त्रियों की जो बेइज्जती हुई थी, बापू उसीका प्रायश्चित्त कर रहे थे।

बहुत देर बार शिवानी के मिलने की बारी आई। उसने अपने कार्यों को बताना शुरू किया, तभी बीच में बापू ने विनोद–भाव से कहा :

''अच्छा, तो तुम मुझे यह सुनाने आई हो कि तुमने बहुत काम किया।''

यह कहकर वह हंस पड़े। शिवानी घबड़ा गई। वह जैसे पहली बार पकड़ी गई हो। तभी उनकी वाणी सुनाई दी :

''सारा काम उसी ईश्वर का है.....उसीके निमित्त.....वही समुद्र है, हम तो उसीकी एक बूंद हैं। इस बूंद को समुद्र में डाल देना ही तो कर्म है.....महादान है, यही मुक्ति है।''

शिवानी को लगा, वह सचमुच किसी लहराते हुए समुद्र के सामने खड़ी है।

नंदिनी को हुमायूं के मकबरे के शिविर का इंचार्ज बनाकर शिवानी दरियागंज लौट आई। दिन के दस बजे थे।

''बाबू कहां हैं ?''

मनसुख ने बताया, ''चांदनी चौक गए हैं, मालिक से मिलने।''

''किस बात के लिए ?''

''अपना हिस्सा लेने के लिए।''

तभी सामने वह वृद्ध रामहल्ला आया लाठी टेकते हुए :

''विष्णुपद कपूर वालों की संपत्ति की चौथाई के हकदार हैं।''

''हैं..... ।''

''मालिक को देना पड़ेगा.....वह देंगे क्यों नहीं ?''

''तो बाबा, उन्हें तुमने भेजा है ?''

''हां, कोई मौज करे, कोई ठोकर खाए, यह कहां का न्याय।''

शिवानी प्रेस में जाकर काम देखने लगी। विष्णुपद शाम तक न लौटा। रामहल्ला को हवेली में भेजा गया। वहां कोई न मिला। बाराखंबा वाले बंगले पर भी कुछ न पता चला। गोल्फ लिंक की कोठी पर उसका पता चला। वहां मालिक और कुंवर के सामने विष्णुपद बैठा था।

मालिक बोले थे, ''शिवानी को तैयार करो, वह तलाक का मामला वापस ले ले, तो तुम्हारा हक तुम्हें मिल जाएगा।''

''शिवानी का मामला उसीका है। वह स्वतंत्र है। वह उसीका फैसला है। मेरे हक के मामले से उसके तलाक का क्या ताल्लुक..... ?''

''है, तभी तो।''

''पर मैं अपना हक लेने आया हूं।''

''हक की बात मत करो, अगर तुम्हें मेरी शर्त मंजूर है, तो मुझे हक देना भी मंजूर है।''

इस तरह वहां बातों में गर्मी बढ़ती गई थी। तर्कहीन बातों में अधिकार–शक्ति की गंध फैली हुई थी।

विष्णुपद वापस चला आया था।

शिवानी से उसने और कुछ नहीं बताया सिर्फ इतना कहा कि पहले हमें उन बेईमानों से तुम्हारा तलाक लेना होगा।

जैसे–जैसे न्यायालय में तलाक लेने की पहली तारीख नजदीक आती गई, वैसे–वैसे सारा नक्शा बदलता गया। पहले जो सुनाई पड़ता था–कुंवर यह करेगा, यह साबित करेगा, यह प्रमाण देगा, यह ताकत लगाएगा, इस तरह हराएगा–यह सब धीमा पड़ने लगा। सारी धमकियां शांत होने लगीं। हां, सच ऐसा ! बल्कि इधर–उधर से समझौते के संदेश आने लगे।

डा० घोष ने बड़ी मदद की थी। जो वकील तय किया था, वह इस क्षेत्र का विशेषज्ञ ही नहीं, बड़ा अच्छा व्यक्ति था। बड़ी शालीनता थी उसमें। शिवानी की ओर से जो तलाक का आवेदन दिया गया था, उसमें वह उन बातों को कतई नहीं देना चाहती थी जो कुंवर के नैतिक चरित्र से ताल्लुक रखती थीं। तब वकील से ही पहली बार पता चला कि पति के ऊपर 'क्रएल्टी' निर्ममता का ही केवल अभियोग लगाने से कुछ नहीं होगा। उतनी निर्ममता तो पति के अधिकार में आती है। हिन्दू पति का अधिकार पत्नी पर सबसे ज्यादा है। वह पत्नीत्व का जैसे चाहे इस्तेमाल करे। हां, उससे अनैतिक कार्य नहीं ले सकता।

शिवानी ने पूछा था, ''पति जो पत्नी के सारे गुणों की हत्या कर देता है, वह अनैतिक नहीं है ?''

''कानून की नजरों में नहीं।''

''क्यों ?''

''कानून बाहरी चीज़ें देखता है–क्योंकि वह ठोस प्रमाणों पर चलता है।''

डाक्टर घोष ने कहा, ''कुंवर का अनैतिक संबंध उतनी लड़कियों से रहा है–यह अभियोग क्यों नहीं लगातीं ?''

शिवानी को बड़ी तकलीफ हुई थी इसके उत्तर देने में। वह लजाती हुई बोली, ''यह किसी पत्नी के लिए सबसे ज्यादा दुःख की बात है कि उसका पति पत्नी के होते हुए अन्य स्त्रियों के पास जाए। यह स्त्री जाति के लिए अपमान है।''

''पर यही अभियोग तो तलाक दिलाएगा।''

''कोई और उपाय नहीं है ?''

शिवानी के इस निवेदन पर वकील हंस पड़ा था। कहने लगा था–''यह क्यों भूलती हैं, कानून बनाने वाले भी तो ज्यादातर ऐसे ही पुरुष होते हैं, जो स्त्री को दूसरे दर्जे की नागरिक मानते हैं।''

डाक्टर घोष ने कहा, ''सभ्य शरीफ स्त्री यहीं तो मारी ही जाती है। पति पहले तो उसकी कोमलता, उसके संस्कारों से उसका शोषण करता है फिर वह अपनी ताकत, अपने अधिकार को दिखाना शुरू करता है। यह वह तब करता है, जब पत्नी में वह शक्ति नष्ट हो चुकती है, जिसके आधार पर वह कहीं खड़ी हो सके।''

शिवानी ने कहा था, ''मैं चाहती हूं, मैं जज से खुद अपना केस लडूं। उसे बताऊं, मुझपर मेरे पति ने कितना अन्याय किया है, जुल्म ढाया है।''

''पति की तरफ का वकील उल्टे तुम्हीं पर यह अभियोग साबित कर देगा कि पत्नी ऐसे बड़े पति के लिए अयोग्य और नाकामयाब रही है।''

शिवानी ने स्वीकार किया, ''यह सच है।''

''इससे तुम मुकदमा हार जाओगी।''

''क्यों ?''

''जीत उस सच से होती है जिसमें भावुकता न हो, जिसमें ठोस प्रमाण हों–इसीके लिए स्त्री का साहस अनिवार्य है। इसी साहस की कमी का नाजायज फायदा पुरुष उठाता है।''

शिवानी की आंखें भर आई।

वह बिल्कुल चुप हो गई।

तब डाक्टर घोष ने मदद की, ''मेरे पास है उपाय, मैं कुंवर को मानसिक रोगी साबित करूंगा।''

पर इस सबकी नौबत नहीं आई। जिस दिन न्यायालय में तारीख थी, उस दिन मालिक हीराचंद जी पिहानीवाली के संग आए। मालिक बोले, ''बहू, हमारी इज्जत तुम्हारे हाथों में है। इसकी रक्षा करो।''

पिहानीवाली ने कहा, ''इन लोगों को अब होश आया है, जब घर में आग लग चुकी और सब कुछ जलक स्वाह हो चुका।''

शिवानी के लिए उनके सामने अब भी कुछ बोलना असंभव हो रहा था। वह भरी आंखों से उन्हें तकती रही।

मालिक बोले, ''मैं चाहता हूं, कोर्ट में ऐसी कोई सूरत न पैदा हो जिससे लोग हम पर खामखा कीचड़ उछालें।''

''क्या आप लोग सचमुच ऐसा चाहते हैं ?'' विष्णुपद ने पूछा था।

''हां, बिल्कुल।''

''ताई जी, मैं आपका यह अहसान कभी नहीं भूलूंगी।''

शिवानी ने यह कहकर पिहानीवाली की आंखों में देखा।

वह रो रही थीं।

''मैं यही दिन देखने को ज़िंदा थी।''

शिवानी उन्हें सांत्वना देने के लिए बगल के कमरे में ले जाने लगी। तभी मालिक ने गंभीरता से कहा :

''एक बात और पूछना चाहता हूं.....बहू यहां तुम्हारे ही संग रहेगी न ?''

विष्णुपद बोला, ''वह उसकी अपनी इच्छा है.....वह स्वतंत्र है।''

''क्यों बहू ?''

''हां, बोलो।''

शिवानी ने माथा उठाकर कहा, ''हां, मैं यहीं रहूंगी.....काम करूंगी।''

''ब्याह कर लोगी न ?''

''ब्याह इतना महत्वपूर्ण नहीं है।''

शिवानी को कुंवर से तलाक मिल गया। बल्कि वह पहली बार कुंवर से कृतज्ञ हुई। उसने सचमुच एक पुरुष की तरह उस मुकदमें में व्यवहार किया। लगा, वह तलाक देना ही नहीं, उससे लेना भी चाहता था। शिवानी कुंवर के साथ

अपनी बीती हुई ज़िन्दगी को याद करती हुई सोचने लगी थी–एक का देना, एक का लेना, कभी देना–लेना नहीं होता। यह होता तभी है–जब दोनों देना ही देना चाहते हैं–निःस्वार्थ किसी व्यापक जीवन अर्थ के लिए। पर ऐसा पहले क्यों नहीं होता ? पहले क्यों नहीं हुआ ?

जज का इजलास खचाखच भरा था। सारा कपूर परिवार वहां चुपचाप खड़ा था। इलाहाबाद से पपा–ममा और उनके कुछ मित्र भी वहां मौजूद थे।

जज ने फैसला देने से पहले कहा था, ''शिवानी, तुम जज की इकलौती लड़की रही हो, तुम्हारी इतनी शिक्षा, इतने गुण–इतने अच्छे संस्कार, पर इन्हें तुम कभी भूल नहीं पाईं–जैसे कुंवर अपने व्यवसाय, अपने धन और अपने–आपको कभी नहीं भूल पाया। दो अहंकारों का आपस में टकराने का यही नतीजा होता है।''

ममा ने धीरे से कहा था, ''नहीं, मेरी बेटी में कभी कोई अहंकार नहीं था।''

शिवानी ने स्वीकार किया मां से, ''ममा, हां, वह अहंकार मुझमें उस दिन से पैदा होना शुरू हुआ, जिस दिन से कुंवर ने मेरा अपमान करना शुरू किया।''

''ऑर्डर.....ऑर्डर..... ।''

कोर्ट में सन्नाटा छा गया था।

''क्लेमेन्सी.....मुआवजे में शिवानी को जितनी ज़रूरत हो, कुंवर खुशी से देने को तैयार है।''

''अब मेरा मांगना नहीं हो सकता।''

''ऑडर ऑर्डर.....तो ?''

जज ने फैसला पूरा कर दिया। तलाक और मुआवजे के रूप में शिवानी को ढाई लाख रुपये और मंडी हाउस, सिकंदरा रोड का पूरा बंगला।

जिस समय लोग इधर–उधर अपने घरों में ये बातें कर रहे थे, उस समय एक मोटर गाड़ी दिल्ली की सड़कों पर बेतहाशा दौड़ रही थी। गाड़ी सीधी कुतुब रोड से होती हुई आर० के० पुरम की ओर मुड़ गई है। फिर वह गाड़ी सड़क से दाईं ओर नीचे उतरकर एक पेड़ की छाया में खड़ी है। अभी सूरज नहीं डूबा है। चारों ओर रोशनी ही रोशनी है। इक्के–दुक्के लोग सड़क से आ–जा भी रहे हैं। पर वे दोनों गाड़ी से नीचे उतरकर पेड़ की छाया में अब तक चुपचाप खड़े हैं–सारी दुनिया से बिल्कुल अलग होकर।

दोनों वहीं एकात्म हैं।

दो आनन्द मूर्तियां एक विश्वास पर स्पर्श कर रही हैं। दोनों परस्पर जीवन–कथा सुना रहे हैं और सुनरहे हैं :

''कहां थे तम और मैं ?''

''कहां थे तुम और हम ?''

''काश, तुम अठारह वर्ष पहले मिले होते।''

''पर क्यों मिलते ?''

दोनों की हंसी। दोनों की बेताबी।

''अगर मेरे जीवन में यह घटना न हुई होती, तो क्या हम न मिलते ?''

''क्यों न मिलते ?''

''कैसे ?''

''हम दोनों एक–दूसरे को देने और पाने के लिए तलाशते.....ढूंढते।''

''क्यों ?''

दोनों हंसते चले जा रहे थे और एक–दूसरे का हाथ पकड़े हरे–भरे मैदान में, ऊंची–नीची जमीन पर पहाड़ीनुमा टीलों पर बेतहाशा दौड़ रहे थे।

''सुनो, सुनो, एक बात सुना।''

''सुनाओ।''

''इलाहाबाद के उस बंगले में जामुन का एक पेड़ था।''

''तो..... ।''

''उस पर रोज सुबह–शाम बिल्कुल उसी एक वक्त पर दो लाल रंग की चिड़ियां आती थीं। एक लड़की उन्हें मिसरी की डलीदेती थी।''

''क्यों ?''

''क्यों क्या, सबके अपने–अपने आनन्द होते हैं–उसका वही आनन्द था, देना..... ।''

''वह लड़की कौन थी ?''

''तुम.....तुम..... ।''

विष्णुपद को छूकर शिवानी, नहीं, नहीं, कमल भागी। वह पकड़ने दौड़ा.....कमल.....कमल.....कमल।

बाराखंबा रोड के बंगले पर से जब सब लोग चले गए। दरबान फाटक बंद करके जब घर जाने लगा और चौकीदार उसे राम राम कहकर विदा देने लगा, तब भीतर कमरे में विजय ने पूछा :

''पापा जी, मम्मी विष्णु अंकल से प्रेम करती हैं ?''

कुंवर ने अजीब तरह से मुंह बिगाड़कर कहा, ''असंभव, वह.....वह सब कुछ कर सकती है, प्रेम नहीं कर सकती।''

''ऐसा ?''

''हां, मुझे पक्का विश्वास है। वह प्रेम लायक ही नहीं।''

''और विष्णु अंकल ?''

''वह भी नहीं।''

''पर मैं समझता हूं, ऐसा नहीं है। दोनों एक–दूसरे से प्रेम करते हें।''

''जाओ, सो जाओ।''

विजय मम्मी के कमरे में सोने को हुआ, उसे न जाने कहां से एक मीठी हंसी सुनाई दी। वह उस पूरे कमरे को, उसकी दीवारें, छत, कमरे का एक–एक सामान निहारता रह गया।

गोल्फ लिंक

23

गोल्फ लिंक की उस कोठी का नाम रखा गया था–'शाकुन्तल'। पर यह बाद में हुआ। पहले काफी जल्दी थी। क्योंकि वेस्ट जर्मनी से वह बिज़नेस पार्टी जो आने वाली थी। इसलिए तब झटापट 'विजय इम्पोर्ट–एक्सपोर्ट' के लिए समुचित स्टाफ रखा गया–रिसेप्शनिस्ट, वैटर्स, चपरासी, पी०ए०, पर्सनल सैक्रेट्री, लेडी स्टेनो, बिज़नेस एक्जीक्यूटिव, क्लर्क, एकाउन्टेन्ट, एकाउन्ट्स आफिसर्ज, कैशियर, रिसर्च आफिसर्ज, एजेन्ट्स, मार्केटिंग इन्स्पेक्टर.....।

यह सारी कल्पना उसी कुंवर कपूर की थी। विजय तो अभी कुल अठारह साल का हुआ था। पह यह सच था कि जब से विजय दून स्कूल से लौटा था, तभी से कुंवर इस नये व्यापार की कल्पना उसके मन में बैठाकर पक्का कर रहा था। यूरोप में इस तरह की जितनी कंपनियों के कारोबार और नक्शे वह देखकर आया था, उसी प्रभाव का फल था 'विजय इम्पोर्ट–एक्सपोर्ट'।

पर तब पश्चिमी जर्मनी के वे व्यापारी इधर नहीं आ पाए थे। उधर कुंवर विजय को उन खास–खास जगहों से, व्यक्तियों से, परिचित भी करा रहा था जो भविष्य में उसके काम आने वाले थे। चाणक्यपुरी की इतनी बड़ी योजना थी सरकार की। नेहरू ही नये भारत के स्वप्न देखने वाले थे। दुनिया के सारे राष्ट्रों के दूतावास और हाई कमीशन की इमारतें बनने को थीं।

कुंवर तब शुद्ध खादी पहने लगा था। बिल्कुल जवाहरलाल की नकल–वही चूड़ीदार पैजामा, कुर्ता, शेरवानी। हर एक मौके पर प्रधानमंत्री सहायता कोष में हजारों रुपयों के दान–कभी विजय के हाथा से कभी अपने नाम से। तभी उसने चाणक्यपुरी की निर्माण–योजना से विजय को सम्बन्धित कर दिया था।

उन्हीं दिनों विजय को एकाएक ख्याल आया था, अपनी कोठी के नामकरण का।

तब मां का पापा से तलाक हुए एक सप्ताह भी न बीता था, वह निःसंकोच दरियागंज गया था मां के पास। वह प्रेस में बैठी काम कर रही थी। विजय ने कहा, ''मुझे अपनी कोठी का एक नाम चाहिए।''

''पर मुझसे क्यों ?''

''क्योंकि तुम एक बेहतर नाम दे सकती हो।''

''अपने पिता से क्यों नहीं पूछ लेते ?''

''उन्हें इसकी समझ कहां ?''

विजय इतना निःसंकोच, दुनियादार हो सकता है, शिवानी को ज़रा भी अनुमान न था। उसके पास हर प्रश्न का दो टूक उत्तर है–इसे देखकर वह आश्चर्यचकित थी।

''मुझे क्या पता, तुम्हारी कोठी कैसी है, मैं उसका नाम कैसे दूं।''

''तो चलो, मेरी कोठी देख आओ !''

''मैं नहीं जा सकती।''

''क्यों ?''

''मुझसे भला अब क्या मतलब।''

विजय बोला, ''इसमें अब भावुकता की क्या बात, जो होना था हो चुका, मैं तमुम्हारे पास एक नाम के लिए आया हूं, सो क्या तुम नहीं दे सकतीं ?''

''क्यों जिद करते हो ?''

''कभी और तो जिद नहीं की। तलाक लेते समय एक बार भी नहीं कहा कि मुझे मेरा पुत्र चाहिए.....।''

शिवानी ने भरी आंखों से उसे देखा–जैसे जीवन में पहली बार निहारा हो।

''तू ही बता, मैंने तुझे क्यों नहीं मांगा ? क्या कभी तूने मुझे यह अनुभव होने दिया कि तू मेरा है ? हर वक्त अपने पिता के कहने में था.....मुझे पागल कहा था न, याद है ?''

जैसे वह एक लड़ाई अभी शेष थी। लगा था कि सब समाप्त हो गया, पर वह पुत्र अचानक आया था उस तरह मां से लड़ने।

''बोल, तब तू कहां था ?''

वह निरुत्तर हो गया। तब शिवानी ने उसे अंक से लगा लिया।

वह उसके संग गोल्फ लिंग गई। उधर अभी तमाम मकान, कोठियां, बंगले बन रहे थे। वह शायद पहली कोठी थी, पूरी तरह से तैयार।

विजय ने उसे नीचे से ऊपर सारी इमारत दिखाई, बाहर के लॉन, पीछे फूलों की क्यारियां। सहन में फव्वारा और उसके आसपास 'राक गार्डन', सारी इमारत 'एअर कंडीशन्ड', जिसे अब तक नौकरों ने नाम दे दिया था 'ठंडी कोठी'।

सारी इमारत की योजना सुन्दर थी। बाहर से यह एक पुरानी हिन्दू इमारत लगती थी, पर भीतर से वह बिल्कुल आधुनिक थी। इसमें संगमरमर भी लगे थे और लाल–काले पत्थर भी। इसमें देवदारु की भी लकड़ियां लगी थीं और साथ ही लोहे–शीशों से भी खूब काम लिया गया था।

''इसे किसने डिजाइन किया ?''

''एक फ्रेंच आर्चिटेक्ट ने।''

''तुम्हारे पापा..... ?''

''उनका सिर्फ धन लगा है, दिमाग नहीं।''

यह कहकर विजय हंस पड़ा। शिवानी को ताज्जुब हुआ, विजय पहले कितना दब्बू और चापलूस था अपने पिता का, अब एकाएक इसे क्या हो गया। वह कहता जा रहा था :

''डैडी के पास इतनी दौलत है, इतनी ताकत है.....आखिर उसका इस्तेमाल तो होना है। तुम होती तो थोड़ा संकोच भी होता, थोड़ा डरता भी, अब क्या.....। डैडी के पास अपनी 'बिज़नेस' के अलावा एक मिनट की फुर्सत नहीं..... मुझे भी आखिर उसी 'बिज़नेस' में फंसा रहे हैं.....पर सोचता हूं, इस सबका मतलब क्या है ? यह सब किसलिए, आखिर क्यों ?''

शिवानी उसकी बातों से घबड़ा गई :

''यह सब तू मुझसे क्यों कह रहा है ?''

''देखो ममी, तुम्हारा तलाक डैडी से हुआ है, मुझसे नहीं।''

यह कहकर विजय सिगरेट पीने लगा–धड़ाधड़। फिर शुद्ध अंगरेजी में न जाने क्या–क्या कहने लगा, जो शिवानी की समझ में कतई न आया।

''तू इस तरह सिगरेट पीकर मुझसे बातें करता है ?''

''अब मैं बालिग मर्द हूं.....आदमी.....समझीं ममी।''

''फिर तू अपनी इस बिल्डिंग का नाम रख ले 'विजय भवन'।''

''ना ना ना, यह ना घर है, ना भवन, यह है एक इमारत.....एक जगह, बस.....।''

''मेरी समझ में कुछ नहीं आता।''

''मां, तुम तो बहादुर औरत हो.....इतनी हिम्मत है तुममें.....फिर यह खामखा भावुकता कहां से आ जाती है तुममें ?''

शिवानी अपने उस पुत्र का मुंह निहारती रह गई।

उसके मुंह से निकला :

''तो सुन, इस इमारत का नाम होगा 'शकुन्तल'।''

मारे खुशी के विजय ने मां को अपनी बांहों में उठा लिया।

''छोड़.....छोड़ दे, क्या कर रहा है ?''

''शाकुन्तल।''

तब तक पाकिस्तान से आई हुई लावारिश औरतें और बच्चे इधर–उधर के आश्रमों या कैम्पों में भेज दिए गए थे। मुसलमान लोग भी अपने–अपने गांव लौट गए थे। जाट लोगों को गांधी जी ने शांत कर दिया था।

पर बहुत सारी हिन्दू–मुसलमान लड़कियां ऐसी थीं जिनका कोई वारिस न था। इनकी संख्या चालीस–पचास के करीब थी।

जिस दिन शिवानी कोक मुआवजे में वह सिंकदरा रोड वाला बंगला मिला, उसमें उन्हीं लावारिस लड़कियों के रहने का प्रबंध कर दिया और उनकी देखभाल की इंचार्ज उसी नंदिनी को बनाया। शिवानी प्रतिदिन अपने अखबार में देश के नवयुवकों के नाम अपील निकालती कि इस तरह की लड़कियों से वे विवाह करें।

उसी अपील से मेरठ का एक नवयुवक वकील दिनेश प्रसाद आया था एक मुसलमान लड़की से शादी करने के लिए। शादी का सारा प्रबंध शिवानी ने खुद किया था। शादी न मुस्लिम ढंग से हुई न हिन्दू रीति से। बिल्कुल नये ढंग से–जयमाल पहनाकर और एक–दूसरे को वचन देकर।

इसके बाद संगीत और भोजन का आयोजन था। संगीत जैसे ही शुरू हुआ, तभी किसीने खबर दी :

''महात्मा गांधी को किसीने गोली मार दी।''

''क्या ?''

'हां, उनका स्वर्गवास हो गया।''

जैसे एक तूफान उठ गया है। सब कहने लगे–''नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता।''

पर यह सच था–अहिंसा के पुजारी उस महात्मा की किसी पागल ने हत्या कर दी। मुसलमान लड़कियां रोती रहीं :

''गांधी नहीं रहे, अब हमारी हिफाजत कौन करेगा ?''

शिवानी के भीतर सन्नाटा छाता गया। वह दौड़ी हुई विष्णुपद के पास गई। वह उस समय वहीं बिड़ला भवन में ही गया हुआ था। उसकी वहां जाने की हिम्मत न हुई। रेडियो खोलकर वह करुणा–भरी आवाजें सुनती रही।

वह हत्यारा पागल कौन था ?

शिवानी सोचने लगी–वह पागलपन एक दिन का नहीं था–वह हमारे इतिहास, हमारी समझ और चरित्र के भीतर से निकला था। जो स्वार्थ, जो अंधकार, जो अंधविश्वास हमारे भीतर घुल रहा था, घुल रहा है, वह पागलन उसी सबकी संतान थी।

नंदिनी पहले गांधी की आलोचक थी। वह सदैव उसी फरारी को को अपना आदर्श मानती थी, पर जब से वह गांधी जी के कर्मों और विचारों के सम्पर्क में आई थी, वह गांधी कहीं उसके गहरे उतरते गए थे। और उस गांधी की हत्या का बेहद गहरा प्रभाव नंदिनी पर पड़ा। उसे एक दिन खूल की उल्टी हुई और उसे हर वक्त बुखार रहने लगा। खांसी भी बहुत तेज उठती थी। कमज़ोर इतनी होती गई कि हड्डियां उभर आईं।

डाक्टरों ने बताया–उसे टी०बी० हो गई है, अपने आखिरी रूप में। मई का महीना था। शिवानी अपनी कार से उसे भुवाली सेनीटोरियम ले गई।

वहां एक दिन नंदिनी ने बड़े कष्ट से आंख खोलकर शिवानी को देखा और सांय–सांय की आवाज में बोली, ''मैं मरना नहीं चाहती।''

''तुम नहीं मरोगी।''

''मुझे यहां से बाहर ले चलो.....वहां मैदान में।''

डाक्टरों की आंख बचाकर वह नंदिनी को बाहर ले गई। सुबह के दस बज रहे थे। चारों ओर फूल ही फूल..... हरीतिमा.....ऊंची–ऊंची पहाड़ियों के बीच से आती हुई हवाएं। देवदारु के वृक्षों से सनसनाहट।

''मुझे वहां ले चलो.....पुष्पों की उस क्यारी में।''

शिवानी उसे उठाकर ले गई।

''मैं दौड़ना चाहती हूं.....अपने उसी फरारी को छूना चाहती हूं।''

''वह कहां है ?''

''कहां नहीं है।''

यह कहकर नंदिनी लड़खड़ाती हुई दौड़ पड़ी।

''नहीं, नहीं, मुझे मत पकड़ो। मैं जीना चाहती हूं।''

यह कहती हुई नंदिनी सामने फूलों–भरी एक क्यारी में गिरकर बेहोश हो गई।

देखते–देखते ही उसने दम तोड़ दिया।

दिल्ली आकर शिवानी ने एक अजीब बात सुनी। मालिक हीराचन्द जी कपूर अपने आदमियों को लेकर मंडी हाउस सिकन्दरा रोड के उस शिवानी के बंगले पर गए और वहां से सारी लड़कियों को बाहर निकाल दिया। वह सीधे मालिक जी के पास गई।

''आपने ऐसा क्यों किया, किस अधिकार से ?''

''वह बंगला अनाथालय बनाने के लिए नहीं था।''

''आपसे मतलब, वह मेरी जायदाद है।''

''बाई आई जायदाद वाली.....।''

यह कहते हुए उन्होंने कुछ अपशब्द कहे, पर शिवानी विचलित न हुई। उसने बड़े साहस और धैर्य से काम लिया। गम्भीरता से बोली :

''आप लोग स्त्री को महज गुलाम समझते हैं।''

वह गुस्से में बोले, ''औरतों को इतना साहस अच्छा नहीं है। मैं कहे देता हूं–तुमपर अभिशाप गिरेगा।''

शिवानी को पता है–ससुर जी का यह अभिशाप कहां से आ रहा है–उसी क्षोभ, पराजय, अपमान और अपराध की भावना से, जो उनमें घर कर रही है। वह उस सारे मर्म को अब जानती है। इसलिए वह हंसकर बोली :

''स्त्री को वह अभिशाप आप लोग सदा से ही देते आए हैं–पति बनकर, पुत्र बनकर, बाप होकर, भाई बनकर, ससुर होकर.....पर याद रखिए, अब वह स्त्री जग गई है।''

यह कहकर शिवानी उनके सामने से चली गई। वह बड़बड़ाते रह गए।

दरियागंज की वहसारी बिल्डिंग, प्रेस और 'नवभारत' के नाम पहले ही खरीद ली थी विष्णुपद ने। अब शिवानी ने वह पूरी बिल्डिंग 'नवभारत' के काम में लगा दी और विष्णुपद को संग लिए उसी सिकंदरा रोड के बंगले में रहने आई।

मनसुख के नाम उसी प्रेस बिल्डिंग में ऊपर एक किनारे दो कमरे का हिस्सा अलग कर लिख दिया और उसे प्रेस का मैनेजर बना दिया।

जब यह बात रामहल्ला को पता चली तो उसने कहा, ''बाबू, बहू, एक काम और करो, मैं अब ज्यादा दिन का मेहमान नहीं, मनसुख की शादी करा दो।''

''पर वह तो शादी के लिए तैयार नहीं होता।''

''बात यह है–शादी के लिए मैं ही तैयार न था।''

''क्या ?''

''हां, अब सारी बात खोलकर कहूंगा, हां।''

विष्णुपद और शिवानी रामहल्ला की बातें सुनने लगे। वह बात बताते–बताते रामहल्ला बीच–बीच में हंस पड़ता है।

''चांदनी चौक में.....उसी नीलकटरे के सामने बल्लीमारान में एक बाल–विधवा लड़की है–अब तो उसकी उमर तीस से भी ऊपर हो चुकी होगी, मनसुख उसीसे ब्याह करना चाहता है। अब क्या कहूं, दोनों में बचपन से ही न जाने कैसे प्रेम हो गया। यह बात मुझे तब मालूम हुई, जब उस कपूर हवेली के पिछवाड़े 'सर्वेन्ट क्वार्टर' में मनसुख बीमार पड़ा था और वह लड़की सबसे छिपकर इसे देखने आई थी।

''हां, साहेब, तब से मैं चुप रहा। ये दोनों भी चुप रहे। किससे क्या कहते ? वह लड़की जैनियों की और हम ठहरे अहीर ग्वाले। वह दिल्ली की, हम अवध के। मैंने बहुत डांटा मनसुख को।

''वह कहता, 'अब तो जो होना था हो गया काका।'

''मैंने कह दिया, 'यह कभी नहीं हो सकता।'

''मनसुख कहता रहा, 'न हो, क्या फर्क पड़ता है। शादी करूंग तो उसी राधा जैन से.....।' ''

यह कहते–कहते रामहल्ला की वृद्ध हंसी हवा में फैल गई। शिवानी और विष्णुपद दोनों हैरान रह गए।

''मनसुख को भेजो इधर।''

मनसुख नीचे से आया।

''भाई, कभी मुझे भी बताया होता !''

''कभी अवसर ही न मिला।''

''अपनी भाभी को ही बताते.....।''

''कैसे ?''

यह कहकर मनसुख जैसे लजा गया। वह काका की ओर देखने लगा। काका हंसकर बोले, ''सारा दोष मेरा है साहेब, मैंने ही मना कर रखा था। पर जा, अब मैं तुझे आशीर्वाद देता हूं, जा, बहू को ले आ।''

उस दिन मनसुख उन दोनों को संग लिए राधा के घर गया। वह बेहद गरीब घर था–एक कमरे का। वह अपने नाना के यहां एक सीलन–भरे कमरे में रहती थी। दिन–भर वह कागज़ की थैलियां और पैकेट बनाती और उसे ही बेचकर उनका जीवन चलता।

नाना जी ने मंदिर में जाकर राधा का हाथ मनसुख के हाथ में दे दिया और मारे प्रसन्नता के रोने लगे :

''मैं इसी दिन के लिए ज़िन्दा था। अब मैं जाकर अपने लड़कों के साथ खुशी से रह लूंगा और शांति से मर जाऊंगा। मेरे जीवन का मतलब आज पूरा हुआ।''

विष्णुपद–शिवानी वह सारा दृश्य देखकर चकित थे। विष्णुपद मन ही मन सोचने लगा–इस समाज में चुपचाप इस तरह कितने लोग वह जीवन जी रहे होंगे जो इतना पवित्र और मूल्यवान है–सार्थक हे, पर जिसकी कोई पहचान बाहर नहीं है।

और उसे आज समझ में आया–मनसुख सदा इतना चुप और इतना कर्मठ क्यों बना रहा ? जिसके जीवन–स्रोत इतने गहरे हैं, उसे बाहर से कोई कैसे जान सकता है।

चलते हुए शिवानी ने पूछा, ''जैनी लोग इस शादी का विरोध आपसे नहीं करेंगे ?''

''नहीं। क्योंकि जीवन–भर मैं ही वह विरोधी रहा हूं। और अब अगर मुझसे कोई विरोध करने आएगा तो उसके घर के सामने अपने ऊपर आग लगाकर जल जाऊंगा।''

वृद्ध नाना का वह तेज देखने लायक था। तब राधा बोली थी, ''ऐसा कुछ नहीं होगा। मैंने सबको बता रखा था और जितना अपमान–दुःख मुझे भोगना था, सब मैं भोग चुकी हूं। तभी तो मैं सबसे अलग सिर्फ इन्हीं नाना जी के साथ थी।''

लग रहा था, अभी कितना–कितना जीवन समुद्र के गर्भ में छिपा है। बाहर तो सिर्फ उसका नन्हा–सा शिखर दिख रहा है–शेष सारा जलमग्न है।

मनसुख अपनी उस राधा को लेकर जब उस 'प्रेस बिल्डिंग' के अपने घर में आया और काका को प्रसन्नता से गाते देखा–तब वह शिवानी बहु और विष्णु भैया से बोला :

''अपने इस जीवन में केवल एक प्रार्थना है आप दोनों से।'' वे दोनों मनसुख का तेज–भरा मुंह निहारते रहे। उसके मुंह पर से कोई शब्द न फूटे।

''आप दोनों का विवाह होना चाहिए।''

''यही प्रार्थना ?''

''हां, सिर्फ यही।''

''पर इसकी ज़रूर भी है क्या ? तुम तो बिना शादी के इतनी उम्र.....इतने दिन.....।''

मनसुख ने माथा उठाकर कहा, ''जब तक प्रिया को माथे पर चढ़ाकर न चला जाए, तब तक प्रेम को गौरव कहां मिलता है ?''

दोनों अपलक मनसुख और राधा को निहारते रह गए।

विष्णुपद उठ पड़ा, ''राधा, ले आओ सिंदूर।''

वह दौड़कर सिंदूर ले आई।

विष्णुपद ने शिवानी की सूनी मांग को सिंदूर से भर दिया। लगा जैसे चारों ओर मंदिरों में, सारी दिशाओं में असंख्य शंख–घड़ियाल बज उठे हों। सारा वातावरण मंत्र–संगीत से भर गया हो।

सारे लोग गाड़ी में बैठकर उसी न्यायालय में गए। और वहां विष्णुपद–शिवानी विवाह–सूत्र में बंध गए।

सिकंदरा रोड के उस बंगले पर एक अनोखा प्रातःकाल आया। जैसे प्रातःकाल के आसमान में रहस्य आज उदित हो रहा है। आनन्दमय रहस्य। वह शुरुआत थी। और प्रतिदिन एक–एक जीवन–रहस्य वहां खुलेगा। प्रतिदिन एक अनजाना भय मिटेगा। वह आनन्द धीरे–धीरे सारे भय को अपनी मुट्ठी में कुचलकर रख देगा। अब जीने में दुविधा नहीं होगी। अब संकोच विश्वास बनेगा। अब देने–पाने में दिन–प्रतिदिन गौरव बढ़ता जाएगा।

दोनों उस प्रातःकाल, अवाक् होकर एक–दूसरे को ताकते रहे। दोनों निहारने लगे, आसमान कितना नया है।

यह नहीं कि अनोखे सत्य ने अभी–अभी दिल्ली शहर की धरती पर अपना पैर रखा है, बल्कि सत्य एक वृक्ष बनकर पूरे शहर के शून्य में जैसे बढ़ने लगा, फैलने लगा।

24

शिवानी–विष्णुपद के विवाह की भयानक प्रतिक्रिया दोनों स्थानों पर हुई। बाराखंबा रोड के बंगले पर कुंवर ने कहा–'बेहया' और कपूर हवेली से मालिक ने कहा–'दुश्चरित्र'।

पर गोल्फ लिंक के उस शाकुन्तल कोठी में विजय इससे अत्यन्त खुश हुआ। सिकंदरा रोड के बंगले पर आकर उसने मां और अंकल को बधाई दी। यह खबर जब कुंवर को मिली तो उसने विजय को डांटा :

''तुम्हें शर्म नहीं आई।''

''नहीं, क्योंकि मैं आत्मा–परमात्मा में विश्वास नहीं करता।''

''हम तो करते हैं।''

''क्योंकि आपमें न आत्मा है, न परमात्मा।''

''तुममें है ?''

''नहीं, मुझमें आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं है।''

बाप–बेटे में तकरार हो गई। विजय ने सहज ही कहा, ''इस देश की आत्मा शताब्दियों पहले मर चुकी है। हम केवल उसकी सड़ी लाश ढो रहे हैं। जो समाज शादी, प्रेम, तलाक, पुनर्विवाह जैसी स्वाभाविक चीज़ को नहीं स्वीकार कर सकता, वह ज़िन्दा कहां है ?''

''तेरा दिमाग कैसे खराब हुआ, बता ?''

कुंवर के इस क्रोध और हताशा का विजय पर ज़रा भी असर न पड़ा। वह बोला :

''और मां क्या करती ? वह मर जाती, फिर वह ऊंचे चरित्र वाली या देवी कहलाती ? लानत है ऐसे लोगों पर जो जीवन को नहीं मृत्यु की पूजा करते हैं, मुझे नफरत है। मुझे अपनी मां पर गौरव है।''

''वह तेरी मां नहीं, विष्णुपद की बीवी है।''

''वह भंगी की बीवी होती तो भी मेरे लिए उस गौरव में कोई फर्क नहीं पड़ता।''

विजय की इन भयानक बातों का कुंवर पर बहुत गहरा असर पड़ा। उसे शक हुआ, विजय को उसी शिवानी और विष्णुपद ने इस तरह बहकाया है। अभी विजय को गोल्फ लिंक में इस तरह अकेले छोड़ना खतरनाक है।

शाम को वह स्वयं गया विजय को अपने बंगले पर लाने के लिए। तभी उसने देखा–वह 'शाकुन्तल' नाम।

कुंवर ने पूछा : ''यह नाम किसने दिया ?''

''मां ने।''

''कैसी मां ? कौन मां ?''

''शिवानी.....श्रीमती विष्णुपद।''

कुंवर के तन–बदन में आग लग गई। उसने उस नाम पर पत्थर दे मारा। वह शीशे का बाक्स नाम सहित चकनाचूर हो गाय। अक्षरों के ऊपर की रोशनी टूट गई।

विजय हंसने लगा।

''बंद करो शर्मनाक हंसी।''

''डैडी, आपको क्या हो जाता है ?''

''चुप रहो।''

एक सन्नाटा छा गया।

''चलो मेरे साथ.....यहां अकेले रहने की कोई ज़रूरत नहीं।''

''मैं यहां अकेले कहां हूं ?.....मेरे साथ इतने नौकर–चाकर हैं, ड्राइवर है, खानसामा है.....दरबान है.....चौकीदार है.....मेरे दोस्त हैं.....गर्ल फ्रेन्ड्स हैं।''

कुंवर चुप रह गया।

''आप डैडी, इतना परेशान क्यों हैं ?''

''यहां वह शिवानी.....वह विष्णुपद.....।''

''जी नहीं, वे यहां कतई नहीं आते।''

''तू जाता है उनके पास ?''

''बिल्कुल नहीं।''

''सच ?''

''डैडी, मैं कभी झूठ नहीं बोलता, क्योंकि मुझमें आत्मा नहीं है। न मुझे आपके ईश्वर में विश्वास है।''

''तू पहले तो ऐसा नहीं था, तुझे हुआ क्या ?''

''डैडी, सच बताऊं, जिस दिन मुझे पता चला कि मुझमें आत्मा नहीं है, उसी दिन मैं निडर हो गया।''

''यह किस दिन पता चला ?''

''वह दिन मालूम नहीं।''

विजय को कुंवर अपने संग न ला सका। मगर वहां दरबान और खानसामा को सख्त हिदायत दी गई कि वे विजय पर कड़ी निगरानी रखें और उसके विषय में हर दिन पूरी रिपोर्ट दें।

पर रिपोर्ट क्या दी जाती ? डैडी का गुप्त, बेहिसाब धन, जो बैंक में भी नहीं रखा जा सकता था, वह विजय के सामने था। विजय स्वयं डैडी के सामने था। डैडी के ही साथ वह दो दूतावास की इमारतों के निर्माण में लगा हुआ था। दिन–भर उनके साथ दफ्तर में काम करता और सिर्फ शामें उसकी होतीं।

वे शामें अक्सर दोस्तों के साथ वहीं बंगले पर या किसी क्लब में बीत्तीं, और रात को वह अकेले काफी देर तक पढ़ता–इतिहास, राजनीति, धर्म और दर्शन की पुस्तकें।

उसकी इतनी गंभीर पढ़ाई कुंवर को और चिंतित कर देती। वह कहता–'बिज़नेसमैन' को इस पढ़ाई से क्या मतलब ? उसका तो काम है–बड़े से बड़े लोगों से संपर्क रखना और ज़िन्दगी में तरक्की करना।

एक दिन विजय ने डैडी से पूछा, ''यह तरक्की करना क्या है ?''

''तरक्की माने उन्नति।''

''सिर्फ तरक्की करना, ज़िन्दगी जीना नहीं ?''

कुंवर बोला, ''बिज़नेसमैन के लिए ज़िन्दगी जीने से मतलब है अपने व्यापार में तरक्की करना।''

विजय की समझ में कुछ नहीं आता। तभी वेस्ट जर्मनी के अंगरेज व्यापारी आए थे। विजयको उनके साथ अपना काम शुरू करना था। हिन्दोस्तान का मार्केट क्या है–इसे जानने के लिए उनके साथ वह पूरे मुल्क में घूमा था, फिर उनके साथ वह पश्चिमी जर्मनी गया। वहां पन्द्रह दिन रहने के बाद वह पूरे यूरोप, अमेरिका में घूमा था। लौटते समय जापान भी गया था।

कुल पांच महीने और बाईस दिनों के बाद विदेश–यात्रा से वह दिल्ली लौटा था। किन–किन मुल्कों से भारत कौन–कौन चीज़ें आयात कर सकता है और क्या–क्या यहां से निर्यात कर सकता है–इसका पूरा ब्यौरा लेकर लौटा था।

डैडी बहुत संतुष्ट थे, इससे ज्यादा वह खुश थे। कुछ ही महीनों के भीतर उन्होंने अपने साथ विजय को रोटरी क्लब, लायन्स क्लब से लेकर चैम्बर ऑफ कामर्स, फैडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर्स तक से संबंधित कर दिया।

डैडी धीरे–धीरे और खुश होते जा रहे थे। वह देखते–विजय अब अपने दफ्तर में बैठता है–बल्कि उसे बैठना पड़ता है–इतना काम उसने स्वयं ले लिया है। कोई शाम अब घर पर नहीं रह पाता। आधे दिन फैडरेशन, चैम्पर्स की मीटिंगें, अक्सर क्लबों के कार्यक्रम।

इस तरह पांच वर्षों में विजय पूरी तरह से अपने व्यापार में डूबता चला गया। जिनबातों से, जिन चीजों से वह नफरत करता था, उन्हींके आकर्षणों में वह आ गया। धन और इज्जत कमाने, अधिकार भोगने का अपना एक अलग ही जादू है–विजय को पहले क्या पता था।

अब वह दफ्तर में काम देखता, मोटी रकमों के चैकों पर दस्तखत करता, मीटिंगों में जाता और सबसे ज्यादा उसे 'कन्ट्रोलर ऑफ इम्पोर्ट एण्ड एक्सपोर्ट', विदेश व्यापार मंत्रालय, 'ट्रेड एण्ड कामर्स' मिनिस्ट्री में भागना होता।

उसे अब 'सोचने' और एक क्षण 'जीने' के लिए भी वक्त न था। डैडी अपनी इस सफलता से बेहद गौरवान्वित थे। इस सफलता का श्रेय हरिगोस्वामी नामक एक जैन व्यापारी पुरुष को भी बहुत था। कनाट प्लेस में उसकी बहुत बड़ी दुकान थी–कपड़े, इन्टीरियर डिकोरेशन तथा फर्निशिंग की। उसकी एक लड़की थी माला जैन–रूपवती, सभ्य, विनम्र और पढ़ी–लिखी। इसीने विजय के दफ्तर और पूरे घर को सजाया था–फर्निशिंग से लेकर डिकोरेशन तक।

बड़े–बड़े चित्रकारों–मूर्तिकारों की कृतियां खरीदकर शाकुंतल में लगाई गई थीं। उसी हरिगोस्वामी ने विजय को बतायाथा–''आप व्यापारी नहीं, उद्योगपति हैं। आप बिज़नेस नहीं, 'ट्रेड' करते हैं। आपका काम कल्पना करना है, भागने–दौड़ने के लिए तो आपके पास इतना स्टाफ है।''

विजय ने कहा था, ''पर कन्ट्रोलर के यहां, मंत्रालय में तो जाना ही पड़ता है। और सबसे अपमानजनक बात यह है कि सरकार और अफसर हमें बुरी निगाह से देखते हैं।''

''इसका भी एक उपाय है।''

''क्या ?''

''बड़े–बड़े खास अफसरों तथा मंत्रियों के लड़कों को, संबंधियों को आप तरह–तरह से उपकृत कीजिए। उन्हें नौकरी दीजिए। कुछ को बिना नौकरी के तनखाह बांधिए। कुछ मेम्बर्स ऑफ पार्लियामेण्ट को चढ़ने के लिए कारें भेंट कीजिए। और इनसे भी जो बच जाए–उनके लिए और भी तरीके हैं–दो–चार सांस्कृतिक संस्थाएं बनाइए। एक–दो प्रकाशन संस्थानों की स्थापना कराइए। बड़े से बड़े लोग इनमें खुद ही आ फंसेंगे। हां, यही सब तो है नया उद्योग।''

विजय की समझ में ये सब बातें पहले नहीं आ रही थीं, पर धीरे–धीरे इन उपायों के चमत्कार उसके सामने प्रकट होते गए। एक दिन वह हरिगोस्वामी से बोला, ''आप इतने चतुर कैसे हैं ?''

''भइया, मैं देश का स्वतंत्रता–संग्राम लड़ा हूं। दो बार जेल गया हूं। महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा में भजन गाता रहा हूं।''

सच, अजीब ताकत थी हरिगोस्वामी की योजनाओं में, उनके विश्वासों में। वह हर कठिनाई को अजीब ढंग से हल कर लेने की शक्ति रखते थे। उन्हें बहुत सारी बातें जबानी याद थीं। उन्नीस सौ चालीस के सविनय अवज्ञा आंदोलन में कैसे लोग अंगरेजों के साथ छिपकर चाय पीते थे। गांधी को आम का फल कितना प्रिय था.....नेहरू कितने सौन्दर्य–प्रेमी थे.....जब दिल्ली में वह क्रिप्स आया था, तब कैसे मैंने उसके साथ हाथ मिला लिया था.....जिन्ना साहब अपनी शेरवानी के कपड़े मेरी ही दुकान से खरीदते थे, तब उनके साथ क्या–क्या बातें होती थीं। लार्ड लिनलिथगो को पेट की बीमारी थी, कैसे एक वैद्य ने उन्हें स्वस्थ किया। माउण्टबेटन की पत्नी को नज़ला रहा करता था, सो किस तरह जामा मस्जिद के एक औलिया ने उन्हें एक गुलाब का फूल देकर कमाल दिखाया। हमें तो भइया, अहिंसा में विश्वास रखना चाहिए। शांति, उद्योग और सबसे ज्यादा युक्ति से ही उन्नति होती है। यह गलत है कि पहले ध्वंस करो.....मारो.....यही तो मैंने भगतसिंह और सुभाष बाबू से भी कई बार कहा था–कि आप लोग खामखा आत्महत्या कर रहे हैं। इससे तो आत्मविनाश होता है।

''आत्मा.....यह क्या चीज़ है ?'' विजय ने पूछा था।

''अरे यही तो है असली चीज। वाह वाह.....।''

''पर मुझमें तो आत्मा नहीं है।''

''नहीं है तो आ जाएगी, इसकी क्या चिन्ता ? इसी तरह तरक्की करते–करते, नाम कमाते–कमाते किसी चीज़ की कमी नहीं रह जाती।''

विजय उस दिन हैरान रह गया था हरिगोस्वामी जी की बातें सुनकर। पर उनकी बताई हुई हर योजना सफल होती है–यह बात क्या है ? ''भइया, उद्योगपति का काम सोचना नहीं, कल्पना करना है, जैसे गांधी जी कल्पना करते थे आजादी की.....।''

उस दिन ये सारी बातें विजय ने उसी माला जैन से कही थीं।

''कैसे विचित्र हैं आपके डैडी ?''

''बिल्कुल बच्चों जैसा स्वभाव है।''

''इनकी उम्र मेरे डैडी के बराबर है, फिर यह बच्चों जैसा स्वभाव क्या है ?''

''यही तो असली चीज़ है–स्वभाव निर्मल ही रहना चाहिए, यही तो उनका जीवन–दर्शन है।''

''और आप क्या सोचती हैं ?''

''मैं सोचती नहीं कल्पना करती हूं।''

''क्या ?''

''गीता–दर्शन पर थीसिस लिखने को थी, तभी पिताजी ने मुझे अपने काम में लगा लिया। अब मेरा शौक है पेटिंग, डिजाइनिंग, डिकोरेटिंग.....।''

''और ?''

''सच बताऊ.....योग.....'मेडिटेशन'.....।''

''यह क्या है ?''

माला उसे अपने घर ले गई। शाम का वक्त था। उन्हें घर में देखकर हरिगोस्वामी जी बाहर निकल गए :

''बेटी, आज इतवार है, ज़रा भैरव जी के मंदिर जा रहा हूं.....देर में आऊंगा। विजय बाबू के साथ रहना।''

''पर मुझे एक मीटिंग में जाना है जैन साहब।''

''कमाल है, अब भी आपको कहीं जाने की ज़रूरत पड़ती है.....कमाल है। आप मेरी माला बेटी से मदद लीजिए.....।''

यह कहकर वहचले गए। माला उसे योग के बारे में बताने लगी तो विजय ने कहा, ''यह क्या बकवास है। इससे तो अच्छा है शराब पी ले।''

''हां, क्यों नहीं, पर शराब का असर थोड़ी देर के लिए है, इसका असर.....।''

''आप पीती हैं ?''

''आई एम आर्टिस्ट.....।''

एक दिन कुंवर के बंगले पर कलकत्ते के उद्योगपति का एक परिवार आया था। विजय खासतौर से उनके साथ मिल–बैठने के लिए बुलाया गया। उन लोगों को देखते ही उसे अनुमान हो गया कि शादी का मामला है। पिता है, मां है और एक लड़की है–साथ एक नौकर है, एक नौकरानी है और मालिक के सैक्रेटरी साहब भी हैं।

बातें घूमने लगीं। न जाने कहां–कहां की बातें होती रहीं। विजय ने कहा, ''मुझे जाना है, मेरी एक मीटिंग है।''

कुंवर ने विजय को दूसरे कमरे में ले जाकर कहा, ''बेटे, ये लोग तुम्हारी शादी के लिए आए हैं।''

''मेरी शादी ?''

''हां।''

''डैडी, आप दुबारा शादी क्यों नहीं कर लेते ?''

''मैं ?''

''हां, आपको एक स्त्री–मेरा मतलब एक सीधी–सादी पत्नी की सख्त ज़रूरत है।''

बातें वहीं टूट गईं। दोनों उस कमरे में लौट आए, जहां वे लोग बैठे थे। विजय ने उस लड़की को देखा, जिससे उसकी शादी होने की बात उठी थी। लड़की निहायत सीधी–सादी और जैसे बिना व्यक्तिव की थी। वह इस तरह केसे, क्यों तैयार हुई मां–बाप केसाथ यहां इस तरह आने के लिए ? क्या वह कोई सौदा है, जो ग्राहक को दिखाने के लिए लाई गई थी ?

पिताजी उनके साथ इधर–उधर की बातें करने लगे। वे लोग भी। असली बात एक क्षण के लिए भी न हुई। वे लोग चले गए।

विजय भी जाने लगा। डैडी ने रोका : ''हरि गोस्वामी की लड़की माला तुम्हें पसन्द है ?''

विजय हैरान रह गया।

''आप कैसी बातें करते हैं ! मैं किसी लड़की को इस तरह नहीं देखता।''

''क्या देखते हो ?''

''कुछ नहीं। हर लड़की एक लड़की है, जैसे मैं एक पुरुष हूं।''

अपनी उन बातों में दोनों अपरिचित लग रहे थे एक–दूसरे को। कुंवर ने कहा :

''तुम कहते हो मैं दूसरी शादी कर लूं। लोग मुझेक्या कहेंगे ?''

''लोग कहेंगे, इसीलिए शादी नहीं कर रहे हैं ?''

''बिल्कुल।''

''फिर आप क्या हैं ?''

''मैं.....मैं हूं।''

''नहीं, आप 'मैं' नहीं हैं, 'लोग' हैं।''

''हमारी इज्जत है.....कपूरवाले दिल्ली में कितनी ऊंची निगाह से देखे जाते हैं।''

''मैं दूसरे की निगाहों से नहीं देखा जाना चाहता।''

''शिवानी ने हमारी नाक काटनी चाही है, विष्णुपद अपने खानदान पर कलंक है, तू भी उन्हींकी की तरह सोचता है ?''

''नहीं। मैं बिल्कुल अपनी तरह सोचना चाहता हूं।''

विजय की यह बात सुनकर कुंवर को न जाने कैसे बड़ा सहारा मिला। वह उसे बड़े प्यार से समझाता रहा–हम पर बड़ी जिम्मेदारी है। समाज इतना पत्ति हो रहा है। लोग आजादी का गलत मतलब लगाते हैं। चरित्र बड़ी चीज़ है। कपूर खानदान एक बहुत ऊंचा खानदान है। हमारा फर्ज़ है हम इस समाज, इस शहर को रोशनी दें, एक आदर्श दिखाएं।

विजय चुपचाप कुंवर की बातें बड़े धैर्य से सुनता रहा। कुंवर बताता जा रहा था–कपूरवालों के धर्मखातों से कितने स्कूल चल रहे हैं–एक अनाथालय चल रहा है। अंधे–बहरों की एक संस्था चल रही है। वे लोग राष्ट्रीय सहायता कोष में सबसे ज्यादा देते हैं। उनकी ओर से एक विधवा आश्रम अब तक चल रहा है.....। दो गऊशालाएं.....तीन धर्मशालाएं.....कितने नये मंदिर, कितने पुराने मंदिरों की मरम्मत.....।

डैडी की वे बातें सुनकर विजय को वही हरिगोस्वामी जी याद आ रहे थे–जिन्होंने उसके लिए उतनी नई स्कीमें बताईं थीं।

विजय का सर दुखने लगा था। घर लौटकर उसने इतनी पी कि वह बेहोश हो गया। दूसरे दिन करीब ग्यारह बजे उसकी नींद खुली। उसे खबर दी गई–नीचे दफ्तर में पिताजी आए हैं।

अन्त में पिताजी स्वयं ऊपर गए। विजय ने अपने अकेलेपन को छिपा लिाय। वह बराबर चुप रहा। पिताजी समझ रहे थे–पुत्र पर उनका असर पड़ रहा है। वह फिर बड़े विश्वास से बोले, ''मैं चाहता हूं, तुम यहां अकेले न रहो, तुम्हारी शादी होनी ज़रूरी है। शादी से एक इज्जत–मर्यादा मिलती है।''

विजय आश्चर्यचकित था–यह आदमी एकओर पुनर्विववाह का इतना विरोधी है, फिर यह विवाह के ही पक्ष में इतना क्यों है ! बल्कि यह सारा समाज इस तरह विवाह के पक्ष में क्यों है ? जैसा एक विवाह उसी तरह दूसरा–तीसरा विवाह.....।

विजय ने और समझना चाहा :

''शादी से इज्जत–मर्यादा मिलती है, तो मां ने शादी करके अच्छा ही किया।''

''अच्छा होता तो मैं भी दूसरी शादी न कर लेता ?''

विजय से नहीं रहा गया।

''डैडी, आप दूसरी शादी महज मां को दंड देने के उद्देश्य से नहीं कर रहे हैं.....।''

''क्या ?''

''इसलिए आपका सारा जीवन एक दंड है.....प्रतिक्रिया है।''

यह कहते हुए विजय उनके सामने से हट गया। जाकर सीधे दफ्तर में बैठ गया। इधर–उधर टेलीफोन करने लगा। कार उठाई और शहर में निरुद्देश्य घूमने लगा।

उसे लग रहा था–वह एक कुएं में गिर गया है, जिसके ऊपर लोग बंदूकें ताने बैठे हैं। उस कुएं से भयानक बदबू आ रही थी और वह उसीमें सांस लेने को मजबूर था।

उसे मां के उस दुःख और अपमान का भी अंदाजा होने लगा, जो उसने अपने पति के साथ भोगा है। अब वह सोच सकता है, किस तरह विवश होकर वह उससे उस तरह भागी थी। उसे क्यों 'पागल' करार दिया जाता था ?

क्योंकि वह जीवन थी।

पर एक और अजीब बात विजय मार्क कर रहा था। डैडी उसकी बातों का अब बुरा नहीं मानते। कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाते। अब वह कहने लगे हैं–'जनरेशन गैप' नई पीढ़ी का अलगाव, फासला। वह इसे किसी तरह भी संघर्ष नहीं कहते।

संघर्ष शब्द शायद उनकी भाषा–जगत में नहीं है।

डैडी अक्सर क्लबों में, चैम्बर ऑफ कामर्स की बैठकों में, अपने दोस्तों में उस 'जनरेशन गैप' को बहुत ही आदर और उससे भी ज्यादा फैशन से कहते और विजय की प्रशंसा करते।

विजय के लिए यह असह्य था।

एक शाम वह मां से मिलने गया। पता चला, मां अंकल के साथ बड़े गुलाम अली का गायन सुनने सप्रू हाउस में गई हैं।

बड़े गुलाम अली उस समय ठुमरी गा रहे थे–''का करूं सजनी आए न बालम।''

मध्यान्तर में वह मां के पास जा बैठा। मां उसे बड़े गुलाम अली के बारे में बताने लगी। उनकी गायकी, उनका गायन, घराना, ठुमरी, वह राग, जिसमें वह गा रहे थे।

विजय के लिए मां की वे बातें बिल्कुल नई थीं। उसे संगीत के बारे में क्या पता ?

संगीत–कार्यक्रम के बाद मां और अंकल प्रेस गए–वहां छपते हुए अखबार की सामग्री पर एक नजर डालने।

वहां उस समय एक नया समाचार आया था–'अछूत प्रथा के उन्मूलन और हिन्दू कोड बिल अधिनियम के खिलाफ दिल्ली में व्यापक प्रदर्शन.....।'

अब उन्हें पहला पूरा पेज बदल देना था। विष्णुपद को उसपर नया संपादकीय लिखना था। विजय वहीं चुपचाप बैठा देखने लगा–मां पहले पेज के लिए नई सामग्री तैयार करने में लगी थी, अंकल नया संपादकीय लिखने लगे थे।

एक ओर वह संगीत, दूसरी ओर वह अखबार.....इस तरह दोनों का काम करना, विजय सोचने लगा, यह कैसी दुनिया है ?

दो समानान्तर दुनिया।

एक बाराखंबा रोड और गोल्फ लिंक में, दूसरी यहां।

वह किस दुनिया का है ?

25

उन्हीं दिनों विजय को पहले इंग्लैंड जाना पड़ा फिर त्तकाल जापान। इन दोनों देशों में चाय और कॉफी के निर्यात का लाइसेंस मिला था। साथ ही इन दोनों मुल्कों से इंजीनियरिंग के कुछ सामान का आयात अधिकार भी प्राप्त हुआ था।

उन्हीं दिनों एक घटना घटी। 'नवभारत' कार्यालय में एक गरीब आदमी एक खबर ले आया–'गूदड़बस्ती में सांप और इन्सान एक साथ रहते हैं ! कल रात मेरे छोटे लड़के को सांप ने डस लिया। सांप उसके सिरहाने बैठा मिला।'

इस खबर को प्रेस में देकर विष्णुपद गूदड़बस्ती में गया। जिस घर में वह घटना घटी थी, वह एक गंदे नाले के किनारे था। जुलाई का महीना था वह, और सारी बस्ती कीचड़–गन्दगी से भरी हुई थी। वहां इतनी दुर्गन्ध थी कि सांस लेना मुश्किल हो रहा था। लोगों ने उसे घेर लिया। बताने लगे कि इस बस्ती में आए दिन लोग सांप काटने से मर जाते

हैं। उनकी सुनवाई न म्युनिसिपल कमेटी वाले करते हैं, न कारपोरेशन वाले। उस बस्ती में एक औघड़ साधु रहता था, वही सब कुछ था उस बस्ती के लिए–डॉक्टर, हकीम, वैद्य, परमात्मा।

विष्णुपद ने अपने अखबार में उस बस्ती के बारे में विस्तार से लिखा–दिल्ली प्रशासन की कड़ी आलोचना की, पर कहीं कुछ असर न हुआ।

फिर वह स्वयं वहां के कुछ व्यक्तियों का संगठन बनाकर उस बस्ती की सफाई में लगा। पहले वहां बिजली लाई गई, फिर कच्ची गलियों में ईंटें लगीं। नालियां पक्की की गईं।

पर इतना ही अंत नहीं था। जैसे–जैसे वह उस बस्ती के लोगों में काम करता गया, वैसे–वैसे उससे बदतर बस्तियों के दृश्य उसके सामने खुलने लगे–झुग्गी–झोंपड़ी, टूटे–फूटे गन्दे गरीब घरों से भरी हुई बस्तियां–सरायपूस, कबीरबस्ती, गूदड़बस्ती के पास, बस्ती कहारान, कुम्हारान, चमारान, मेहतरबस्ती और वह काठबाजार।

उसने देखा–यह दुनिया ही दूसरी है–जहां इन्सान, मनुष्य के बुनियादी अधिकारों से भी इतना दूर है कि उसे पता ही नहीं कि वह क्या है ?

विष्णुपद एक दिन शिवानी को ले गया उन बस्तियों में। वह भी उस दुनिया को देखकर दहल गई। वह कभी इस जीवन–स्तर की कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

विष्णुपद नियमित रूप से अपने अखबार के तीसरे पेज पर उन बस्तियों के यथार्थ छापने लगा–सचित्र। और साथ ही उन बस्तियों के लोगों को संगठित करके उनके सुधार में लग गया। एक दिन शिवानी ने पूछा, ''पर सुधार से क्या होगा ?''

विष्णुपद ने उत्तर दिया, ''क्योंकि उन्हें पहले यह अनुभव देना होगा कि वे बस्ती वाले क्या हैं और मनुष्य होता क्या है ? उसकी बुनियादी शर्तें क्या हैं ?''

''मनुष्य होने का अनुभव देना सुधार से संभव नहीं है।''

''फिर कैसे संभव है ?''

''क्रांति से.....''

क्रांति शब्द सुनकर विष्णुपद ठहाका मारकर हंसने लगा। क्रांति तो आजादी की प्राप्ति भी थी। उन्नीस सौ बयालीस भी एक क्रांति थी। राजा राममोहनराय ने सती प्रथा को खत्म करके भी एक क्रांति की थी।

पर वह क्रांति नहीं थी–क्योंकि वह बाहर से आई थी। क्रांति होती है तब, जब मनुष्य में स्वयं एक बुनियादी परिवर्तन आता है–उसके सोचने में, उसके दृष्टिकोण में, उसके कर्म में। पर इस मुल्क में कर्म कहां है ? अगर कहीं कर्म है भी तो वह है गीतावाला कर्म–जहां मनुष्य मात्र साधन है–करने वाला कोई और है–यही कोढ़ है यहां के मनुष्य में, उसके कर्म–सिद्धान्त में। राजा राममोहनराय या गांधी हमारे देश और समाज के मात्र एक प्रायश्चित्त हैं–हमें उनपर शर्म आनी चाहिए.....गौरव नहीं।

'नवभारत' में विष्णुपद के इन विचारों ने दिल्ली के पाठकों को नाराज ही करना नहीं शुरू किया बल्कि इनसे उनमें एक प्रतिक्रिया भी पैदा होने लगी। 'नवभारत' के खिलाफ पोस्टर छपने शुरू हुए, उसकी प्रतियां जलाई जाने लगीं।

एक दिन एक और घटना घटी। काठबाजार में उसे पता चला कि वहां चार आने वाली रंडियां रहती हैं। वहां से एक नवयुवक मिला विष्णुपद को :

''बाबू, काठबाजार में कल मुझे एक ऐसी लड़की मिली, जिसे देखकर मैं घबड़ा गया हूं। जब मैं उसके पास गया–मुझे पकड़कर वह रोने लगी। कहने लगी, मुझे यहां से निकाल लो। मैं रंडी–वेश्या नहीं हूं। मैं आपसे उस लड़की को मिलाना चाहता हूं।''

विष्णुपद उसे संग लिए उस लड़की के पास आया। वह लड़की उसे अपनी कहानी बताने लगी। वह मेरठ के एक गांव से भगाकर वहां लाई गई। उससे यह पेशा करने के लिए कहा गया। उसने मना कर दिया। फिर उसे गर्म सलाखों से दागा जाने लगा।

यह कहते–कहते उस लड़की ने अपना बदन खोलकर दिखाया–जगह–जगह जले घावों के निशान..... काले–काले चकत्ते.....।

विष्णुपद ने आंखें बन्द कर लीं। उसका दम घुटने लगा। उसे अपनी मां–ब्रजरानी के तन के वे घाव के निशान याद आए और सारी पृथ्वी कांपती नजर आने लगी। वह लड़की आगे बताती जा रही थी–वह कई महीने जले हुए घावों से बीमार रही। जब वह अच्छी हुई तो उससे फिर वही पेशा कराने के लिए कहा गया। उसने फिर मना किया। उसे नंगा करके बर्फ की सिल्ली पर लिटाया जाने लगा.....।

अगले दिन विष्णुपद ने उस बस्ती के सारे युवकों को अपने साथ लेकर एक विशाल जुलूस निकाला। और इसका फल यह हुआ कि काठबाजार कई शामों तक बन्द रहा।

पर कहानी यहीं खत्म नहीं होती। एक शाम विष्णुपद के बंगले में तीन लड़कियां घुसकर चिल्लाने लगीं, ''दौड़ो, बचाओ, यह हमें भगाकर लाया है।''

''कौन ?''

पुलिस वहां झट आ गई थी।

''क्या है ?''

''विष्णुपद ने हमारी इज्जत लूटी है.....यह हमें यहां भगाकर लाया है।''

उस समय वहां शिवानी नहीं थी। वह प्रेस में बैठी काम कर रही थी। विष्णुपद घर में अकेला बैठा कुछ खत लिख रहा था।

विष्णुपद को उसी नवयुवक ने आकर बताया कि ये लड़कियां अफीम–गांजा के उसी तस्कर व्यापारी गंजा चौधरी की हैं, जिसके कई कोठे उस काठबाजार में चलते हैं।

वह भागा हुआ उस चौधरी के घर गया–उसी काठबाजार में। कई युवक उसके साथ थे। जब उसका दरवाजा तोड़कर लोग उसके कमरे में घुसे, तो वहां शराब, पिस्तौल, छुरी.....अफीम, गांजा, लड़कियों के बीच दो अफसर, मेहमान बैठे मिले थे। वहां एक जबरदस्त लड़ाई हुई थी, पर युवकों ने उस चौधरी का गला थाम लिया था।

गंजा चौधरी ने कागज़ पर लिखकर दे दिया कि उसने विष्णुपद को बदनाम करने के लिए ऐसा किया।

उस कागज़ को लेकर उन लड़कियों के साथ वह पुलिस स्टेशन गया। पुलिस अधिकारी ने कहा :

''छोड़िए, यह सब तो होता ही रहता है, कोई ऐसी खास बात नहीं।''

''जी नहीं, यह बहुत खास घटना है।''

''सुनिए.....मैं बताता हूं।''

पर विष्णुपद आगे और कुछ सुनने को तैयार न था। उसने अपना परिचय देकर जब यह कहा कि वह इसे अखबार में दे रहा है, तब वह पुलिस अफसर घबड़ज्ञ गया।

वह पुलिस जीप में उसके साथ काठबाजार गया। गंजा चौधरी को गिरफ्तार करके उसने कहा :

''मैं इसपर सख्त कार्रवाई करूंगा, पर एक शर्त है–आप इसे अखबार में नहीं छापेंगे।''

''पर यह घटना अखबार में छपनी ही चाहिए। इसे छापना मेरा फर्ज़ है।''

''दूसरों को भी तो उनके फर्ज़ निभाने दीजिए।''

यह कहकर पुलिस अफसर ने विष्णुपद को अलग ले जाकर समझाना शुरू किया–''सुनिए, यह पकड़ना–धकड़ना, समाज–सुधार आपका काम नहीं है। आपका काम अखबार निकालना है।''

''यह किसका काम है ?''

''हंअ, जिसका होगा, वह करेगा, आप इतना पढ़–लिखकर, इतने बड़े आदमी होकर इतने छोटे लोगों के साथ क्यों अपना समय, धन और ताकत बरबाद करते हो ?''

विष्णुपद ने कहा, ''शिक्षा के लिए धन्यवाद। जो मुझे करना है, मैं करूंगा।''

वह पूरी घटना अगले दिन 'नवभारत' में छपी। और आए दिन इस तरह की घटनाएं उसमें छपने लगीं। और विष्णुपद दिनों–दिन उन गरीब, गंदी, अंधी बस्तियों में धंसता चला गया। उसे लगा, न जाने कैसे क्षणों में वह इस दलदल की और मुड़ आया और अनजाने ही उसके पैर इस दलदल पर चल पड़े।

एक दिन उसने शिवानी से बड़े दुःख के साथ कहा, ''यह मैं कहां फंस गया ? कहां फंसता जा रहा हूं ?''

शिवानी ने उत्तर दिया, ''यह कार्य हमारे ही लिए था।''

''पर क्यों ?''

शिवानी हंस पड़ी :

''अच्छा, यह बताओ बाबू, इस शरीर में प्राण कहां है ?''

''मतलब ?''

''क्या बता सकते हो, इस समय प्राण शरीर के किस भाग में है ?''

''वह चारों ओर है।''

''फिर, तुम कैसे कहते हो कि वहां 'फंस' गए ?''

''पर होगा कैसे ?''

''मैं अखबार की सारी जिम्मेदारी सम्भालूंगी, तुम वहां अपना काम करो।''

लोक–सभा का उन्नीस सौ सत्तावन का निर्वाचन काल। उस पूरे इलाके के लिए कांग्रेस–जनसंघ के उम्मीदवार खड़े किए जाने लगे।

सुबह ही सुबह विष्णुपद के घर के सामने उन बस्तियों के प्रतिनिधियों ने डेरा जमा लिया। विष्णुपद और शिवानी दोनों बाहर निकले।

प्रतिनिधियों ने बताया–वे अपने क्षेत्र से विष्णुपद को लोक–सभा चुनाव के लिए खड़ा करना चाहते हैं।

विष्णुपद इसके लिए कतई तैयार नहीं था। उसका कहना था, उसने इसके लिए वहां काम नहीं किया था। वह सहज ही वहां अपना काम पूरा करेगा।

''आप वहां से हमारे एम०पी० होकर ज्यादा काम कर सकेंगे।''

विष्णुपद उन्हें समझाता रहा। पर वे सब जैसे निर्णय करके आए थे।

वे लोग जब विष्णुपद को चुप करके चले गए, तब उसने शिवानी से पूछा :

''हर काम को व्यवस्था का रूप क्यों दे दिया जाता है ?''

''तुम उसे वह रूप मत देना।''

''एम०पी० होना अपने–आपमें एक व्यवस्था है। तब कर्म करने वाला व्यक्ति नहीं रहा जाता, एक संस्था हो जाता है।''

''तुम स्वतंत्र आधार से खड़े होना।''

''यहां की राजनीति कैसी है, तुम जानती हो। समाज की सारी बुराइयां, सारे विष वहां उभरकर काम करते हैं।''

''उन सबका प्रत्यक्ष अनुभव ही क्या कम महत्वपूर्ण है ?''

''उस अनुभव से क्या होगा ?''

पर जैसे ही दिल्ली वालों को यह पता चला कि विष्णुपद उस क्षेत्र से स्वतंत्र रूप से लोक–सभा का चुनाव लड़ने जा रहा है–उनमें अजीबोगरीब प्रतिक्रियाएं हुईं।

चांदनी चौक की कपूर कोठी में मालिक हीराचंद जी ने अपने मुनीमों को बुलाया :

''कागज़ खोलकर देखो, उस क्षेत्र में हमारी जमीन कहां–कहां है ?''

मुनीम लोग लाल लाल कपड़ों में बंधे पुराने से पुराने बस्ते खोल–खोलकर देखने लगे।

''मालिक, कपूरवालों की जमीन है–सरायपूस में, कबीरबस्ती में, कहारान में।''

''और बस्तियों की जमीन किसकी है ?''

दिल्ली के पुराने मालिक सिर्फ 'चारवाले' थे–पहले 'कपूरवाले', दूसरे 'हीरामलवाले', तीसरे 'परांठावाले' और चौथे 'चूनावाले'।

इन्हीं 'वालों' ने तब दिल्ली को खरीदा था–दिल्ली शहर ही नहीं, दिल्ली के चारों ओर के सरहदों तक को–पहले बहादुरशाह जफर की शायरी को दाद देकर, फिर अंगरेजों को माई–बाप कहकर, फिर जमींदारों को पच्चीस रुपये सैकड़े सूद पर कर्ज देकर–जबकि कागज़ पर महज दो रुपये सैकड़े सूद लिखा जाता था। आजादी के बाद कांग्रेस पार्टी को चंदा देकर।

ये वे 'वाले' थे, जिन्होंने अपने बाल–बच्चों से कहा था–''कभी गरीब, लाचार पर दया न करो। जो राजा है, वही ईश्वर है। कभी सही न तोलो, कभी सच मत बोलो, कभी सही मत नापो–और धर्म का जीवन जियो।''

एक–दूसरे के यहां मुनीमों ने दौड़कर उस क्षेत्र की सारी जमीन–जायदाद का कागज़ देख लिया। और उन बस्तियों के रहने वालों पर बेदखली का दावा ठोंक दिया। उन बस्तियों में डुग्गियां बज उठीं :

''ये झुग्गियां, झोंपड़ियां, घर टूटेंगे। दूसरे की जमीन पर गैर कानूनी ढंग से घर बनाने वालों को अदालत में जाना होगा। यह सरकार का कानून है, मज़ाक नहीं। जिसकी जैसी करनी, वैसी भरनी.....।''

उन सारी बस्तियों में 'वालों' के गुमाश्ते घूमने लगे। लोग उनसे समझने लगे, मामला क्या है–इतने साल बीत गए इन बस्तियों को, आज यकायक यह क्या हो गया ? गुमाश्ते बताने लगे :

''जाओ, मालिक से भगवान की कसम खाकर कहो–हम वोट विष्णुपद को नहीं, कांग्रेस को देंगे।''

विष्णुपद सारी चाल समझ गया। उसने सारी बस्तीवालों की एक आम सभा बुलाई। उसमें इस राजनीतिक चाल को समझाया। फिर वह प्रतिनिधियों सहित उस समय के आवासमंत्री से मिला।

फिर उसने बस्तीवालों की तरफ से उन 'चारोंवालों' से मुकद्दमा लड़ा। अखबार में शिवानीने उस पूरे मसले पर लेख लिखे। अन्त में मुकदमें में बस्तीवालों की जीत हुई और 'दिल्ली–अजमेर–मेरवाड़ा रेन्ट कन्ट्रोल एक्ट' में सरकार ने संशोधन किए। और वह बेदखली का मुकदमा रद्द हुआ। लोग अपने घरों और जमीन के मालिक बने।

निर्वाचन के कुल तेरह दिन बाकी थे। विष्णुपद के खिलाफ कांग्रेस और जनसंघ के दोनों उम्मीदवार दिल्ली के बड़े आदमी थे। कांग्रेस का आदमी सीमेंट का बहुत बड़ा व्यापारी था, जनसंघ का उम्मीदवार एक फाइनेंस कम्पनी का मालिक था। इन दोनों उम्मीदवारों के एजेन्ट्स और कार्यकर्ता उन बस्तियों में विष्णुपद के खिलाफ अजीबोगरीब प्रचार करने

लगे थे। बस्ती वालों को खरीदने के लिए खुले आम रुपये बांटे जा रहे थे। कुम्हारान बस्ती में एक दिन दोनों उम्मीदवारों ने मिलकर एक दंगा कराया था। कुम्हारों ने रुपये लेने से इन्कार किया था।

तभी वह उपाय सोच निकाला उम्मीदवारों ने। कुम्हार जहां से मिट्टी लाते थे बर्तन बनाने के लिए, वहां से जमीन के मालिक ने मिट्टी निकालना मना कर दिया।

तब पंचानन ने वह जलूस निकलवाया था, कुम्हारों और धोबियों को संगठित करके–सवा सौ गधों का जलूस।

कमाल हुआ। वह जलूस जमीन के उस मालिक के घर तक ना पहुंच सका, मालिक ने लिखकर भेज दिया–कुम्हार उस जमीन से मिट्टी निकाल सकते हैं।

इस तरह की घटनाएं आए दिन होतीं, विष्णुपद को लगता जैसे वह किसी ऐसे मेले में आ गया है, जहां कुछ भीसमझ से बाहर है। जहां घटनाएं होती हैं, पर जिन्हें तर्क से नहीं समझा जा सकता।

एक दिन उसकी मुलाकात एक कांग्रेसी नेता से हुई। उन्होंने कहा–हार जाने से बेहतर है, कांग्रेस से समझौता कर लो। जो मांगो, वह कीमत चुका दी जाएगी। कांग्रेस जीतने जा रही है, इसलिए भी यह ज़रूरी है, पढ़े–लिखे लोग उसके साथ हों।

विष्णुपद ने कहा था, ''हारना–जीतना इतना महत्वपूर्ण नहीं है, मेरे लिए महत्वपूर्ण है इस समाज, इस राजनीति का अनुभव।''

''अनुभव से क्या होगा ?''

''अनुभव से जो होता है।''

''क्या होता है, लोग विरोधी दल की राजनीति में रहने के आदी होते हैं–तभी मैं जयप्रकाश बाबू की तारीफ करता हूं–वह राजनीति से बाहर चले गए। उन्होंने समझ लिया–राज्य तो होना है कांग्रेस का ही, विरोध में रहकर अपनी आत्महत्या क्यों करूं ?''

जिस विश्वास से वह नेता पान चबा–चबाकर बातें कर रहा था, विष्णुपद को लगा–वह कोई अजगर है और उसके सामने का सारा समाज उसकी खुराक है।

अन्त में उसने कहा, ''मैंने आपकी तकरीरें सुनी हैं, आपके अखबार को भी देखता रहता हूं–यह अच्छी बात है–आप इन्सान की बुनियादी स्वतंत्रता और अधिकार की बातें करते हैं–मैं कहता हूं–यहां उसकी कहां कमी है ? यहां आदमी कुछ भी कहने, सोचने और करने को स्वतंत्र है–संसार में हमसे बड़ा प्रजातंत्र मुल्क और कहां है ?''

विष्णुपद को हंसी आ गई थी।

एलेक्शन से तीन दिन पहले विशाल भगवती जागरण का आयोजन उस क्षेत्र में हुआ था–उसमें कांग्रेस और जनसंघ के दोनों उम्मीदवारों के सिर पर भगवती का जागरण हुआ था। सच दोनों अभुआए थे।

निर्वाचन से दो दिन पहले ऐसा लगने लगा कि विष्णुपद हार जाएगा। उसकी जमानत तक जब्त हो जाएगी। विष्णुपद के बस्ती के कार्यकर्ताओं को जीप में उठा–उठाकर गायब किया जाना शुरू हो गया था। पुलिस खड़ी देख रही थी।

पर हुआ आश्चर्यजनक–विष्णुपद भारी बहुमत से विजयी हो गया।

26

विष्णुपद की विजय की सूचना कपूर हवेली में मालिक हीराचंद जी को मिली। सच, उनपद दिल का दौरा पड़ गया। उन्हें उठाकर दिल्ली के नर्सिंग होम में लाया गया। वह आठ घंटे तक बेहोश रहे।

करीब तीन महीने लगे उन्हें स्वस्थ होने में। अपनी हवेली में वापस तो गए, पर डॉक्टरों ने उन्हें काम करने, चलने–फिरने से मना कर दिया था।

वह दिन–रात या तो अपने कमरे में आराम करते या अपनी मंजिल की छत पर धीरे–धीरे टहलते। पिहानीवाली दिन–रात पति की सेवा करतीं। कभी रामायण पढ़कर सुनातीं, कभी गीता–पाइ करतीं।

एक दिन उन्होंने पिहानीवाली से कहा, ''इस गीता–रामायण में मेरा मन नहीं लगता। लगता है, यह सब बकवास है।''

''चुप, चुप, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?''

''पर यहां कौन सुन रहा है, सिर्फ तुमसे मन की बात कह रहा हूं।''

''जीवन–भर तो उसी धर्म के लिए लड़ते रहे हो, अब क्या हो गया ?''

''विश्वास तो अब भी है–धर्म से बड़ी और कोई वस्तु इस संसार में नहीं है।''

''तो फिर चिंता क्यों करते हो ? ईश्वर ने जो दुःख दिया है, वही दूर भी करेगा।''

इस तरह पिहानीवाली के साथ मालिक हीराचन्द घंटों बातें करते। पति–पत्नी बातें करते–करते जाने कहां–कहां खो जाते। बातों में वह ब्रजरानी आ जाती, वह विष्णुपद, वह शिवानी, कुंवर और विजय। फिर लगता जैसे एक वंशवृक्ष उस कमरे में फैल आया हो और वे दोनों उसके फलों को चुपचाप निहार रहे हैं।

वैद्य, डाक्टर, हकीम और ज्योतिषियों की सुबह–शाम भीड़ लग जाती। मालिक कहते–''कोई ऐसी दवा, ऐसा उपाय दो, ताकि मैं अभी कम से कम दस वर्ष और ज़िंदा रह सकूं।''

बनारस से तब वही प्रसिद्ध ज्योतिषी बुलाया गया। उसने सारी दशाओं की गणना करके हिसाब जोड़ दिया–

''लग गया पक्का हिसाब।''

''बताइए.....।''

''कमरे में पति–पत्नी के अलावा और कोई न हो।''

कमरा उन तीन के अलावा औरों से खाली हो गया। ज्योतिषी ने भृगुसंहिता खोली और गणना करते हुए मालिक हीराचन्द की पूरी ज़िन्दगी जैसे खुली किताब की तरह पढ़ने लगा–जन्म से लेकर दिल के दौरे तक की एक–एक बात सोलहो आने सही।

''पर भविष्य बताइए, अब मेरे लिए वही सब कुछ है।''

''भविष्य मत जानिए.....।''

''वही तो जानना चाहता हूं।''

''तो सुनिए–अब आपका जीवन कुल दो महीने, पांच दिन, छः घंटे और सोलह पल और शेष हैं।''

मालिक तो सन्न रह गए, पर पिहानीवाली रोने लगी।

मालिक ने पूछा, ''जीवन बढ़ाने का क्या उपाय है ?''

''हां, है क्यों नहीं ? उपाय है, किसी और का जीवन लेकर कुछ वर्ष और जीवित रह सकते हैं।''

पिहानीवाली ने आंचल फैलाकर कहा, ''मैं अपने पति को अपना जीवन दे सकती हूं।''

''फिर हो जाएगा। काशी में एक तांत्रिक है–वह यह क्रिया पूरी कर देगा।''

सब कुछ तय हो गया। काशी से वह तांत्रिक बुलाया गया। जमुना–तट पर उसने एक वेदी बनाई। वहीं वह तांत्रिक साधना शुरू हुई। नित्य पांच सौ कमल के फूल लाए जाते। उनकी पंखुड़ियां कुमारी लड़कियों से अलग की जातीं और पिहानीवाली उन पंखुड़ियों के साथ पैदल, नंगे पैर वहां जमुना–तट पर जातीं। वहां फिर वह तांत्रिक साधना करता। ठीक तीसरे दिन वह साधना समाप्त हुई।

उसी रात पिहानीवाली को तेज बुखार चढ़ा–और दो दिनों के भीतर उन्हें पीलिया हो गया और वह चौथे दिन मर गईं। यह सब कुछ गुप्त रूप से हुआ। इसकी खबर कुंवर के अलावा और किसीको न हुई।

मृत्यु की सूचना ज़रूर मिली विष्णुपद और शिवानी को। वे दोनों दौड़े आए। पर उन्हें हवेली में घुसने न दिया गया। वे दोनों हवेली के दरवाजे पर खड़े सुनते रहे–भीतर पिहानीवाली की जय–जयकार हो रही है। लोग पतिव्रता के गुणगान कर रहे हैं। लोग जो उसके शव का अंतिम दर्शन करके लौट रहे हैं, वे आपस में बातें कर रहे हैं :

देवी थी देवी।

देवी के मुंह, नाक, आंख से अब तक खून की धारा बह रही है।

देवी ने अपना जीवन पति को दे दिया।

देवी का रक्त बहना रुक नहीं रहा है।

वह रक्त नहीं, जीवन–गंगा है।

वह स्वर्ग सिधार गई। विमान पर बैठकर गई है।

संध्या चार बजे पिहानीवाली का शव फूल–मालाओं से सजाकर बाहर निकाला गया। वहीं जनता की भीड़ में से उन दोनों ने पिहानीवाली को दूर से देखा। लोग कंधों पर शव को उठाकर ले चले। खून अब तक टपक रहा है और ले जाने वाले लोगों पर खून की वे बूंदे टपक रही हैं।

''देवी की जय !''

''धर्म की जय !''

यह कहते हुए लोग–खून की उन बूंदों को अपने माथे पर चढ़ाने के लिए लड़ रहे हैं। भाग रहे हैं उस शव–यात्रा के पीछे–पीछे।

अगले दिन के अखबार में शिवानी ने अपने नाम से लिखा, ''धर्म से बड़ा हत्यारा और कुछ नहीं है.....स्त्री का सबसे भयानक शोषण इसी धर्म के नाम से होता है.....पिहानीवाली की हत्या की गई.....आज से बड़ा शोक का दिन और क्या हो सकता है–जब अंधविश्वास ने मनुष्य के विश्वास का इस तरह गला घोंटा है। स्त्री को देवी, धर्मपत्नी कहकर उसकी इस तरह खुले आम हत्या की गई.....।''

पर इन लेखों का असर कुछ भी न हुआ। विष्णुपद ने इसे लोक–सभा में प्रश्न के रूप में रखना चाहा, उसे वहां भी सफलता न मिली।

उधर कपूर हवेली में पिहानीवाली के कमरे को 'देवी का कमरा' बना दिया गया। वहां उसकी सोने की प्रतिमा स्थापित की गई और उसकी पूजा होने लगी।

मालिक हीराचन्द जी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। पर एक महीने बाद एक दुर्घटना हो ही गई। हीराचन्द जी पर फालिज गिरा–उनका सारा बायां अंग बेकार हो गया।

काशी से फिर वैद्य जी बुलाए गए। वही ज्योतिषी आए–वही तांत्रिक आया और सबने मिलकर फैसला किया–उपचार के लिए।

पांच सौ सफेद पालतू कबूतर खरीदे गए। मालिक दिन–भर उन कबूतरों को पीली सरसों के दाने चुगाते और वे सारे कबूतर उनके ऊपर उड़ाए जाते–बैठाए जाते। कबूतरों की हवा और उनके स्पर्श को ही रामबाण बताया गया था।

दिन–भर छत पर, कमरे में, आंगन में उन कबूतरों के झुंड के झुंड मालिक के ऊपर उड़ते, उनके शरीर पर बैठकर गुटरूंगू करते और मालिक को लगता उनके निर्जीव अंग में शक्ति आ रही है।

पर शक्ति नहीं आई। फिर उन कबूतरों को मारकर उनसे तेल निकाला गया और उस तेल की मालिश उनपद होने लगी।

एक दिन विष्णुपद के उस क्षेत्र में–उन गरीब बस्तियों में एक अंगरेज घूमने आया। वहां चुपचाप कई दिनों तक घूम–घूमकर न जाने क्या देखता–समझता रहा। फिर वह विष्णुपद से मिला। अंत में उसकी मुलाकात उसके विरोधी, हारे हुए उम्मीदवारों से हुई।

सब इस निर्णय पर एकमत थे–कि अगले चुनाव में किसी तरह से भी उस क्षेत्र से विष्णुपद को विजय न मिल सके। इसके लिए मात्र यही उपाय ढूंढा गया कि जनता को उसकी धार्मिक भावना के जरिए भड़काकर विष्णुपद के खिलाफ किया जाए। वह जिस हिन्दू धर्म के खिलाफ हर वक्त बोलता और लिखता रहता है, वही धर्म शत्रु बनकर उसे हमेशा के लिए पराजित करे।

इसके लिए सबसे पहले एक साधु की तलाश शुरू हुई। एक ऐसा साधु जो बिल्कुल गंवार और निरक्षर हो, कम बोलता हो और कुछभी न जानता हो।

पंचानन एक रात चोरी करके दिन में पुलिस से बचाव के लिए सराय रुहेल्ला के एक बाग में साधु के भेस में बैठा आराम कर रहा था। उस अंगरेज के साथ लोग उसीसे जा टकराए। लोगों ने जब उससे पूछा :

''महाराज, हम आपसे कुछ सत्संग करने आए हैं।''

तब उसके मुंह से सिर्फ यही फूटा, ''बड़बड़–बड़बड़।''

लोग उससे आश्चर्यचकित रह गए। वह हर बात में सिर्फ 'बड़बड़–बड़बड़' करता था उसके सिवा और कुछ भी नहीं।

''महाराज, आपका नाम ?''

''बड़बड़–बड़बड़।''

''आपका निवास–स्थान ?''

''बड़बड़।''

''आपका धर्म ?''

''बड़बड़।''

''आपका दर्शन ?''

''बड़बड़–बड़बड़।''

लोगों का काम बन गया। अंगरेज ने योजना बना ली। वह इसे अपने संग विदेश ले जाएगा। उसे 'डिवाइन लाइट' के नाम से विदेशों में प्रसिद्ध करेगा। बड़े–बड़े स्थानों पर उसके उपदेश प्रसारित और प्रचारित करेगा। बड़े–बड़े अखबारों में उसके चित्र छपेंगे। उसके नाम से किताबें प्रकाशित की जाएंगी। महापुरुषों के साथ उसके चित्र लिए जाएंगे और उसे 'मरुतानंद' के रूप में अंतर्राष्ट्रीय नाम मिलेगा। फिर वह दो वर्षों बाद वायुयान से दिल्ली वापस लाया जाएगा।

सच, वही सब हुआ। पंचानन चोर रातोंरात 'महर्षि मरुतानंद' बना दिया गया और सीधे यहां से अमेरिका ले जाया गया। न्यूयार्क और वाशिंगटन में उसके शिष्य बनाए गए। वह पीले रेशमी वस्त्र में जब अपार जन समूह के सामने 'बड़बड़–बड़बड़' कहकर हाथ उठाता तो लोगों को समझाया जाता–शिवशंकर डमरू बजा रहे हैं और मानवता को यह संदेश दे रहे हैं कि उसकी शरण आओ.....उसके दर्शनमात्र से अपने दुखों से मुक्त हो, जो कुछ भी मन की कामना हो, उसे प्राप्त करो।

विदेशी स्त्रियां, बूढ़े, बच्चे असंख्य की तादाद में उसके दर्शन के लिए आते और वह 'बड़बड़–बड़बड़' करके उन्हें आशीष देता। अपार जनता के साथ उसकी फिल्म तैयार की जाती। टेलीविजन पर उसकी वे फिल्में दिखाई जाने लगीं। विदेश के रेडियो पर उसके 'बड़बड़' का प्रसारण होता और लोग आंख मूंदकर दिव्य आत्मा का ध्यान करने लगते। अमेरिका से वह कनाडा ले जाया गया। वहां से इंग्लैंड, स्पेन, इटली, स्वीडन और फ्रांस।

इस बीच पूरे भारतवर्ष में 'मरुतानंद' के असंख्य शिष्य बनकर तैयार हो गए थे।

योजनानुसार भारतवर्ष में मरुतानंद के पदार्पण की तैयारियां होने लगी थीं। सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के लोग उसके स्वागत के लिए लालायित थे।

वह तेरह जनवरी का दिन निश्चित था, जिस दिन मरुतानंद अपने तीन सौ विदेशी शिष्यों के साथ एक विशेष हवाई जहाज से दिल्ली पहुंच रहा था। एक महीने पहले से मरुतानंद के चित्र के बड़े–बड़े पोस्टर दिल्ली की सारी दीवारों और स्थानों पर लग गए थे। मरुतानंद की सिद्धि, दर्शन, प्रवचन और प्रभाव को बताने के लिए हर भाषा में अपार साहित्य न जाने कहां से छपकर मुफ्त में बांटा जाने लगा था। उसके बड़े–बड़े रंगीन चित्र दिल्ली के प्रायः सभी भागों में बड़े ही शानदार ढंग से लगाए जा चुके थे।

तेरह जनवरी को ठीक ग्यारह बजे वह विशेष वायुयान महर्षि मरुतानंद जी और उसके शिष्यों सहित पालम हवाई अड्डे पर आया। लाखों की तादाद में दिल्ली और आसपास की जनता उस दिव्य आत्मा के दर्शन के लिए आई थी। जय–जयकार से सारा वातावरण गूंज उठा। देशी–विदेशी पत्रकारों, कैमरामैन और टेलीविजन वालों से पालम जैसे भर गया था।

मरुतानंद के विदेशी शिष्य–लड़के–लड़कियां, पुरुष और स्त्रियां बड़े–बड़े होटलों में टिका दिए गए थे। स्वयं मरुतानंद जी अपनी पांच शिष्याओं सहित उसी बाराखंबा रोड के बंगले पर टिके थे।

वहीं लॉन में तम्बू के नीचे मरुतानंद जी की व्यासगद्दी लगाई गई थी। वहीं अगले दिन सुबह प्रेस कान्फ्रेंस बुलाई गई थी। देश–विदेश के पत्रकार आए थे। विष्णुपद भी आया था।

सारे पत्रकार मरुतानंद जी से प्रश्न कर रहे थे। मरुतानंद या तो उत्तर देता 'बड़बड़–बड़बड़' के शब्द निकालकर, या हंसकर, या मुस्कराकर। उसकी शिष्याएं उस 'बड़बड़' की, उन प्रश्नों के प्रसंग में व्याख्याएं करतीं।

विष्णुपद अपलक उस मरुतानंद को निहार रहा था, और अंत में उसे पहचान गया कि यह तो वही पंचानन है। प्रेस कान्फ्रेंस खत्म हुई, तब एकांत पाकर विष्णुपद ने कहा :

''पंचानन, अरे यह तू है ?''

''तो क्या पंचानन महर्षि मरुतानंद नहीं हो सकता ?''

''पर तूने यह क्या किया ?''

''क्यों, मैं जीवन–भर वही चोर ही बना रहता ? आखिर मेरी भी तो किस्मत है।''

''इतना बड़ा ढोंग पंचानन ?''

''यही तो मेरा युग है–कलयुग का दूसरा चरण।''

''पर तू तो बड़ा ईमानदार व्यक्ति रहा है।''

''इस युग में कोई कब तक ईमानदार बना रहेगा, एक दिन तो ऐसा आता ही है।''

विष्णुपद के प्रत्येक सवाल का धड़ाधड़ निःसंकोच उत्तर वह पंचानन दे रहा था। वह इस बीच कितना चतुर और आत्मविश्वासी हो गया है, इसे देखकर विष्णुपद आश्चर्यचकित था।

''तू चाहता क्या है ? तेरा लक्ष्य क्या है ?''

''इस युग का सबसे महान पुरुष बनना और दुःखी मानवता को संदेश।''

''यह झूठ है.....प्रपंच है.....ढोंग है।''

''यही तो युग सत्य है। तू चुपचाप अब यहां से चला जा विष्णुपद।''

''पंचानन..... ।''

''मैं अब वह पंचानन नहीं। तुम जैसे सैकड़ों लोग मेरे शिष्य हैं। मेरी शक्ति का अंदाज तू नहीं कर सकता। मेरे पास धन है, साधन है, सुंदरियां हैं, मैं किसीको भी खरीद सकता हूं। बोल, तेरी इच्छा क्या है..... ? पूरा करूंगा..... ।''

''तू इस ढोंग को छोड़ दे।''

''अब वापस लौटना असंभव है।''

''मैं तेरी मदद करूंगा।''

''अब मेरी मदद कोई नहीं कर सकता। जा, भाग जा यहां से। मेरे शिष्यगण आ रहे हैं।''

''पंचानन होश में आ।''

''तू होश में आ, तेरा युग समाप्त हो गया। चुपचाप चला जा यहां से। खबरदार, मेरे खिलाफ एक शब्द भी जो छापा अपने अखबार में।''

''नहीं, मैं तेरा भंडाफोड़ करूंगा।''

''बड़े–बड़े मंत्री, गवर्नर, करोड़पति, विद्वान, गुंडे, शरीफ सब तरह के लोग मेरे शिष्य हैं। मेरे खिलाफ कुछ कहने का मतलब हैं उसका सत्यानाश। देख, मेरे अंतर्राष्ट्रीय शिष्य।

''मालूम है, ये अंतर्राष्ट्रीय शिष्य क्या हैं, साधु–भेस में तस्कर.....व्यापारी.....स्मग्लर्स..... ।''

विष्णुपद को शिष्यों ने धक्का देकर वहां से निकाल दिया। उसने पुलिस को खबर दी। सी०आई०डी० वालों को बताया। उससे कहा गया–मरुतानंद को वी०आई०पी० की हैसियत दी गई है। पुलिस उसके खिलाफ कुछ नहीं कर सकती।

उसने अंत में गृह मंत्रालय से संपर्क स्थापित किया। पर उससे कहा गया–यह धर्म–निरपेक्ष प्रजातंत्र मुल्क है–यहां किसीको भी अपने धर्म पालन की स्वतंत्रता है।

विष्णुपद ने अपने अखबार में खुलकर स्वामी मरुतानंद का भंडाफोड़ किया। और अगले दिन जैसे भूचाल आ गया।

मरुतानंद जी उस समय सरायपूस, कबीरबस्ती, गूदड़बस्ती, कटरा कहारान, कुम्हारान, चमारान, मेहतरान और काठबाजार की सम्मिलित जनता की भीड़ में धर्म और मोक्ष पर भाषण दे रहा था और उसके हजारों शिष्य अपने वस्त्रों में पेट्रोल भरे डिब्बे, मिट्टी के तल भरे बर्तन, पिस्तौल, छुरी, बम छिपाए हरि–कीर्तन करते हुए अखबार कार्यालय की तरफ धीरे–धीरे बढ़ रहे थे :

जै जै कृष्ण जै जै राम
जै जै शंकर जै जै शिव
बड़बड़ बड़बड़ करके जिव
बोलो स्वामी मरुतानंद जी की जै !
जै जै मरुत जै जै आनंद
जै जै शक्ति जै जै अखंड
जै जै बड़बड़ मरुतानंद !
बोलो विश्वधर्म की जै.....हिन्दू धर्म की जै !

कार्यालय की रक्षा में पुलिस खड़ी थी। पर शिष्यों की संख्या में न जाने कैसे, कहां से बढ़ोतरी होती जा रही थी।

देखे–देखते शिष्यों ने कार्यालय को घेर लिया। पुलिस उन्हें अंदर घुसने से रोक रही थी, पर तब तक न जाने किस रास्ते से कुछ शिष्य अंदर घुस चुके थे।

कार्यालय में आग लग गई।

पुलिस और शिष्यों में युद्ध छिड़ गया।

जब तक और पुलिस शक्ति वहां पहुंचे, सारे कार्यालय में आग लगाकर और कर्मचारियों–पुलिस को पीट–पाटकर वे लोग अदृश्य हो चुके थे।

अगले दिन विरोधी पक्ष से जब प्रेस की आजादी और धर्म के नाम पर उस 'फाजिज्म' अधर्म का सवाल लोक–सभा में उठाया गया, तो मंत्री ने उसका उत्तर देते हुए कहा–''हमारा धर्म–निरपेक्ष राज्य है। हम सह–अस्तित्व और व्यक्ति–स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। हमें धैर्य और उदारता से काम लेना चाहिए। हम विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र राष्ट्र के नागरिक हैं..... ।''

घटनाओं की जैसे यह मात्र भूमिका थी। असली घटना की तैयारी उन बस्तियों में चल रही थी। देश के सारे तस्कर व्यापारी साधु–भेस में वहां इकट्ठे हो रहे थे।

गरीब हिन्दू–मुसलमान जनता के बीच विष बोया जाता और विष्णुपद किस तरह हिन्दू धर्म का शत्रु है–यह साबित किया जा रहा था।

तब एक हफ्ते–भर अखबार का प्रकाशन बंद रहा। उसका कागज़–गोदाम, कुछ मशीनें, ज़रूरी सामान जल गएथे।

अपने समाचार पत्र के जरिए उस अंधविश्वास, ढोंग और सांप्रदायिकता के जहर से विष्णुपद लड़ रहा था। उन बस्तियों में वह अपने लोगों से मिलीकर मरुतानंद के विरोध में प्रदर्शन कराना चाहता, उसके खिलाफ लोगों की आम सभा बुलाना चाहता, पर उसे सफलता नहीं मिल रही थी।

बस्ती के लोगों को मरुतानंद के शिष्यों और समर्थकों से पैसे मिल रहे थे, दूसरे बस्ती के आसपास के धनी लोग उन्हें प्रभावित करते थे।

एक दिन उसी बस्ती में शिवानी मिली उसी मरुतानंद से।

''सुनो भाई पंचानन !''

''खबरदार नारी, मेरा नाम मरुतानंद है। मारुत माने हवा, वायु, जैसे वायु सर्वत्र है, इसकी गति और महिमा सर्वत्र है। बिना इसके जीवन असंभव है, मैं वही हूं मारुतपति। मैं सर्वत्र हूं.....मेरी गति सर्वत्र है। तेरी जो इच्छा है, मुझसे मांग।''

''भाई, तू यहां से चला जा।''

''आज्ञा मत दे स्त्री, अपनी इच्छा बता.....बड़बड़–बड़बड़।''

''लोग तुझे अधर्म के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। तुझे विष्णुपद का शत्रु बना रहे हैं।''

''बड़बड़–बड़बड़.....मेरा न कोई शत्रु है न मित्र.....वायु के लिए सब समान हैं।''

''हमारे प्रेस में तेरे शिष्यों ने आग लगाकर.....।''

''बड़बड़–बड़बड़.....मैंने विष्णुपद को सावधान कर दिया था। पर उसे मेरी शक्ति का अनुमान नहीं था..... बड़बड़–बड़बड़। हां, प्रेस में जो नुकसान हुआ है–उसका दूना धन तुम्हें अभी मिल सकता है.....बड़बड़–बड़बड़। बस, अखबार में सिर्फ इतना छप जाए–

'मरुतानंद के विषय में हमने जो छापा, हम उसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं.....।'''

''पर अखबार में ऐसा नहीं छापा जाता।''

''इस ब्रह्मांड में सब एक–दूसरे को इस्तेमाल कर रहे हैं।''

''बकवास.....।''

''बड़बड़–बड़बड़।''

विष्णुपद और शिवानी अपनी पूरी शक्ति लगाकर मरुतानंद और उसकी शिष्य पार्टी को उस क्षेत्र से जितना ही निकालना चाहते थे, उतना ही उनका काम वहां बढ़ता जा रहा था।

शिष्य लोग कहते थे–''हम लोग इन गंदी बस्तियों को स्वच्छ कर रहे हैं। इन्हें मानवता का पाठ पढ़ा रहे हैं।''

मरुतानंद ने अंत में 'महामारुत यज्ञ' का अनुष्ठान किया। न जाने कहां–कहां से भक्त लोग वहां आने लगे और यज्ञ शुरू हुआ।

महीने–भर बाद जिस दिन यज्ञ की पूर्णाहुति हुई, उस रात हिन्दू–मुसलमानों की उन गरीब बस्तियों में आग लगी और सांप्रदायिकता की आग भड़क उठी।

27

मरुतानंद के भारत आगमन कांड के पहले एक जबरदस्त घटना कुंवर के लड़के विजय कपूर के जीवन में घटी थी।

वह जापान से भारत लौट रहा था। हांगकांग में उसकी भेंट एक आइरिश युवती से हुई थी। उसका नाम था–लिलियन। वह विभिन्न देशों में घूमती हुई भारत–दर्शन के लिए आ रही थी। हांगकांग से कलकत्ता और कलकत्ता से दोनों संग–संग दिल्ली आए थे।

लिलियन को विजय ने अपना मेहमान बनाकर गोल्फ लिंक के घर में रखा था। उसका व्यक्तिव इतना मुक्त और मोहक था कि विजय उससे बेतरह आकृष्ट हुआ था।

लिलियन आयरलैंड के एक प्रोफेसर की एकलौती लड़की थी। उसकी दिलचस्पी थी–देश–विदेश में घूमने की। पिता से इसी दिलचस्पी के कारण संबंध टूटा था। और एक दिन वह अकेली घर से चल पड़ी थी। पहले यूरोप फिर एशिया। सबसे ज्यादा समय वह मलाया, सिंगापुर और इंडोनेशिया में रही है। इन तीनों स्थानों पर उसने अखबार में पत्रकार का कार्य किया था।

इन वर्षों के जीवन अनुभवों ने उसे इतना तोड़ और बनाया था कि वह अक्सर किसीसे बातें करते समय बच्चों की तरह हंसने लगती थी।

दमदम हवाई अड्डे के लाउंज में लिलियन से जब विजय ने पूछा था :

''आपको परेशानी नहीं होती ?''

तब उसने हंसते हुए उत्तर दिया था, ''मैं किसीसे उतनी आशा नहीं करती.....।''

''आपमें कितना साहस है !''

''आपमें कम है–मुझसे इस तरह बात कर रहे हैं।''

''यह भी साहस है ?''

''हां, क्यों नहीं ?''

दोनों चुपचाप कॉफी पीने लगे थे। लिलियन ने तब पहली बार पूछा था, ''आप क्या करते हैं ?''

विजय को कोई उत्तर न सूझा था, पर उसने सब कुछ अपने बारे में साफ–साफ लिलियन को बता दिया था।

लिलियन खुश हो गई थी, ''ओह, आप लोग इतनी जल्दी सब कुछ अपने बारे में बता देते हैं–हाउ वंडरफुल अहां..... ।''

वह बेतरह बीड़ी पीती थी।

विजय ने उसे अच्छी सिगरेट देनी चाही। उसने कहा, ''बीड़ी बड़िया है.....मैं हिन्दी बोल सकती हूं।''

दोनों दिल्ली के लिए रवाना हुए थे। प्लेन में एक स्थान से उसने हिमालय की धवल–शुभ्र चोटियां देखी थीं–और वह चंचल हो उठी थी।

''आपने कालिदास का मेघदूत पढ़ा है ?''

''नहीं।''

''कुमारसंभव ?''

''नहीं..... ।''

''ओह.....हां.....ओ.....के..... ।''

यह कहते हुए उसने अपने झोले में से मेघदूत की संस्कृत–अंग्रेजी पाठ्य पुस्तक उसके हाथों में थमा दी थी।

गोल्फ लिंक के बंगले में लिलियन सुबह नाश्ता करके बाहर निकल जाती और रात को असमय लौटती। कभी–कभार नहीं लौटती। विजय उसका दिन–रात इंतज़ार करता। उसके संग घूमने के लिए इच्छा करता, पर वह कहती :

''आपका इतना बड़ा 'बिज़नेस' है, मैं तो घुमक्कड़ हूं।''

''पर मैं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूं।''

''क्यों ?''

''तब मुझे लगता है कि मैं हूं। मुझमें साहस है, श्रद्धा है।''

''ओह ! इतने बड़े–बड़े शब्द !''

''मैं तुमसे प्रेम करता हूं।''

यह सुनकर लिलियन ठहाका मारकर हंस पड़ी थी।

''बताओ, इससे पहले तुमने किसीसे प्रेम किया ?''

''नहीं। इससे पहले मुझे कभी लगा ही नहीं कि मैं यह कर सकता हूं।''

विजय की ये निश्छल बातें लिलियल को बेहद आकृष्ट करतीं।

एक दिन विजय उसके साथ घूमने निकला था। दोनों घूमते हुए तब उसी मरुतानंद के महायज्ञ में पहुंचे थे। वहां लिलियन ने सारा दृश्य देखकर कहा था :

''यह कैसा धर्म है ?''

''मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता।''

फिर दोनों विष्णुपद और शिवानी से मिल थे। वहां दोनों को मरुतानंद के बारे में पूरी जानकारी मिली थी।

लिलियन को अपने बहुत समीप पाकर विजय ने कहा था, ''मैं तुमसे शादी करना चाहता हूं।''

वह आश्चर्यचकित हो गई, ''पर क्यों ?''

''हमारे प्रेम का सर्वश्रेष्ठ है यही शादी।''

लिलियन हंस पड़ी थी।

''पर मैं तुम्हें नहीं जानती।''

''मैं तुम्हें जानता हूं।''

''वह काफी नहीं है।''

''क्यो ?''

''शादी के लिए प्रेम ही ज़रूरी नहीं है, इसके लिए एक लम्बी तैयारी की ज़रूरत है।''

विजय ने उसका हाथ पकड़कर प्रेमभाव से कहा, ''तुम मुझे और जितना जानना चाहो, मैं तैयार हूं।''

''पर ऐसे कैसे जानना हो सकता है। तुमने भी तो मुझे नहीं जाना।''

''मैंने तुम्हें जान लिया। मैं तुमसे प्रेम करता हूं।''

''पत तुम्हारे पास अपना है क्या ?''

''मेरे पास क्या नहीं है ?''

''तुम्हारे पास अपना कुछ नहीं है.....'नथिंग'।''

उस दिन लिलियन बंगले से कहीं बाहर न जा सकी। वह बेहद उदास और चिंत्ति थी। विजय को वह भी प्यार करने लगी थी। पर विवाह की उसने इस तरह कभी कल्पना भी न की थी।

अचानक एक दिन सुबह लिलियन विजय को 'गुडबाई' कहकर चली गई। इसका इतना बड़ा धक्का विजय को लगा कि दूसरे ही दिन वह सब कुछ छोड़कर घर से बाहर निकल गया।

महीनों विजय न जाने कहां–कहां हिप्पी के रूप में घूमता रहा। एक बार वह उसी रूप में दिल्ली लौटा था। कुंवर से उसकी मुलाकात हुई थी। कुंवर उसकी दशा देखकर बेहद घबड़ा गया था।

''यह क्या कर लिया तूने बेटे ?''

''मैं खुश हूं.....बेहद खुश.....अब मैं 'मैं' नहीं हूं। मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।''

''वह लिलियन मैं तेरे लिए वापस ला सकता हूं।''

''पर अब मैं 'वह' नहीं हूं।''

''फिर क्या हो ?''

''पता नहीं, वही मैं ढूंढ रहा हूं।''

''क्या ?''

''क्या नहीं ?''

विजय फिर दुबारा दिल्ली की सड़कों पर उस तरफ नहीं दिखाई पड़ा। वह सारे तीर्थस्थानों, धर्मस्थलों, संतों–साधुओं.....नक्सलपंथियों, चोर–डाकू–उचक्कों, तस्करों, नशेबाजों–वाममार्गियों के बीच घूमता रहा।

फिर जब वह दिल्ली लौटा, तो उसे कोई न पहचान सका। उसके फटे वस्त्र, बढ़े हुए बाल, दाढ़ी, दुबला तपा हुआ शरीर और कंधे पर सिर्फ एक झोला–उसे कोई न पहचान पाता। पर वह सबको पहचान रहा था.....एक–एक को देख–समझ रहा था।

तभी उस दिन उन सरायपूस, कबीरबस्ती, गूदड़बस्ती, कुम्हारान से लेकर काठबाजार की बस्तियों में अजब आग भड़की थी। हिन्दू–मुसलमान, गरीब–अमीर, छूत और अछूतों में लड़ाई शुरू हुई थी।

उन बस्तियों की आग ने सब कुछ जलाकर खाक स्वाह कर दिया था। लूट, कत्ल और विनाश की लीला होने लगी थी। मरुतानंद के भारतीय शिष्यों ने उसपर गुरु–अपमान के लिए मुकदमें चला रखे थे। भारतीय दंड विधान का दफा पांच सौ। वे मुकदमे उस पर विभिन्न स्थानों पर चलाए गए थे–उत्तर प्रदेश में–इलाहाबाद, लखनऊ, मिर्जापुर, बनारस, बाराबंकी, गोंडा, गोरखपुर और सीतापुर से; बिहार में गया, पटना और रांची से; मध्य प्रदेश में जबलपुर, भोपाल और रीवां से। इसी तरह पंजाब, हरियाणे के कितने ही स्थानों से।

अकेला मनसुख अखबार का काम देख रहा था। शिवानी उन बस्तियों के सेवा–कार्य कर रही थी। उसे उन्नीस सौ सैंतालीस का वही कुरुक्षेत्र शिविर याद आया था। वही पाकिस्तान से भागे हुए शरणार्थी.....और वही पाकिस्तान जाने वाला काफिला–वही तबाही, वही विनाश दृश्य। उसे लगा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो मुल्क अलग हो गए, तो अंतर क्या पड़ा ? हिन्दुस्तान में जो कई हिन्दुस्तान हैं, जैसे पाकिस्तान में जो कई पाकिस्तान हैं–उनका क्या होगा ? यह युद्ध कहीइं भी, किसी वक्त छेड़ा जा सकता है। अपने–आपसे, अपने ही लोगों से युद्ध। आत्मविनाश के कीटाणु कहां नहीं हैं ? ये ऊपर से नहीं दीखते, पर इन्हें ज़रा–सा बहाना चाहिए, भाषा का, धर्म का, विश्वास–अविश्वास का।

बस्ती में सहायता–कार्य भी करना अब उतना आसान नहीं था। आज्ञा देने वाले, प्रबंधक अधिक थे, कार्यकर्ता कम थे। सबसे बड़ा अंतर तब से यह पड़ा था कि अब लोग मनुष्य के बजाय जनसंघी, कांग्रेसी, स्वतंत्र, लीगी, साम्यवादी, समाजवादी, राष्ट्रवादी नजर से बांट–बांटकर देखा जाने लगा था।

घायल आर जले हुए लोगों को वही शिविर अस्पताल में ले जाया जाता था। लोगों के आवास और पुनर्वास के लिए बड़ी सहायता की ज़रूरत थी।

वहीं सहायता–कार्य में एक दिन शिवानी ने देखा एक युवक हिप्पी.....नहीं–नहीं.....वही विजय, जिसे उसके सिवा और कोई नहीं पहचान सकता था, घायलों की सेवा–कार्य में लगा है। वह उस भूमि के एक–एक पदार्थ को, एक–एक मनुष्य को निहारता चल रहा है और जैसे पूरे सत्य से अपने–आपको जोड़ रहा है।

उस रूप में विजय को देखकर शिवानी अपने–आपसे, अपने मातृत्व से कृतज्ञ हो गई। जैसे उसके माथे का एक अदृश्य अपमान आज धुल रहा है।

दूसरे दिन शिवानी ने उसी लिलियन को देखा। उसे भी कोई और नहीं पहचान सकता था। वह साधारण कपड़े पहने हुए, नंगे पैर उन जली हुई बस्तियों में घूम–घूमकर न जाने क्या लिखती जा रही थी। वह लोगों से मिलती, उनसे प्रश्न करती।

एक दिन उसने शिवानी से भी प्रश्न करने शुरू किए। तब उसने पूछा :

''तुम यह क्या कर रही हो ?''

''मैं जानना चाहती हूं–यहां यह क्यों हुआ ? इसकी बुनियाद क्या है ?''

तब शिवानी ने उसे उस पुरुष को दिखाया, जो यहां सहायता शिविरों में दिन–रात अनाम होकर लोगों की सहायता, सेवा कर रहा था।

''यह कौन है ?''

''पहचानो, वह कौन है ?''

''विजय !''

वह आश्चर्यचकित रह गई। वह उसके पास गई। उससे मिलकर वही प्रश्न करने लगी। दोनों ने उस नई भूमि, जीवन के उस नये परिवेश में जैसे पहली बार एक–दूसरे को पहचाना।

सारे मुकदमों में हाजिर होकर और अपने बयानात देकर विष्णुपद दिल्ली लौटा था। उन बस्तियों की विनाश–लीला देखकर वह जितना ही घायल हुआ, उतना ही वह विजय और लिलियन को उस तरह पाकर आस्थावान हुआ।

शिवानी और विष्णुपद ने लिलियन को विजय के बारे में सब कुछ बताया। उनका इस तरह सब कुछ त्यागकर घर छोड़ देना, दिल्ली में इसे यहां इस तरह पाया जाना–यह सारा सत्य जितना उन दोनों को आश्चर्यचकित कर देने वाला था, उससे कहीं अधिक लिलियन के लिए वह एक नया अनुभव था। एक ऐसा अनुभव, जिसके लिए शायद उसने अपना घर–देश छोड़ा था–इतने–इतने देशों में वह इस तरह भटकती रही है।

''अब तुम कहां रहते हो विजय ?''

''कहीं भी।''

''क्या खतो हो ?''

विजय ने लिलियन को बड़ी गंभीरता से देखकर कहा :

''अब रहना, खाना, महत्वपूर्ण नहीं रह गया।''

विजय और लिलियन एक–दूसरे को देखते रह गए। दोनों एक संग उन बस्तियों में काम करने लगे। विजय लोगों को घर वापस लाकर उन्हें फिर से बसने में साहस देता। उन्हें समझाता–''तुम्हीं–मनुष्य ही अपना मित्र है, वही अपना शत्रु है।''

लोग रोते हुए कहते, ''हमें क्या पता था वह मरुतानंद.....।''

''किसीको भी पहले क्या पता.....तभी तो पता करने की इतनी ज़रूरत है।''

''धर्म इतना विनाश कर सकता है..... !''

लोग रोने लगते यह कहकर। विजय उनको समझाता, ''गरीब, कमज़ोर मनुष्य और धर्म इन दोनों का जन्म एक साथ हुआ है।''

फिर वह पंचानन की कहानी बताते–बताते लोगों से कहता, ''धन का ही अस्त्र धर्म है। और धर्म जब राजनीति से जुड़ता है, तभी मरुतानंद पैदा किए जाते हैं। मरुतानंद जिसके लिए पैदा किया गया था और हमेशा पैदा किया जाता रहेगा, वह यही बस्तियां हैं–यही भूमि है। धर्म के इस रहस्य को, उसकी ताकत को वही पैसे वाले समझते हैं, जो यहां की राजनीति को चला रहे हैं।''

विजय उन्हीं बस्तियों में कहीं रात को सो जाता, लिलियन उसे ढूंढती रह जाती। फिर शिवानी और विष्णुपद उन्हें तलाशते।

एक रात उन दोनां ने देखा–लिलियन और विजय एक जले हुए घर के बाहर एक जले हुए वृक्ष के नीचे जमीन पर सो गए हैं। उन्हें जगाने की हिम्मत न हुई।

विजय के दिमाग में हिन्दुस्तान की तसवीर साफ हो गई है। वह उन सबके सामने उस तसवीर को देख रहा है–'भारत छोड़ो आंदोलन' एक ओर और दूसरी ओर वही द्वितीय महायुद्ध, उसीकी काली छाया में हमें आजादी मिली। भारत छोड़ो ने इन्सान को इन्सान का दर्जा छुड़ाया और महायुद्ध से आया–काला बाजार, बेईमानी, हिंसा और पाखंड। इसके बीच से मनुष्य हो गया गायब। उस नये स्वतन्त्र मनुष्य का तब से जन्म ही रुक गया, जो स्वतंत्रता, प्रजातन्त्र का वाहक होता है। मनुष्य जो पैदा हुआ, उसका नाम है मरुतानंद, गंजा चौधरी, हरिगोस्वामी, कुंवर, माला जैन और और.....। उसीमें से विकसित हुई हमारी राजनीतिक पार्टियां, हमारे नये नेता, पुलिस, व्यापारी, अधिकारी अफसर.....नया अधर्म..... नया अंधकार.....बड़बड़–बड़बड़। लिलियन इन्हीं बातों को समझकर शायद कोई पुस्तक लिख रही है। उसने पूछा, ''आजादी की लड़ाई किस तरह के लोगों ने लड़ी ? वे लोग कौन थे ?''

तब विष्णुपद ने बताया था, ''वे लोग थे–जमींदारों के लड़के, अंगरेजी व्यवस्था और दुकानदारों के युवक–जिनके बाप कहीं अंगरेजी शराब के व्यापारी थे, कहीं अंगरेजी वस्त्रों के थोक विक्रेता थे, कहीं वे अंगरेज चाय–बागान के मैनेजर थे, कहीं वे अंगरेजी दफ्तरों, न्यायालयों के अफसर और वकील थे, अंगरेजी कालेजों के प्रोफेसर अध्यापक थे। इन्हीं पिताओं, बापों से विद्रोह करके उन युवकों ने आजादी की लड़ाई शुरू की। तभी वह दूसरा महायुद्ध आया। उसका काला बाजार खुला–इसी बाजार में आजादी लड़नेवालों के पुत्रों ने धन कमाना शुरू किया। और जैसे ही हमें स्वतन्त्रता मिली–उन पुरुषों ने जेलों से लौटे हुए अपने पिताओं से कहना शुरू किया–पिताजी, बाबूजी, एलेक्शन लड़िए.....मंत्री बनिए. .....एलेक्शन लड़ने के लिए धन हमारे पास है।''

लिलियन और विजय दोनों साथ–साथ उन बस्तियों में काम करते और शाम को कहीं किसी मामूली–से चाय–घर में या किसी ढाबे में बैठकर बातें करते।

एक दिन लिलियन ने कहा :

''विजय, एक दिन तुमने मुझे अपना प्रेम देना चाहता था..... ।''

विजय बोला, ''हां, चाहा था.....पर दे नहीं सका। तुमने उसे स्वीकार नहीं किया, सो बात नहीं थी। मुझे देना ही नहीं आया।''

''या मुझे लेना ही नहीं आया।'' लिलियन यह कहते हुए लजा गई।

''नहीं, तुम्हींने तो मुझे जगाया। पहले लगा कि मेरा अपमान हुआ है, पर धीरे–धीरे लगने लगा.....मैं अपने को तलाश रहा हूं।''

''यह तलाशना कितना 'क्रुएल' (निर्मम) है–है न ?''

''पर वह क्या कम 'क्रुएल' था–जब मैं एकाएक तुम्हें अपनी पत्नी बना लेना चाहता था।''

दोनों थोड़ी देर तक उसी ढाबे में बैठे रोटियां खा रहे थे। खाने के बाद दोनों एक लॉन में आ बैठे। मई के दिन थे। लॉन मं लोग इधर–उधर बैठे या तो ऊंघ रहे थे, या ज़ोर–ज़ोर से बातें कर रहे थे।

लिलियन ने उसे चूमना शुरू किया।

''यहां लोग देख रहे हैं।''

''देखने दो, उन्हें ज़रूर देखना चाहिए।''

दोनों हंस पड़े थे।

विजय को मां की बात याद आ रही थी, ''सच, देना बहुत मुश्किल है और यहां तो जैसे हर कोई दूसरे को हड़पने ही आया है। देना भी है–यह उसे पता ही नहीं। और मजेदार बात यह है–पहले तो कोई किसीको पूरी ईमानदारी से, पूर्ण सहज होकर देना नहीं चाहता, और जब वह कभी किसीको देने भी चलता है तो वही स्वयं अपना रूप बदलकर अपना ही दान लेने आ जाता है। अहं बड़ा विचित्र है।''

28

उन बस्तियों का जीवन फिर से सामान्य हो चला था। लोग अपने–अपने घरों में फिर उसी तरह रहने लगे थे। जिन–जिन घरों के लोग उस उपद्रव में मरे थे, लोग धीरे–धीरे उन्हें भूल रहे थे।

जो मन्दिर–मस्जिद तोड़े गए थे, उनको फिर से बना दिया गया था। कुछ मन्दिर–मस्जिद नये बनाए गए थ। एक मन्दिर कुंवर ने बनवाया था, अपने स्वर्गवासी पिता की याद में। दूसरा देवी मन्दिर अपनी मां–पिहानीवाली की स्मृति में उसने बनवाया था। पर उसी तादाद में दिल्ली के बहुत–से लोग मरुतानंद के शिष्य भी बने थे। मरुतानंद के चित्र उन लोगों के घर में लगे हुए थे और लोग उसकी पूजापाठ भी करने लगे थे।

विष्णुपद को मरुतानंद वाले मुकदमें के सिलसिले में अक्सर दिल्ली से बाहर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा के इजलासों में हाजिर होना पड़ता।

आश्चर्य और दुःख इस बात का था कि अखबार में इतना कुछ लिखने के बाद भी वह अकेला ही रह गया था। उसके साथ न यहां के बुद्धिजीवी आए थे, न वे लोग, जो व्यवस्था के आलोचक थे और विद्रोह की बातें करते थे।

अगली तारीखों पर विष्णुपद के साथ विजय और लिलियन भी गए। उन्होंने देखा–मुकदमें में और कुछ भी नहीं था, महज विष्णुपद को सच बोलने का दंड दिया जा रहा है। अगर वह ज़रा–सा झूठ बोल दे, तो वह मुकदमे से बेदाग छूट सकता है। पर वह चारों ओर के इजलासों में अपना वही बयान देता है :

''मरुतानंद एक झूठ था.....वह दरअस्ल पंचानन नामक एक चोर है।''

''इसका सबूत ?''

''सबूत है–कितना चाहिए।''

बस, इतनी ही बात पर मरुतानंद के शिष्य अदालतों में चिल्लाने लगते हैं, ''यह हमारे गुरु का अपमान है। इस अधर्मी का नाश हो।''

बस मुकदमे में अगली तारीख डाल दी जाती है। और लगता है, इस मुकदमे का कोई अन्त नहीं।

एक रात शिवानी की सहसा आंख खुली। उसने देखा, विष्णुपद जगा बैठा है, बेहद उदास और चिंत्ति।

''यह क्या है ?'' वह घबड़ा गई।

''सोचता हूं, मरुतानंद वाले केस में माफी मांग लूं।''

''क्या ?''

''हां, अखबार में ही तो छाप देना है वह माफीनामा।''

''यह क्या कह रहे हो ?''

विष्णुपद माथा झुकाकर बोला, ''सही कह रहा हूं। यहां और कुछ नहीं किया जा सकता, सिर्फ बेईमानी की जा सकती है। क्योंकि फिलहाल यहां और कुछ नहीं हो रहा है।''

शिवानी रो पड़ी, ''नहीं, नहीं तुम ऐसा नहीं कर सकते.....नहीं.....। मैं प्राण दे दूंगी.....तुम्हें इस तरह.....।''

विष्णुपद ने निहायत ठंडे स्वर में कहा, ''जानती हो, मरुतानंद ने मुझसे क्या कहा था, 'तुम किस प्रेम के चक्कर में पड़ गए। यह सब बकवास है। इससे मेरा पतन अवश्यंभावी है।'''

''तुमने क्या उत्तर दिया ?''

''इस वक्त मुझे अपना उत्तर नहीं याद आ रहा है.....सिर्फ वही मरुतानंद याद आ रहा है।''

''पर क्यों ?'' शिवानी जैसे चीखना चाहती है।

''पता नहीं।''

विष्णुपद की वह उदासी, वह हताशा शिवानी के लिए असह्य थी। एक दिन वह बच्चों की तरह रोती हुई बोली, ''क्या अब वही मरुतानंद ही सच है ?'' विष्णुपद ने उत्तर दिया, ''हां, मुझे यही लगता है।''

''तो चलो, चुपचाप कहीं आत्महत्या कर लें।''

शिवानी की यह बात सुनकर विष्णुपद थोड़ी देर बाद बोला, ''मैं तुम से, सिर्फ तुम से अपने मन की कोई भी बात कह सकता हूं–अब कहीं जाकर आत्महत्या करने की भी गुंजाइश कहां रह गई ? क्योंकि हर क्षण वह तो स्वयं हो रहा है।''

अगला एलेक्शन आ गया था। विष्णुपद ने इस बार चुनाव लड़ने से बिल्कुल मना कर दिया था।

पर उन बस्ती वालों की तरफ से विष्णुपद ने अपनी जगह उसी सुधा शर्मा को लोक–सभा के लिए खड़ा किया। वही काठबाजार की सुधा, जिसे अफीम, गांजा के उस तस्करी गंजा चौधरी ने एक दिन वेश्या बनाना चाहा था–वही सुधा शर्मा जो अब एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापिका थी। इसके खिलाफ कांग्रेस उम्मीदवार थे इस बार वही हरिगोस्वमी जैन। कुंवर कपूर इनके पीछे तैनात थे।

इस बारचुनाव का सारा दृश्य अजीब था। सरकार, पैसेवाले और साम्प्रदायिक शक्तियां, तीनों एक बिन्दु पर मिल गई थीं। विष्णुपद अपनी पूरी ताकत से सुधा शर्मा के लिए लड़ा था। बस्ती वाले भी सब एकमत थे–सब साथ थे विष्णुपद के। पर न जाने कैसे सब उल्टा इस बार–हरिगोस्वामी ही विजयी हुआ। जै हो श्री मरुतानंद की।

जिस दिन चुनाव का वह नतीजा निकला था–सारी बस्तियों पर जैसे मातम छाया था। उस दिन विष्णुपद अपनी शिवानी के साथ मरुतानंद के उसी मुकदमे में कानपुर के एक इलजास पर हाजिरी दे रहा था। सुबह से इजलास के बाहर बैठे–बैठे शाम के चार बज गए थे। अब तक उसका नंबर नहीं आया।

शिवानी ने अंदर जाकर देखा–मजिस्ट्रेट कुर्सी पर नहीं था। पेशकार लोगों से खुलेआम रुपये ले–लेकर तारीखें डालता जा रहा था। शिवानी ने पूछा, ''हमारे मुकदमे की पुकार कब होगी ?''

पेशकार पान चबाते हुए बोला, ''आप जैसे सैकड़ों मुकदमे लोगों के पड़े हैं यहां, जिसकी जब बारी आएगी, तभी तो पुकार होगी।''

दोनों वहीं इजलास के बाहर बरामदे की सीढ़ियों पर चुपचाप बैठे थे। बिल्कुल शाम हो गई थी। वकील ने आकर खबर दी–अगली तारीख डाल दी गई।

सामने बरगद के पेड़ के नीचे मरुतानंद के शिष्यों में परस्पर मार–पीट शुरू हुई। वकील ने थोड़ी देर बाद बताया–शिष्यों में फूट पड़ गई है। अब यह झूठा मुकदमा खारिज हो जाएगा। अब वही फूटे हुए शिष्य लोग मरुतानंद के ही खिलाफ गवाही देंगे, बेफिकर रहिए.....ऐसा ही होता है–झूठे, दगाबाज लोग बहुत देर तक एक संग नहीं रहते, उन्हें किसी और नये झूठ, नये प्रपंच की रचना करनी होती है।''

दिल्ली वापस आए उन्हें कई दिन हो गए थे। एक शाम उसी हिप्पी रूप में लिलियन के साथ विजय आया, बोला–''मां, हम तुमसे विदा लेने आएहैं''

''कहां जाने के लिए ?''

''पता नहीं..... !''

''तुमने अपने घर, खानदान और अपने इस समाज के बारे में कितना जाना ?''

''पर होगा क्या जानकर.....जितना जाना उसीसे ही लगता है, अस्वीकार ही एक मात्र रास्ता है हमारे लिए।''

''पर तुमने अभी स्वीकार ही कितना किया ? इधर आओ मेरे साथ।''

शिवानी ने विजय और लिलियन का हाथ पकड़ लिया, उन्हें संग लिए हुए उस एकांत कमरे में गई–एक दीवार पर दो चित्र लगे थे–ब्रजरानी और पिहानीवाली के।

उन्हें दिखाकर पूछा, ''इन्हें पहचानते हो ?''

''नहीं।''

''पहचान लो.....यही है वह ब्रजरानी, हमारे समाज के धर्म, विवाह और प्रेम का करुणतम शिकार। यह जो देने आई थी, उसे कोई न ले सका। और यह जो देना चाहती थी, वह अंत तक नहीं दे पाई।.....यह हैं तुम्हारी सगी दादी पिहानीवाली, एक श्रेष्ठ स्त्री, नारी गुणों की प्रतिमूर्ति.....पति को केवल अपना धर्म दे सकीं, शेष सब लिए हुए पातिव्रत्य की सूली पर चढ़ गई।

''सोचो, समाज का कितना बड़ा नुकसान हुआ। सोचो, अगर वे अपना संपूर्ण दे पातीं.....समाज–घर इनका संपूर्ण ले पाता !''

शिवानी ने फिर दूसरी दीवार की ओर दिखाया–''इन्हें पहचानते हो ?''

''नहीं।''

''यह हैं ब्रजरानी के पति सूरज कपूर.....इन्हें पता ही न चल सका, इनके पास भी है किसीको कुछ देने को। तभी यह इतने कायर थे। शराब पीकर भस्म हो गए। यह हैं तुम्हारे बाबा मालिक हीराचंद कपूर, इनसे तुम ज़रूर मिले हो, पर इन्हें तुम जाने नहीं, इन्होंने कभी किसीको कुछ नहीं दिया।''

विजय और लिलियन उन चित्रों को निहारते रहे। न जाने क्या उनके आर–पार देखते रहे। तभी मां की आवाज टकराई :

''मुझे उसी साहस ने बचाया.....वही स्त्री–साहस, जिसका नाम प्रेम है.....।''

शिवानी तेजी से उस कमरे के बाहर चली गई। दोनों ने उसका पीछा किया।

हवा भारी हो उठी। सामने विष्णुपद भी खड़ा था।

शिवानी एक गहरा निःश्वास छोड़कर बोली :

''मुझे लगता है, पुरुष पानी है और स्त्री गूंगी माटी। पानी में इच्छा जगती है मूर्ति रचने के लिए–यही रचना–इच्छा ही उस गूंगी माटी को वाणी और गति दे देती है। शायद इसे ही हमारे यहां पुरुष और प्रकृति का नाम दिया गया है–ब्रह्म और माया। पर हैं ये दोनों एक। पानी और मिट्टी एक मूर्ति से अलग कैसे हो सकती है। एक प्रेरणा है, एक रचना है, और दोनों एकाकार हैं.....एक हैं। दुर्भाग्य उस दिन शुरू हुआ जब पुरुष ने कहा, स्त्री तू श्रद्धा है.....देवी है, मैं हूं–ब्रह्मा, मनु और कर्मकार, रचनाकार। अर्थात् स्त्री महज जन्म और पालन के अलावा जगत के सारे कर्मों, व्यापारों, रचनाओं से बिल्कुल दूर काट दी गई। पुरुष जो कुछ भी करे, स्त्री उसे श्रद्धा से स्वीकार करे, इससे ज्यादा अपमान पुरुष और क्या कर सकता था ? और इससे ज्यादा नुकसान मानवता का और क्या हो सकता था ? तभी तो हमारा ऐसा समाज बना–इसका ऐसा धर्म.....ऐसी राजनीति.....।''

शिवानी का वह मुख कैसा हो गया था यह कहते–कहते। उसकी आंखों से जैसे आग की चिनगारी फूट रही हो।

''लिलियन जैसी लड़की को पाकर तू भाग्यवान हो विजय, वह श्रद्धा नहीं, चुनौती है। तूने पहले उससे ब्याह की सहमति मांगी थी, उसने कैसे अस्वीकार किया था.....अब वह तुम्हें मांग रही है.....समानधर्मा होकर.....तुम्हें पाकर.....अब तुम दोनों कहां जाओगे भागकर ? अब कैसा अस्वीकार ?''

उसी दिन विजय ने विष्णुपद और मां के सामने कहा, ''मैंने अब तक अपने जीवन में जो कुछ अनुभव किया है–उससे एक नतीजे पर आया हूं–हम सच नहीं बोल पाते.....यही है हमारा बुनियादी संकट। सच से मेरा मतलब है, जो हम सच मानते हैं–जो चीजों के प्रति हमारी निजी प्रतिक्रिया है।''

विष्णुपद ने कहा, ''तुमने देखा है न, मेरे सच बोलने का संकट ?.....''

''देखा है, उसीने मुझे इतना साहस दिया।''

बातों–बातों में लिलियन ने पूछा, ''क्या इस मुल्क में क्रान्ति नहीं हो सकती ?''

''नहीं।''

''क्यों ?''

''हमने इससे कहीं ज्यादा गरीबी, अंधकार, शोषण और अन्याय सहा है। हम इसके आदी हो चुके हैं।''

तभी विष्णुपद ने कहा, ''इसके अलावा मैंने जो इस जीवन में यहां अनुभव किया है–वह यह कि यहां का मनुष्य अपने–आपसे, आसपास के लोगों से, घटनाओं और कर्मों से पूरी तरह उदास और टूटा हुआ है। इसकी बुनियाद हैं हमारे घर, हमारी शादियां, हमारे संबंध.....इसीके भयानक शून्य से हमारी गंदी राजनीति, हमारा अंधा धर्म, हमारी बंजर अर्थ–व्यवस्था पैदा हुई है.....।''

यह कहते–कहते विष्णुपद उदास हो गया :

, ''पहले मैं सोचता था, अर्थ और राजनीति के बाहरी ढांचे में परिवर्तन से मनुष्य का भीतरी ढांचा अपने–आप बदल जाता है–पर ऐसा नहीं होता। हर परिवर्तन के साथ चीजों के महज रूप बदल जाते हैं, बस, चीज़ें वहीं की वहीं रह जाती हें। जैसे पहले लोग ईश्वर की पूजा करते थे, अब लोग अर्थ और राजनीति की शक्तियों की पूजा करते हैं। पहले राजा थे, अब मंत्री हैं, पहले जमींदार थे, अब एम०एल०ए० और एम०पी० हैं। पहले जमींदारी थी, अब पार्टी है.....पहले लोग वीरों के गले में जयमाल डालते थे, अब राजनेताओं के गले में पुष्पहार डालते हैं। पहले हम घर के भीतर की औरत को एक ओर गुलाम, दूसरी ओर देवी मानते थे, आज सड़क पर आजाद घूमती हुई स्त्री को एक ओर मन ही मन 'फ्लर्ट' मानते हैं और दूसरी ओर उसे 'मां जी', 'बहन जी' कहते हैं। पहले योद्धा या शिकारी विजयी होकर या शिकार मारकर घर लौटता था और स्त्री उसका स्वागत करती थी–शिकार पकाकर उसे खिलाती थी, उसकी विजय को भोगती थी, आज भी तो पाकिस्तान या वियतनाम के युद्ध से सिपाही घर लौटता है तो उसकी स्त्री उसे 'वीर' कहती है.....वह नई स्त्री कहां है जो उस सिपाही से कह दे.....'मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाती, तू हत्यारा है, बर्बर है, अमानुष है।'''

वही साइकियाट्रिस्ट डाक्टर घोष आए। हंसते हुए बोले :

''कुंवर कपूर साहब को 'इनसोमनिया' हो गया है। उन्हें नींद नहीं आती।''

कुंवर के बारे में और सारी बातें बताते–बताते डाक्टर घोष ने कहा, ''ये ऐसे लोग हैं, जिन्हें किसी बात पर कभी विस्मय नहीं होता, महज आघात लगता है। ये कभी कुछ अनुभव नहीं कर पाते, महज प्रतिक्रिया करते हैं।''

दिल्ली छोड़ने से पहले एक दिन पहले विजय और लिलियन उसी बाराखंबा रोड के बंगले पर गए। जाड़े के दिन थे, पूरे बंगले में फूलों की बहार आई थी। लिलियन लॉन के चारों ओर के गुलाब के फूलों को देखने लगी।

दरबान ने आकर कहा, ''साहब भीतर बुला रहे हैं।''

वे दोनों ड्राइंग रूम में गए।

लिलियन की नजर उस शीशे के केस में बंद 'मिनी गार्डन' पर टिक गई।

कुंवर ने उनका स्वागत करते हुए कहा, ''यह मैंने अमेरिका से खरीदा है। कितना अच्छा है !''

लिलियन हंसने लगी :

''आपके पास तो बाहर इतना बड़ा उम्दा गार्डन है, इसकी यहां क्या ज़रूरत ?''

विजय ने बात बदल दी :

''डैडी, आप कैसे हैं ?''

''तुम कैसे हो ?''

''खुश हूं–क्योंकि कुछ नहीं हूं।''

''और यह, तुम दोनों ने शादी कर ली ?''

''नहीं। शादियां आप ही लोग कर सकते हैं।''

यह सुनते ही कुंवर न जाने क्या अनापशनाप बकने लगा। लिलियन कुछ नहीं समझ पा रही थी।

''मैं तुम लोगों को असलियत बताना चाहता हूं।''

''वह हमें खुद जानने दीजिए।''

''खुद कोई नहीं जान सकता।''

कुंवर न जाने क्या–क्या कहता जा रहा था। ''मैं तुम लोगों के नाम अपनी सारी जायदाद 'विल' कर देना चाहता हूं.....पर सिर्फ एक शर्त पर.....।''

विजय ने सहसा कहा, ''अब हमें कोई भी शर्त स्वीकार नहीं है। कपूरवालों का सारा जीवन.....चाहे वह घर–परिवार का हो, चाहे व्यापार का, केवल शर्तों का जीवन था, हमने उसे पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया है।''

''सुनो, विजय.....विजय.....।''

कुंवर पीछे–पीछे दौड़ा था।

''क्या है ?''

''तूने एक दिन कहा था, तेरे पास आत्मा नहीं है, ईश्वर नहीं है, तभी तू इस तरह सोचता है।''

''हां, वह आत्मा–ईश्वर नहीं है मुझमें जो दूसरों से दिया जाता है–बल्कि थोपा जाता है.....मुझमें मेरी निजी आत्मा–ईश्वर है, जिसकी रचना मैंने खुद की है–अपनी इस लिलियन के साथ, इसी जीवन के बीच।''

''तू मुझसे नफरत करता है ?''

''नहीं, मैं आपसे सदा जुड़ा हूं, फिर नफरत कैसे कर सकता हूं। नफरत आप करते है, उन सबसे, जिन्हें आप अपना विरोधी समझते हैं, क्योंकि धन के अलावा आप किसीसे भी नहीं जुड़े हैं.....अपने से भी नहीं। 'यू आर एक वेस्ट फादर'..... ।''

कुंवर में जैसे आग लग गई हो।

''चले जाओ, मुझे किसीकी ज़रूरत नहीं।''

''यह झूठ है फादर।''

''मुझे किसीकी परवाह नहीं।''

''यह और भी झूठ है फादर.....आपको बहुत ज़रूरत है.....प्यार की.....रिश्तों की.....मनुष्यों की, पर आप चाहते हैं, लोग खुद आकर आपको दें.....आप 'बिज़नेसमैन' हैं न, आप समझते हैं, धन की ताकत से सब कुछ लिया जा सकता है। आप खुद किसीको कुछ नहीं देना चाहते। अगर देना भी चाहते हैं तो लोगों को आज्ञा देते हैं–जाओ.....लो मुझसे। आप अपने स्थान से ज़रा भी नहीं हटना चाहते। मगर ऐसा नहीं होता।''

विजय जाने लगा। लिलियन ने सहसा रुककर कहा, ''ज़रा रुको विजय !''

वह लौटकर कुंवर के पास गई।

''मुझे अफसोस है, आपको इतनी तकलीफ हुई।''

''क्या तुम जानती हो मेरी तकलीफ..... ?''

''जी हां, विजय को जानती हूं.....उस विजय को, जो तब गोल्फ लिंक में रहता था।''

''क्या ?''

''आपको पता नहीं, आप कितने अकेले हैं, यह पता होना एक संकट है, पर पता न होना सबसे बड़ा दुःख है। हमें क्षमा कीजिए।''

लिलियन की इस बात ने, उसके इतने से व्यवहार ने कुंवर को कहीं छू लिया। वह फिर उन दोनों के सामने आ गया। दोनों को देखने लगा–चुपचाप।

लिलियन ने बड़े आदर भाव से कहा, ''फादर, यह मकान आपने बनाया है ?''

''हां, क्यों ?''

''सुन्दर है।''

कुंवर प्रसन्न हो गया।

विजय बोला, ''इस मकान में ईंटें, लोहा, सीमेंट, लकड़ी, धन ही नहीं लगा है, इसमें कितने–किने मनुष्यों की मानवीय क्षमता भी लगी है.....फादर, आपकी वह मानवीय क्षमता कहां लगी है–हम उसे देखना चाहते हैं।''

कुंवर चुप देखता रह गया। उसका ही पुत्र जैसे उसको उसे कहीं ले जाना चाह रहा है। वे तीनों लॉन में आ गए। लॉन पर धूप बरस रही थी। बंगले के वृक्षों पर आज न जाने कहां से बहुत–से पक्षी आए थे।

कुंवर के मुंह से निकला, ''मेरी मानवीय क्षमता के इस्तेमाल को देखना चाहते हो ?.....अगर मैं कहूं हमें कभी उसका पता ही न था, विश्वास करोगे ?''

दोनों आवाक् देखते रह गए। डाक्टर घोष ने एक दिन पूछा था–ईश्वर या प्रकृति ने अन्त में मनुष्य को क्यों बनाया ? जानवर के बाद मनुष्य ? जानवर में किस तत्त्व की कमी थी जो मनुष्य में पूरी हुई ? भावना 'इमोशन' जो सारी संस्कृति की बुनियाद है। और उस भावना का चरम तत्त्व क्या है.....चरम तत्त्व.....

– – – – – –